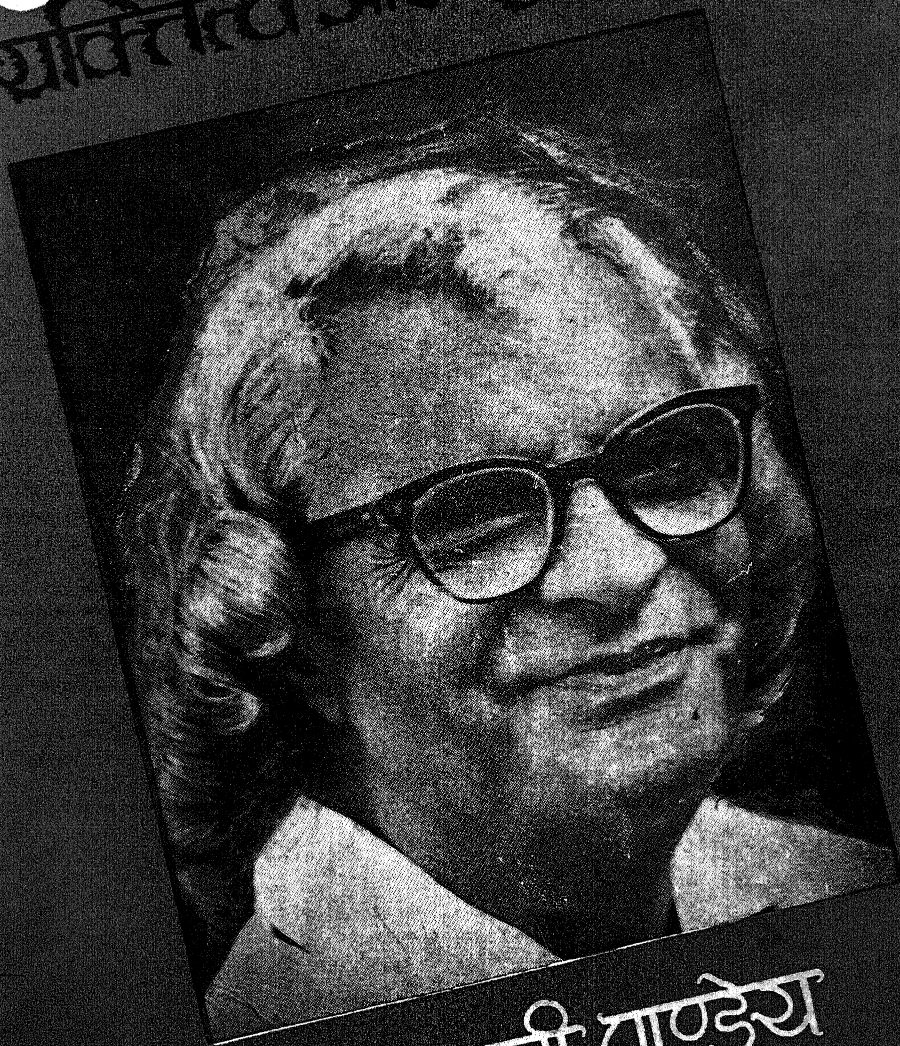
सुमित्रानंदन पंत

व्यक्तित्व और कृतित्व



डॉ॰ रामजी पाण्डेय

"युगप्रवर्तक कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओं की विविधता और विस्तार जितना आलोचक को विस्मित कर देता है उनका प्रशान्त और सौम्यता में एकरस स्वभाव उतना ही मनोवैज्ञानिक को चकित कर देने वाला है।

पन्त जी ऐसे हिमालय के पुत्र हैं जिसका अप्रतिम सौंदर्य विरोधी तत्त्वों से संघटित हुआ है···कभी न झुकने वाले तुषाराच्छादित शिखर हैं, किंतु उनके हृदय से अनेक निम्नगा नदियां-निर्झर धरती की वन्दना के लिए नीचे उतर आती हैं।···सम्पूर्ण वातावरण में समाधिस्थ शिव की निस्तब्धता भी है और समीर की लहरों में उमा के लासजनित नूपुर भी बजते रहते हैं।···इस सौंदर्यबोध ने कवि पन्त को शैशव काल से ही इस प्रकार प्रभावित किया है कि वह उनके चिन्तन भाव ही नहीं, संपूर्ण चरित्र में ही रच-बस गया।

पन्त जी का जीवन जटिल है। उसकी अनेक व्याख्याएं संभव हैं और आने वाले युगों में भी संभव रहेंगी।···पन्त पर अनेक आलोचनाग्रंथ लिखे गए हैं, अनेक शोध-प्रबन्ध भी प्रकाश में आ चुके हैं। प्रस्तुत आलोच्य ग्रंथ की विशेषता है कि लेखक को पन्त जी का स्नेह तथा सामीप्य निरन्तर प्राप्त रहा है। उसके परिश्रम, अध्यवसाय और अध्ययन की मैं भी साक्षी हूं।

विश्वास है, इसके द्वारा पन्त के जिज्ञासुओं साहित्य-प्रेमियों और विद्यार्थियों को युग के इस महाकवि और महामानव को समझने में सहायता प्राप्त होगी।"

—महादेवी

सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व और कृतित्व

समीक्षा-ग्रंथ

सुमित्रानंदन पंत

व्यक्तित्व और
कृतित्व

डॉ० रामजी पाण्डेय

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४ नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : ४२.००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९८२ / स्वत्वाधिकार : लेखकाधीन / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित। [91-9-11-782 / IN]

SUMITRANANDAN PANT : VYAKTITVA AUR KRITITVA
(cr t) by Dr Ramj Pandeya Price Rs 42 00

पूज्य बाबू जी की पुण्य स्मृति के साथ मम्मा (माँ) को, जो बहुत दिनों तक यह मानती रहीं कि—"मेरा रामजी डॉक्टर होगा और मुझे अच्छी दवा देगा।"



दो शब्द

युग प्रवर्त्तक कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओं की विविधता और विस्तार जितना आलोचक को विस्मित कर देता है उनका प्रशान्त और सौम्यता मे एकरस स्वभाव उतना ही मनोवैज्ञानिक को चकित कर देने वाला है। दोनों विशेषतायें कवि के अन्तर्बाह्य द्वन्द्वों और विविध संघर्षों के परिणाम हैं किन्तु एक-दूसरे से भिन्न।

कवि पन्त उन्नीसवीं शती के अन्त तथा बीसवीं के आरम्भ की सन्धिवेला मे उत्पन्न हुए थे, अत: उनके जीवन तथा रचनाओं में दोनों शक्तियों की विशेषतायें मिलकर एक आश्चर्यजनक ड्रामा में व्यक्त होती है।

उन्नीसवीं शती में जीवन के मूल्य रूढ़ियों की एक ऐसी अंधी गली में पहुचकर ठहर गए थे जहां से उन्हें निकलने के लिए एक सुधारवाद का जन्म हुआ जिसमें मानव गरिमा का उद्घोष भी है और बन्धुता-समानता की चेतना का प्रथम उन्मेष भी। उन्हें अस्वीकार करने पर तो जीवन मूल्य-शून्य हो सकता था, किन्तु उनके निरीक्षण-परीक्षण के अभाव में परिवर्तनमूलक क्रान्ति का प्रश्न अकल्पनीय था। आश्चर्य नहीं कि उस युग की मनीषा रूढ़ियों की मिट्टी हटाने मे व्यस्त रही जिससे उन जीवन मूल्यों के अवशिष्ट किसी बीज पर आलोक की कोई किरण पड़ सके और उससे नया अंकुर उगाया जा सके। बीसवीं शती ने असंदिग्ध रूप से उन्हें पा लिया, अत: भाषा, भाव, विचार, सृजन सब में परिवर्तन स्वाभाविक हो गया। 'करना चाहिए' के स्थान में जब 'करो या मरो' का आह्वान आता है, तब जीवन का मूल्यबोध युगबोध से एकाकार हो जाने के कारण मानव को अपनी सभी अन्तर्बाह्य शक्तियों का उपयोग करना पड़ता है, विशेषत: मानसिक शक्तियों का जो ऐसे संकल्पात्मक कर्म को निरन्तर गति देती रह सकती है बीसवीं शती ने असंदिग्ध रूप से नवीन क्षितिज उद्घाटित किया

पन्त जी ऐसे हिमालय के पुत्र हैं जिसका अप्रितम सौंदर्य विरोधी तत्त्वो से सघटित हुआ है। विशाल वज्र शिलाओं के चरणों में ऐसे कोमल फूलों की घाटियों का आस्तरण बिछा है जिनका नामकरण अब तक नहीं हो सका है। कभी न झुकने वाले तुषाराच्छादित शिखर हैं, किन्तु उनके हृदय से अनेक निम्नगा नदियां-निर्झर धरती की वन्दना के लिए नीचे उतर आती हैं।

किरणों से हिमशिलायें स्थिर विद्युतमुखी बन जाती हैं जिनके मुख पर भीने मेघों का अवगुण्ठन निरन्तर चंचल रहता है। अशान्त दावाग्नि से जलते वनों का प्रतिबिम्ब संभाले असंख्य ताल शान्त रहते हैं।

सम्पूर्ण वातावरण में समाधिस्थ शिव की निस्तब्धता भी है और समीर की लहरों में उमा के लासजनित नूपुर भी बजते रहते हैं। एक सीधी रेखा से सम्पूर्ण चित्र की रचना संभव नहीं है। जैसे चित्र की पूर्णता के लिए अनेक आडी-तिरछी रेखाओं की आवश्यकता होती है वैसे ही हिमालय के सौंदर्य की स्थिति है जिसके सौंदर्य की सम्पूर्णता के लिए उनके परस्पर विपरीत तत्त्वो की अन्विति अनिवार्य है।

इस सौंदर्यबोध ने कवि पन्त को शैशव काल से ही इस प्रकार प्रभावित किया है कि वह उनके चिन्तन, भाव ही नहीं, संपूर्ण चरित्र में ही रच-बस गया और बाह्य परिस्थितियों का संघर्ष भी उस अभेद्य कवच को वेध नहीं पाया। वे परस्पर विरोधी तत्त्वों में भी सामंजस्य खोज लेते थे। नगरीय कोलाहल मे उन्हें पर्वतीय निस्तब्धता संभाल लेती थी और निस्तब्ध एकान्त में जनसंकुलता। परिवारहीन होकर भी वे सपरिवार की अनुभूति देते थे और भावाकुलता में भी वीतरागता की।

सौभाग्य से इस युग के ये दोनों साहित्यिक महामानव मेरे राखी-बन्द भाई थे, अतः दोनों को निकट से देखने का मुझे अवसर मिलता रहा। अपने अनुभव के बल पर मैं कह सकती हूं कि निराला उस खुली पुस्तक के समान थे जिसमें अनेक व्याख्याओं की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु पन्त जी का जीवन जटिल है। उसकी अनेक व्याख्यायें संभव हैं और आने वाले युगों में भी संभव रहेगी। गुलाब और उसके कांटे प्रत्यक्ष रहते हैं, किन्तु सीप के भीतर कोई चुभने वाला विजातीय कण जो धीरे-धीरे उसकी कसक को मोती बनाता रहता है प्रत्यक्ष नहीं होता पन्त पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं, अनेक

प्रबन्ध में अन्तर स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य है। आलोचक किसी की रचना की व्याख्या के लिए अधिक स्वतन्त्र है क्योंकि वह अपनी धारणा के अनुसार कृती के चिन्तन या भावजगत का पुनः सृजन कर सकता है। तटस्थता आवश्यक होने पर भी उसमें उसके अपने व्यक्तिगत पूर्वग्रह के लिए भी अवकाश निकल सकता है। परन्तु शोधकर्ता की लक्ष्मण रेखा अधिक स्पष्ट है। हिन्दी में एक ओर शोध प्रबन्धों की बाढ़ में स्तर का गिर जाना अधिक संभव हो गया है और दूसरी ओर अनेक मतवादों ने आलोचना ग्रन्थों को व्यक्तिगत राग-द्वेष की अभिव्यक्ति का माध्यम बना दिया है।

मुझे प्रसन्नता है कि डा० रामजी पाण्डेय ने तटस्थता पर सतर्क दृष्टि रखी है और विभिन्न मतवादों से प्रभावित न होने का प्रयत्न किया है।

विश्वास है, इसके द्वारा पन्त के जिज्ञासुओं, साहित्यप्रेमियों और विद्यार्थियों को युग के इस महाकवि और महामानव को समझने में सहायता प्राप्त होगी।

—महादेवी

अग्रहण पूर्णिमा, सं० २०२६

भूमिका

पन्त का काव्य-व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार के द्वन्द्व से युक्त है। बहुत-से प्रभावों को घुलाने और बहुत-सी भूमियों में ढलने की इसीलिए उनमें अद्भुत क्षमता है। वास्तव में रामकृष्ण परमहंस, गांधी, मार्क्स, श्री अरविंद—सभी पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की निरन्तरता में कुछ दूर चलते हैं, पर उसके निजी नैरन्तर्य को कहीं भंग नहीं करते, न उनमें कोई अभीप्सित मोड़ ही पैदा करते हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की सम्पूर्ण चेतना किसी बिन्दु पर कहीं खंडित नहीं हुई। पन्त हमेशा अपनी रचनात्मक भाव-भूमि के प्रति सचेत रहे हैं। अनवरत अन्वेषण का भाव ही उनके काव्य की प्राणशक्ति है। संक्षेप में पन्त को समझने की मेरी यही दृष्टि रही है, जिसकी विवेचना पुस्तक में है; उसका यहाँ दुहराया जाना ठीक नहीं है।

बाबूजी के गुरु स्व० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा से लेकर उनके अग्रज, मित्र, सखा सभी से सहयोग, स्नेह मिला इसके लिए सभी का आभारी हूँ।

परम आदरणीया महादेवी जी की आशीषपूर्ण स्नेह-छाया तो सदा है ही। उनके प्रति किसी प्रकार के औपचारिक आभार से उसका मूल्य कम ही होगा।

डॉ० मीरा श्रीवास्तव के विशेष सहयोग के लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ

श्रीमती जी के साथ अपने दोस्तों के बारे में क्या कहूँ। विशेष रूप से श्री शिवकिशोर तिवारी, एवं श्री रमेन्द्र त्रिपाठी का, जिनके लिए आभार-ज्ञापन भी उनकी नाराजी का कारण बन सकता है, किन्तु यह सत्य है कि उनका सहयोग अद्‌भुत है।

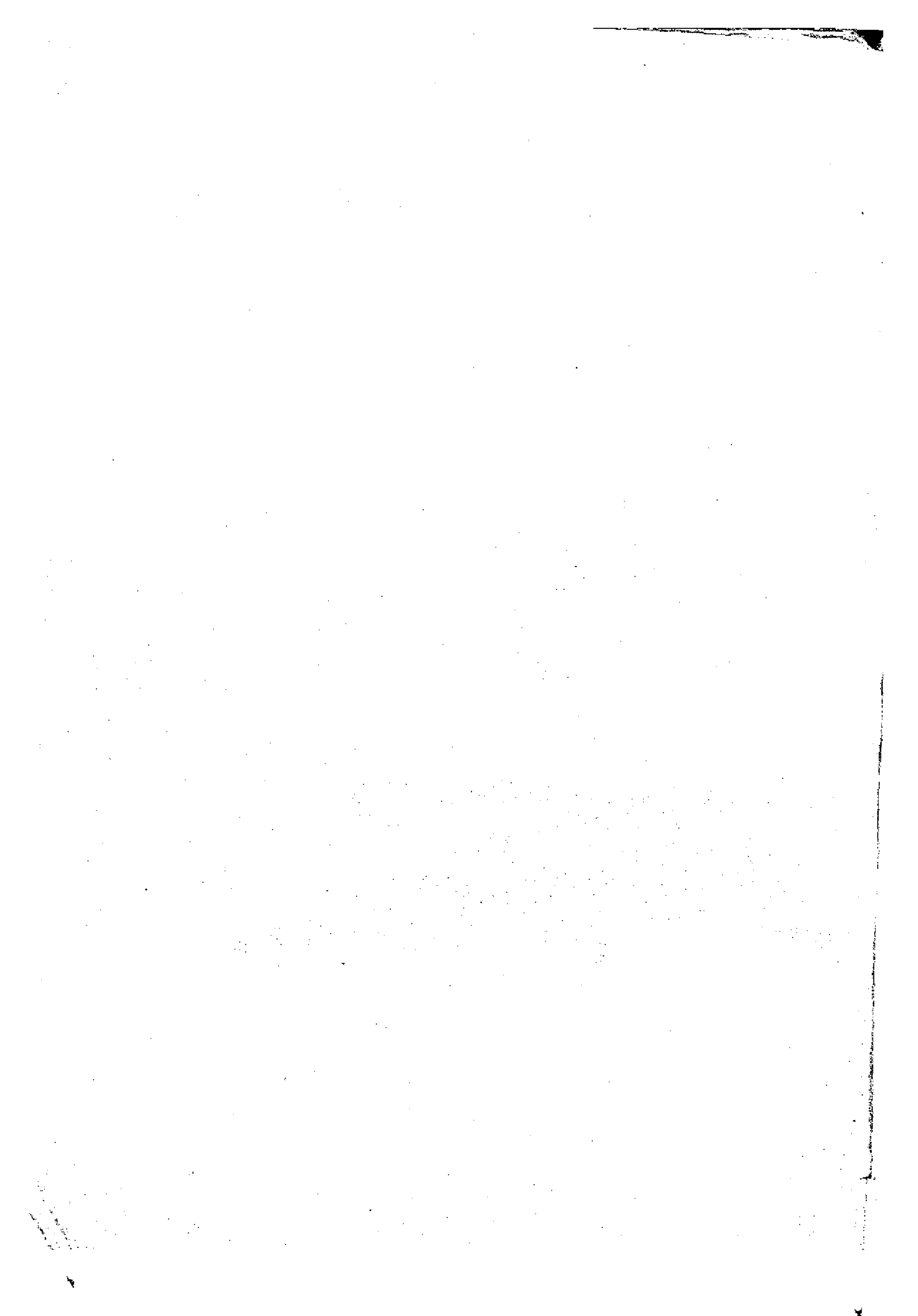
कवि की सत्ता अपरिमेय होती है और उसका साहित्य चिरन्तन। पन्त के अध्ययन के कितने प्रयास हुए हैं और कितने होंगे इसकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती—कवियों की शक्ति की भाँति ही अनंत। यदि पंत को समझने में प्रस्तुत कृति से कुछ मिल सका तो मेरा लिखना सार्थक हुआ।

—रामजी पाण्डेय

इलाहाबाद
१ जुलाई, १९८२

अनुक्रम

सुमित्रानंदन पंत :
व्यक्तित्व और कृतित्व



पंत का काव्य-व्यक्तित्व

काव्य में व्यक्तित्व का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद रहा है। जहां एक ओर स्वच्छंदतावादियों ने काव्य को व्यक्तित्व का प्रकाशन माना है, वहां दूसरी ओर टी० एस० इलियट जैसे आलोचकों ने काव्यसृजन की प्रक्रिया को निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया के रूप में निरूपित किया है। वास्तव में ये दोनों ही आत्यंतिक प्रतिपत्तियां हैं और इनके बीच किसी समझौते की गुंजाइश नहीं है। व्यावहारिक आलोचना के लिए हम यह प्रायः मानकर चलते हैं कि काव्य में इसके स्रष्टा कवि का व्यक्तित्व अनेक रूपों में प्रकाशित होता है। स्वच्छंदतावादी काव्य में यह व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट उभरता है, क्लासिकी काव्य में अपेक्षाकृत कम। स्वच्छंदतावादी काव्य में कवि व्यक्तिगत अनुभूतियों को साधारणीकृत करता है तथा क्लासिकी काव्य में वह निर्वैयक्तिक विषयों को अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से समन्वित करता है। इस प्रकार दोनों ही प्रकार के काव्यों में वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता का सामंजस्य भिन्न-भिन्न अनुपातों में हो जाता है। एकदम व्यक्तिगत अनुभूतियों को साधारणीकृत किए बिना कवि उन्हें सम्प्रेषणीय नहीं बना सकता और निर्वैयक्तिक 'वस्तु' को अपनी अनुभूतियों से मंडित किये बिना वह कोई वैशिष्ट्य काव्यात्मकता उत्पन्न नहीं कर सकता। काव्य में सामान्यतः 'वस्तु' को प्रधान स्थान मिलना चाहिए या व्यक्ति को, इस पर बहुत विवाद हो सकता है, पर काव्य में इन दोनों की उपस्थिति में कोई शंका नहीं होनी चाहिए।

तो काव्य में व्यक्तित्व का महत्त्व अंततः असंदिग्ध है। अब, यह व्यक्तित्व भी काव्य में दो रूपों में प्रकट होता है। एक तो कवि का साधारण व्यक्तित्व है, जो उसके जन्म-पालन, संस्कार, परिवेश, शिक्षा आदि की उपज है और दूसरा उसका काव्य-व्यक्तित्व, जो उसकी काव्य-प्रतिभा की भूमि पर उसकी बृहत्तर अनुभूतियों, भावों, विचारों और आदर्शों के उपकरणों से निर्मित होता है। प्रायः कवि के व्यक्तित्व के ये दोनों रूप जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा परस्पर घनिष्ठतः सम्बद्ध रहते हैं. पर

कभी-कभी इनके बीच कोई स्पष्ट संबंध खोज पाना सरल नहीं होता। उदाहरण के लिए अंग्रेज कवि अलैक्जेंडर पोप का व्यक्तिगत जीवन किसी भी प्रकार आदर्श नहीं कहा जा सकता, और फिर भी उनकी कृति 'एसे ऑन मैन' उच्चकोटि की आदर्शवादी रचना है। अत: कवि के साधारण व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया उसके काव्य-व्यक्तित्व में देखने में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

पंत के काव्य को समझने के लिए उनके साधारण व्यक्तित्व और काव्य-व्यक्तित्व के विकास का समानांतर अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। उनके संदर्भ में इन दोनो को बराबर महत्त्व देने का कारण यह भी है कि पोप जैसा द्वैध उनमें नहीं है। वे व्यक्तिगत जीवन में जैसे शालीन, मधुर, अभिजात, सहानुभूतिशील और बौद्धिक हैं, वैसे ही अपने काव्य में भी। उनके साधारण व्यक्तित्व का जिस क्रम से विभिन्न प्रभावों के अंतर्गत तथा अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से विकास हुआ, उनका काव्य-व्यक्तित्व भी उसी क्रम से विकसित हुआ। इसलिए पंत के संदर्भ में इन दोनों का अध्ययन समान रूप से महत्त्वपूर्ण है।

जीवन-चित्र

कौसानी—अल्मोड़ा, जिसे कभी-कभी 'भारत का स्विट्जरलैंड' कहा गया है, उसी अल्मोड़े जिले के कौसानी गांव में पंत का जन्म २० मई, सन् १९०० को हुआ। यह स्थान अल्मोड़े से उत्तर कोई ५३ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। चीड़ के लम्बे वृक्षों, देवदारु और बांझ के घने वनों की हरीतिमा तथा बुरुंश के मधुछत्तों के समान फूलों की लालिमा से आच्छादित, रंग-बिरंगे वन-फूलों तथा वन-पक्षियों से भरी यह विशाल घाटी अल्मोड़े के सुन्दरतम स्थलों में गिनी जाती है। जन्म के तत्काल बाद ही पंत को मातृहीन होना पड़ा। माता सरस्वती देवी पुत्र-जन्म के कुछ ही घंटों बाद चल बसीं, पर मां की गोद का अभाव प्रकृति की गोद ने बहुत कुछ पूरा किया। प्रकृति के कवि के रूप में पंत की जो प्रसिद्धि हुई उसकी पृष्ठभूमि कौसानी के प्राकृतिक वातावरण में निर्मित हुई। बाल्यकाल में प्रकृति का जो साहचर्य हमारे कवि को प्राप्त हुआ वह उसके मन-प्राणों पर सदैव किसी न किसी रूप में छाया रहा है। प्रकृति में उन्होंने एक व्यापक चेतना का स्फुरण और मानवीय जगत् के प्रति संवेदनशीलता देखी। इसने उन्हें बचपन से ही सूक्ष्म कलाबोध और संवेदना के सूक्ष्म स्तरों की अनुभूति अवश्य दी होगी।

पिता गंगादत्त पंत कौसानी के चाय के बगीचे के मैनेजर थे और स्वतंत्र रूप से लकड़ी का व्यापार भी करते थे। प्रारंभ में नाम रखा गया गोसाईं दत्त—गोसाईं दत्त आठ भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। चौथी कक्षा तक गोसाईं दत्त की शिक्षा कौसानी के वर्नाक्युलर स्कूल में हुई। उसके उपरान्त उन्हें गवर्नमेंट हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अल्मोड़ा भेजा गया। कौसानी से बाहर जाने का यह पहला अवसर था और यहीं से उनके मानसिक-आत्मिक विकास का प्रथम चरण प्रारंभ होता है। अपने अल्मोड़ा-वास की जिन बातों का उल्लेख पंत ने किया है, उनमें सबसे पहली नाम-परिवर्तन-

सम्बन्धी है। यहां आकर पंत ने अपना नाम बदलकर सुमित्रानन्दन रख लिया। लक्ष्मण के व्यक्तित्व से छुटपन में ही उन्होंने तादात्म्य कर लिया था। बचपन में ही उनके मन में किसी तरह यह धारणा बन गयी थी कि लक्ष्मण बड़े ही सुन्दर और सुकुमार थे।

दूसरी बात जिस पर पंत का ध्यान गया, वह उनकी वेशभूषा थी। वस्त्रों की तरफ उनका ध्यान अधिक रहने लगा, और नेपोलियन के एक चित्र को देखकर उन्होंने बाल भी बढ़ा लिये। इसी समय उनकी अभिरुचि साहित्य की ओर होने लगी। स्वामी सत्यदेव जी के देश-प्रेम तथा भाषा-प्रेम से ओतप्रोत भाषणों का पंतपर बड़ा प्रभावपड़ा। स्वामी जी के प्रयत्नों से ही 'शुद्ध साहित्य समिति' नाम से हिन्दी का एक सार्वजनिक पुस्तकालय भी खुल गया, जिसमें अनेक प्रकार के पत्र-पत्रिकाएं, काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी-संग्रह, जीवनियों आदि का अच्छा संग्रह हो गया। इन्हीं में कवि के एकांतप्रिय मन ने अपना साथी खोज लिया। स्वभाव से कुछ अंतर्मुखी होने के कारण समवयस्कों से विशेष मित्रता तो थी नहीं, उनका अधिक-से-अधिक समय साहित्यिक कृतियों की संगति में ही बीतने लगा। इसी समय १९१६-१७ की जाड़े की छुट्टियों में 'हार' उपन्यास लिखा। साधु-संतों का प्रभाव कौसानी में ही कम नहीं था, यहां आकर वह कुछ और बढ़ गया। एक बार एक सुदर्शन साधु के साथ पढ़ाई-लिखाई छोड़कर जाने को भी तैयार हो गये, पर बड़े भाई की बुद्धिमानी से यह मामला टल गया।

पंत ने सातवीं-आठवीं कक्षा में ही कवि-कर्म को अपनाने का निर्णय ले लिया। इसी समय उनका परिचय गोविन्द वल्लभ पंत, नाटककार इलाचन्द्र जोशी तथा कुछ अन्य साहित्यिकों से हुआ। जोशी जी उन दिनों एक हस्तलिखित पत्र निकालते थे, जिसमें पंत की कविताएं नियमित निकलने लगीं। फिर भी अपने समवयस्कों में वे इस काल में विशेष लोकप्रिय नहीं हो पाते थे। उन्हें अपना विकास अकेलेपन में ही होता दीखता था। वे प्रायः अपने में ही डूबे रहते थे और अन्य बालकों-किशोरों के साथ खेलने-कूदने में कोई रुचि प्रदर्शित नहीं करते थे। इसी काल की एक और छोटी-सी घटना उल्लेखनीय है। सन् १९१६ में कभी उन्होंने अपना उपनाम 'नन्दिनी' रख लिया। 'हार' की पांडुलिपि में भी यह नाम दिखता है, यद्यपि बाद में वह निकाल दिया गया है।

अल्मोड़ा के जीवन में पंत रम ही रहे थे कि उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए अपने मझले भाई के साथ सन् '१८ की जुलाई में बनारस आना पड़ा। जिस साहित्यिक साधना की शुरुआत अल्मोड़े में हुई थी, बनारस पहुंचने के बाद वह और भी दृढ़ हो गयी। पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने की आदत यहां और बढ़ी और अवसर भी कुछ अधिक मिला। इसी समय उनका परिचय रवीन्द्र तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू के साहित्य से हुआ। संस्कृत के कवियों—विशेषतः कालिदास और भवभूति का जमकर अध्ययन करने का अवसर मिला। हिन्दी में रीतिकाल के कवियों का उन्होंने खूब अध्ययन किया। इन विभिन्न प्रभावों का प्रतिफलन 'वीणा' और 'ग्रंथि' में स्पष्ट देखा जा सकता है।

बनारस में थियोसॉफिकल सोसाइटी में रवीन्द्रनाथ के दर्शनों का संयोग भी हुआ। पंत उनके व्यक्तित्व और भाषण से बहुत प्रभावित हुए। इसी काल में उन्होंने

बाइबिल का भी कुछ अध्ययन किया। बाइबिल के अध्ययन से उन्हें तृप्ति मिली।

हाई स्कूल की परीक्षा देकर जब पंत छुट्टियों में घर लौटे तो वहां उन्होंने 'वीणा' के अधिकांश प्रगीतों तथा 'ग्रंथि' की रचना की। इनकी शैली और भावभूमि मे सम्भवतः बनारस में प्राप्त काव्य-संस्कारों का योग रहा हो। हाई स्कूल की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के बाद पंत १९१९ की जुलाई में म्योर कालेज, प्रयाग में भर्ती होने के लिए आ गये। बनारस के बाद एक तरह से प्रयाग उनकी सरस्वती का साधना-स्थल रहा है। यहीं उन्हें आत्मसंस्कार के लिए उचित वातावरण भी मिलता प्रतीत हुआ। प्रयाग मे पहली बार वे कवि-सम्मेलनों के मंच पर आये। पहला कवि-सम्मेलन १९१९ के नवबर म हिन्दू बोर्डिंग हाउस (जिसमें पंत रहते थे) में हुआ। यहीं पंत ने अपनी 'स्वप्न' शीर्षक रचना पढ़ी। 'स्वप्न' अगले महीने 'सरस्वती' में प्रकाशित हो गयी। दूसरा कवि-सम्मेलन हरिऔध जी की अध्यक्षता में हुआ। इसमें पंत ने 'छाया' शीर्षक कविता पढ़ी। हरिऔध जी उनके कविता-पाठ से इतने प्रसन्न हुए कि बीच में ही उठकर उन्होंने अपने गले का फूलों का हार उनके गले में डाल दिया। इन सफलताओं से कवि को एक बल और आत्म-विश्वास प्राप्त हुआ।

प्रयाग आने के बाद पंत कालिदास के सौंदर्य-बोध से विशेष रूप से प्रभावित हुए। अंग्रेजी के नव-स्वच्छन्दतावादी कवियों—वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि का अध्ययन भी उन्होंने इसी समय किया। १९२१ में आनन्द-भवन में गांधीजी का भाषण सुनने का सुयोग भी पंत को प्राप्त हुआ। कुछ उससे प्रभावित होकर और बहुत कुछ अपने भाई की प्रेरणा से, जो उनके साथ ही हिन्दू बोर्डिंग में रहते थे, पंत ने पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। कालेज छोड़ने के बाद वे अपने इन्हीं स्वभाव-प्रेरित कार्यों में प्रवृत्त हुए। इसके बाद मानसिक-बौद्धिक स्तर पर भी, और जीवन की ठोस भौतिक भूमि पर भी उन्हें लगातार संघर्ष मे जीना पड़ा। उस अशांति के परिहार के लिए उन्होंने अध्यात्म और दर्शन में मन लग-वाया। उपनिषद्, गीता, रामायण, रामकृष्ण-वचनामृत, विवेकानन्द, रामतीर्थ, पातंजलि, योगवाशिष्ठ्य, रस्किन, टॉलसटॉय, कार्लाइल, थोरा, इमरसन आदि का गम्भीर अध्ययन उन्होंने किया।

१९२२ में 'उच्छ्वास' प्रकाशित हुई। उसके प्रति अत्यंत मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। किसी ने उसे आसमान पर उठा दिया तो किसी ने 'बकवास' बताया। इन दिनों जिन वयोवृद्ध लोगों ने पंत को उत्साहित किया उनमें श्रीधर पाठक का नाम पंत ने आदर-पूर्वक लिया है। तब चाहे 'उच्छ्वास' को जिस प्रकार भी ग्रहण किया गया हो, इस समय वह निश्चित रूप से पंत की नहीं, आधुनिक हिन्दी साहित्य की सुन्दरतम रचनाओ में गिनी जाती है।

सन् १९२६ में 'पल्लव' प्रकाशित हुई। 'पल्लव' की भूमिका हिन्दी की आधुनिक कविता का दस्तावेज है। इस भूमिका में ब्रजभाषा और रीति-काव्य के विरुद्ध खड़ी बोली और उसकी नयी कविता का पक्ष अत्यन्त आग्रहपूर्वक स्थापित किया गया है। पिछले अध्ययन तथा प्रभावों के साथ 'पल्लव' की कविताओं में उन्नीसवीं शती के अंग्रेज कवियों का विशेष प्रभाव रहा है। पल्लव की लम्बी कविताएं—विशेषतः 'परिवर्तन'

कवि के मानसिक अन्त:संघर्ष और बौद्धिक मंथन का परिचय देती हैं।

इस समय तक कवि के मन पर चल रहा एक तरह का संघर्ष समाप्त ही हुआ था कि दूसरा संघर्ष प्रारंभ हो गया। इसी बीच पंत के परिवार की आर्थिक स्थिति भी डावांडोल हो गयी। व्यापार में घाटा होने से इतना कर्ज हो गया कि उसको चुकाने के लिए जमीन-जायदाद के साथ मकान भी बेचना पड़ा। बीच में भाई और पिता जी की मृत्यु ने पंत के दु:ख को और भी बढ़ा दिया। इन मानसिक दबावों के अतिरिक्त उनके मन पर 'सूक्ष्म रहस्यात्मक अनुभवों' का दबाव भी इसी काल में पड़ने लगा। इन दबावो के कारण सृजनात्मक लेखन लगभग स्थगित कर देना पड़ा। आर्थिक अभाव के कारण कुछ विदेशी कहानियों तथा असगर गोंडवी की सहायता से 'रुबाइयात उमरखय्याम' का अनुवाद उन्होंने किया (यह पुस्तक अब 'मधुज्वाल' नाम से प्रकाशित हुई है)।

विभिन्न बाहरी-भीतरी दबावों के नीचे पंत का मन-मस्तिष्क टूटने लगा। इन दिनों वे कुछ आत्मविस्मृत-से रहने लगे थे। इसी मन:स्थिति में उनकी मित्रता श्री पूरन-चन्द जोशी से घनिष्ठ हो गयी। उनके सहवास में पंत को साम्यवाद से परिचित होने का अवसर मिला।

पर इतने-इतने मानसिक तनावों व दबावों को झेलकर भी कवि का मन कही कुंठित नहीं हुआ। यह कल्पना करना कठिन है कि जिस व्यक्ति का जन्म तथा पालन-पोषण अपेक्षाकृत सम्पन्न परिस्थितियों में हुआ हो, वह सहसा इतनी सारी आर्थिक कठि-नाइयां और अन्य प्रकार के दु:ख झेलकर भी उतना ही प्रकृतिस्थ कैसे रह सका होगा। पत के 'गुंजन' या 'ज्योत्स्ना' में हम इन विषम परिस्थितियों की कोई छाया नहीं पाते। यह हमारे कवि की असाधारण तटस्थता और साहस का परिचायक है। निस्संदेह वेदांती की सी समत्व-भावना के साथ उन्होंने सुख-दु:ख को ग्रहण किया।

सन् १९३१। कुंवर सुरेशसिंह के आग्रह पर पंत कालाकांकर गये। इसके बाद से '४० तक का काल अधिकतर उन्होंने वहीं व्यतीत किया। कालाकांकर के स्वच्छ वाता-वरण में कवि को मानसिक स्वास्थ्य-लाभ हुआ। वहां उन्होंने गंगा के किनारे ऊंचे भीटे पर बनी हुई एक छोटी-सी कॉटेज को अपने निवास के लिए चुना और उसका नाम रखा 'नक्षत्र'। दरअसल, 'गुंजन' के अधिकांश प्रगीत यहीं लिखे गये। 'ज्योत्स्ना' नामक एक रूपक भी यहीं लिखा गया। कवि के अनुसार ये रचनाएं विगत वर्षों की प्रयाग की जीवन-साधना का ही परिणाम थीं। कालाकांकर का उसमें इतना ही योगदान है कि वहा उन विचारों और भावनाओं को रूप देने का अवकाश मिल सका। 'गुंजन' कवि की वैचारिक प्रौढ़ता का परिचायक है। जीवन-संघर्षों से उबरकर कवि ने सुख-दु:ख को समभाव से स्वीकार करने की जो दृष्टि प्राप्त की वह इस संग्रह के बहुत-से प्रगीतो मे वाणी प्राप्त करती है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह में कवि की दो प्रौढ़तम रचनाएं—'चांदनी' और 'नौका-विहार'—संग्रहीत हैं। 'नौका-विहार' की पृष्ठभूमि कालाकांकर की है। चित्रों की दृष्टि से इतनी समृद्ध कविताएं पंत के साहित्य में ही नहीं, आधुनिक हिन्दी साहित्य में विरल हैं। इस प्रकार 'गुंजन' जहां एक ओर वैचारिक प्रौढ़ता का परिचायक है, वहां भाषा और शिल्प के स्तर पर भी यह प्रौढ़ता का प्रमाण देता है।

'ज्योत्स्ना' 'गुंजन' की वैचारिक सरणि का ही विकास है। इसमें कवि ने अपने विश्व-जीवन के स्वप्न को अवतरित करने का प्रयास किया है।

कालाकांकर में प्रायः दो वर्ष रहने के बाद पंत पहली बार अल्मोड़े लौट गये। वहां उन्होंने मार्क्स तथा फ्रायड को ध्यान से पढ़ा। इसमें उन्हें अपने बड़े भाई से बहुत सहायता मिली। मार्क्स और फ्रायड के प्रमुख सिद्धान्तों के आलोक में जीवन को समझने का प्रयास पंत ने करना प्रारंभ किया। गांधी जी के नेतृत्व में आदर्शवादी कर्मवादिता का जो प्रकाशन देशव्यापी असहयोग आन्दोलन में देखने में आया, उसका प्रभाव तो उनपर रहा ही था, अब रूसी क्रांति के बाद सामाजिक यथार्थ की जो नवीन अवधारणा प्रतिष्ठित हुई उसका भी प्रभाव वे ग्रहण करने लगे। इन सबकी सम्मिलित प्रतिक्रियास्वरूप विश्व-जीवन तथा मानव-जीवन के प्रति उनकी आस्था तथा आशा बढ़ती ही गयी। इस काल के इन नवीन भाव तथा विचार-जगत् को पंत ने अपने काव्य-संग्रह 'युगांत' तथा कहानियों (संग्रह 'पांच कहानियाँ') में प्रारंभिक अभिव्यक्ति दी। 'गुंजन' में पंत की यह धारणा प्रकट हुई थी कि मनुष्य को अपने भीतर नव-मानव के रूप में बदलना है। अब उनकी यह धारणा प्रकट हुई कि उसे बाहर से भी एक नवीन सामाजिक प्राणी के रूप में बदलना है। 'युगान्त' में पहली बार उनका ध्यान प्रकृति-मुख से हटकर मानव-मुख पर गया। 'युगान्त' से मानवीय दुःख-दर्द के प्रति प्रतिबद्धता का जो सिलसिला शुरू हुआ था वह रूप बदलकर आखिर तक जारी रहा। विभिन्न स्तरों पर मानवीय समस्याओं से जूझकर मानवीय पूर्णता की खोज का प्रयास 'पल्लव' के बाद की सारी रचनाओं में मिलता है। निश्चित रूप से इस जीवनोन्मुखता की बहुत-सी पृष्ठभूमि इसी काल में व्यक्तिगत समस्याओं, मार्क्सवाद के अध्ययन तथा साथ ही बाइबिल के पारायण द्वारा निर्मित हुई। यहीं यह भी उल्लेखनीय है कि जब कवि की दृष्टि कुछ इस प्रकार निर्मित हो रही थी, तभी उसे महात्मा गांधी को निकट से देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। यद्यपि यह मुलाकात बहुत छोटी रही, पर उन्हें इस भेंट के कुछ क्षणों में गांधी के महानतम व्यक्तित्व का अंत-स्पर्श मिल सका। गांधी जी का प्रभाव उन पर आत्मिक, अतीन्द्रिय और सूक्ष्म ढंग का था, जिसके कारण उनकी अपनी चेतना या आत्मा में एक नवीन तेजोमय सात्त्विकता का आविर्भाव हुआ। जिस प्रकार भी हो, पंत के कवि-व्यक्तित्व पर गांधी का प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से उनके काव्य में ही रेखांकित किया जा सकता है।

१९३९ के जाड़ों में वे फिर कालाकांकर आ गये। इस बार वे चार वर्ष तक लग-भग लगातार यहीं रहे। कालाकांकर का यह दूसरा प्रवास कई दृष्टियों से पहले प्रवास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। इस बार वे समवर्ती ग्राम-जीवन, ग्रामीणों के वातावरण, रहन-सहन, स्वभाव आदि की ओर अधिक सजग रहे। कालाकांकर में ही उन्हें अपने देश की मध्ययुगीन, रूढ़िप्रिय संस्कृति को समझने तथा उसका विश्लेषण करने का भी अव-सर मिला। ग्राम-जीवन में प्रचलित मध्ययुगीन रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति उनके मन में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई, जिसका प्रमाण 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचनाओं मे मिलता है। इसी बीच कई बार शांतिनिकेतन जाने तथा रवी बाबू के निकट सम्पर्क मे आने का भी अवसर मिला।

राष्ट्रीय आंदोलनों की प्रतिध्वनि कालाकांकर में भी सुनाई देती थी। इसलिए कालाकांकर के एकांत में भी महात्मा गांधी के उपवासों तथा आमरण-व्रतों से कवि का मन उद्वेलित होता रहता था और वे सतत् देशव्यापी मुक्ति-आन्दोलन से नाना स्तरों पर अपने को जुड़ा हुआ पाते थे। वास्तव में इन्हीं परिस्थितियों और मनःस्थिति में उन्होंने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। यहां तक आते-आते कवि स्पष्टतः एक वस्तुनिष्ठ दृष्टि से अपने चारों ओर के संसार को देखने लगा और उसकी विषमताओं और विसंगतियों के मूल में जाकर उनका निदान खोज निकालने के लिए व्यग्र हुआ। 'युगवाणी' मे और बाद में 'ग्राम्या' में यह भी स्पष्ट दिखाई दिया कि कवि ने एक ही समय पड़े हुए दो प्रभावों—मार्क्सवाद और गांधीवाद—को किस प्रकार आत्मसात् किया। गांधी के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पंत यहां उतने ही प्रभावित दिखाई पड़ते हैं, जितने मार्क्स के वस्तुवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से। दोनों परस्पर असमान विचारधाराएं अन्ततः पंत की नवीन जीवन-दृष्टि में एक ही भूमिका में उतारी गयी हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि पंत का स्वतन्त्र विचारक-व्यक्तित्व भी उनके कवि-व्यक्तित्व से कम गौरवशाली नहीं है।

'ग्राम्या' की अधिकतर कविताएं दिसम्बर '३९ से फरवरी '४० तक के अल्पकाल मे लिखी गयीं। 'ग्राम्या' में पंत ने गांवों की प्रचलित भावुकता-भरी अयथार्थ तस्वीर को छोड़कर उनकी सही तस्वीर पेश की। उन्होंने ग्राम्य-जीवन का यथार्थ, सहज और मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया। 'ग्राम्या' में जीवन का स्पन्दन है। साथ ही वैचारिकता भी खूब प्रस्फुट होकर सामने आयी है। फिर भी ग्राम्य-जीवन की सहज प्रतिध्वनि होने के कारण यहां शैली 'युगवाणी' की अपेक्षा अधिक भावनापूर्ण है।

सन् '४० में 'ग्राम्या' समाप्त होते-होते पंत को लगने लगा कि कालाकांकर मे उनका कार्य समाप्त हो गया है। और अन्ततः वे कालाकांकर छोड़कर अलमोड़ा चले गये। कई कारणों से वे सन '४१ में पूरे साल अलमोड़े में रहे। वहां वे 'उदयशंकर संस्कृति केन्द्र' के सम्पर्क में भी आये।

'ग्राम्या' के प्रणयन के बाद से ही पंत को अनुभव होने लगा था कि राजनीतिक आर्थिक संघर्ष के साथ ही मनुष्य की नवीन मानसिक संरचना के लिए एक सांस्कृतिक आंदोलन की भी उतनी ही आवश्यकता है। इसी प्रेरणा के वश उन्होंने सन् '४२ मे 'लोकायन' नाम से एक व्यापक संस्कृति पीठ की योजना बनाई, जिसमें रंगमंच को सांस्कृतिक प्रेरणा का माध्यम बनाने का विचार किया गया था। १९४३ में उन्होंने दो-तीन महीने तक उदयशंकर के दल के साथ भारत-भ्रमण भी किया, पर इससे उनके मन के अवसाद और अशांति को कोई समाधान न मिल सका। उनके मानस में अकेले गांधीवाद या अकेले मार्क्सवाद के प्रति असंतोष का जो क्षीण स्वर 'युगवाणी', 'ग्राम्या' मे ही परिलक्षित होता है, वह अब अधिक तीव्र होकर उनके मन को मथने लगा था। उन्हें लगने लगा था कि बाह्य रूप से एक सुव्यवस्थित तंत्र में रहने पर भी यदि मानव-जीवन भीतर से उन्नत न हो सके और यदि उसमें उच्चतम मानवीय गुणों का विकास होने के बदले वह केवल समतल शक्तियों से जूझने के लिए यंत्र-मात्र बन जाय और उसे

मनुष्यत्व के मूल्य पर बाह्य व्यवस्था तथा संतुलन स्थापित करना पड़े तो ऐसा समाज या तन्त्र और जिसके भी योग्य हो, मनुष्य के योग्य नहीं कहा जा सकता।

१९४३-४४ के बीच पंत को दीर्घकाल तक अस्वस्थ रहना पड़ा। स्वास्थ्य-लाभ करने के उपरांत सन् '४४ में उदयशंकर के 'कल्पना' चित्र के निर्माण के सिलसिले में उन्हे मद्रास जाने का संयोग हुआ। मद्रास पहुंचने के पांच-छः महीने बाद वे उदयशंकर ट्रुप के कुछ व्यक्तियों के साथ पांडिचेरी, श्री अरविन्द आश्रम गये। श्री अरविन्द आश्रम के वातावरण से अज्ञात ढंग से वे अत्यंत प्रभावित हुए। उसके बाद दो-तीन वर्षों के भीतर अपने दक्षिण भारत-प्रवास के काल में पंत को पांडिचेरी जाने के कई अवसर मिले। आश्रम के स्वस्थ आत्मिक प्रभाव के अतिरिक्त श्री अरविंद के सम्पर्क से उनकी आध्यात्मिकता सबंधी नवधारणाएं और भी पुष्ट और संवर्धित हुईं।

दक्षिण भारत प्रवास-काल में ही पंत ने अपनी दो कविता-पुस्तकों 'स्वर्णकिरण' तथा 'स्वर्णधूलि' की कविताएं लिखीं। इन रचनाओं में कवि की नवीन जीवन-दृष्टि तथा काव्य-दृष्टि को स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली। १९४६ की जुलाई में पंत प्रयाग लौट आये। यहां पहुंचकर 'स्वर्णकिरण' तथा 'स्वर्णधूलि को प्रकाशित कराया।

सन् १९४९ में 'उत्तरा' प्रकाशित हुई। इसकी लम्बी भूमिका ने पंत के अपने चेतनावादी काव्य पर किये गये नाना मिथ्या आरोपों और भ्रामक धारणाओं का खण्डन किया तथा अपना दृष्टिकोण आग्रहपूर्वक स्थापित किया। 'बाहर के साथ भीतर की क्रांति' का जो दर्शन उनके 'स्वर्णकिरण' तथा 'स्वर्णधूलि' नामक संग्रहों में प्रकट हुआ था, 'उत्तरा' में भी उन्होंने उसी को वाणी दी।

१९५० में पंत जी ऑल इंडिया रेडियो में परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुए। सन् '५७ की अप्रैल तक वे रेडियो से सीधे संबद्ध रहे। इस बीच उनके 'रजत शिखर' ('५१), 'शिल्पी' ('५२), 'अतिमा' ('५५) और 'सौवर्ण' ('५७)—ये चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। इनमें 'अतिमा' को छोड़कर बाकी तीन संग्रहों में कुल ११ पद्यबद्ध समस्यारूपक हैं, जिनमें अनेक युगीन समस्याओं पर विवेचनात्मक दृष्टि डाली गयी है। १९५८ में 'वाणी' प्रकाशित हुई। उसमें 'आत्मिका' शीर्षक एक लम्बी रचना में पंत ने अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं को छन्द-बद्ध किया है। इस रचना से प्रतीत होता है कि इस काल में ('५८ के आसपास) पंत का चित्त पर्याप्त स्वस्थ और सबल था।

'स्वर्णकिरण और 'स्वर्णधूलि' से लेकर 'वाणी' तक की काव्य-यात्रा कवि पंत की बहु-आयामी जीवन-दृष्टि का प्रकाशन करती है। उनकी बाद की कृतियों में भी बराबर इस स्वर की प्रधानता रही है। सन् '५० के आसपास पंत को हम अपने व्यापक अनुभव, चिन्तन तथा अध्ययन से एक निश्चित, सर्वांगीण तथा बृहदायामी जीवन-दर्शन स्थिर करता पाते हैं। यह जीवन-दर्शन उनकी अगली कृतियों में भी बराबर हमारे कवि का सम्बल बना है। अवश्य ही उनकी बाद की और कृतियों में भाव, विचार और कला के नये-नये स्तर उद्घाटित हुए हैं, पर उन सबके मूल में यह जीवन-दर्शन सदैव सक्रिय रहा है, इसमें संदेह नहीं।

१९५९ में 'कला और बूढ़ा चांद' आया। निस्संदेह रूपविधान की दृष्टि से यह

संग्रह पिछले संग्रहों से कुछ भिन्न है। बिम्ब-योजनाएं बहुत नयी हैं। १९५८ में ही 'चिदम्बरा' का भी प्रकाशन हुआ। इसमें 'युगवाणी' से 'अतिमा' तक की रचनाओं का सचयन है। 'चिदंबरा' की भूमिका—'चरणचिह्न'—उसके स्वतंत्र महत्त्व का कारण है। उनकी षष्टिपूर्ति पर दिल्ली में साहित्यकारों तथा अन्य गणमान्य व्यक्तियों द्वारा उनका अभिनन्दन किया गया। इस प्रसन्नता में योग देने के लिए मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा तथा अज्ञेय ने अपनी रचनाएं उन्हें समर्पित कीं। १९६१ मे राष्ट्रपति की ओर से 'पद्मभूषण' की उपाधि प्राप्त हुई। इसी वर्ष 'कला और बूढ़ा चाद' पर साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार-सम्मान भी प्राप्त हुआ।

१९६४ में 'लोकायतन' प्रकाशित हुआ। 'लोकायतन' कदाचित् पंत की सर्वाधिक विवादग्रस्त कृति रही है। कभी उसके महाकाव्यत्व को लेकर, कभी उसमें एक आत्म-कथात्मक तत्त्व का अनुमान करके तो कभी उसमें निहित जीवन-दर्शन को लेकर बड़े-बड़े विवाद हुए हैं। एक प्रकार से 'लोकायतन' पंत के नवीन चेतनावाद का उत्कर्ष बिन्दु है।

'लोकायतन' के प्रकाशित होने के अगले ही वर्ष उस पर विशेषतः तथा पंत के कृतित्व पर सामान्यतः—सोवियत भूमि का 'नेहरू पुरस्कार' प्राप्त हुआ। इसी वर्ष वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित हुए। उधर उत्तरप्रदेश सरकार ने उनकी विशिष्ट साहित्यिक सेवाओं के लिए दस हजार रुपये का एक विशेष पुरस्कार दिया। '६६ में वे रूस की यात्रा पर गये।

'लोकायतन' के बाद पंत की 'पौ फटने से पहले' (१९६७), 'किरण-वीणा' (१९६७), 'पतझर : एक भाव-क्रान्ति' (१९६९), 'गीत-हंस' (१९६९), 'शंखध्वनि' (१९७०), 'शशि की तरी' (१९७१) तथा 'समाधिता' (१९७३) कृतियां आयी। स्वयं पंत की दृष्टि में इन संग्रहों की कविताएं 'विकासवादी' कही जा सकती हैं। इस बीच साहित्य के क्षेत्र में असंख्य छोटे-बड़े आन्दोलन आये और चले गये, पर पंत अत तक अपनी उसी अंतश्चेतना के सहारे सृजन के मार्ग पर बढ़ते रहे हैं। यह उनकी गहन रचनात्मक दृष्टि का ही परिचायक है कि उन्होंने अपनी नवीनतम कृतियों में भी साहित्य मे व्याप्त अनास्था की धुंध के विरुद्ध अपनी आस्था और नव-मानवता का अपना स्वप्न बनाये रखा है। १९६७ में विक्रम विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट् की उपाधि दी। '६८ में उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९७० की अप्रैल में वे साहित्य अकादमी के सम्मान्य सदस्य चुने गये। इस प्रकार अनेक संघर्षों के उपरान्त पंत उस स्थिति को प्राप्त कर सके थे जिसे हम सफलता (फलवत्ता) की स्थिति कह सकते हैं। बड़ी बात है कि व्यक्तिगत रूप से पंत अपने जीवन के सतहत्तर वर्षों के बाद भी कोमल (पर दृढ़), सौम्य, चिंतनशील, एकांतप्रिय और दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखनेवाले बने रहे।

काव्य-व्यक्तित्व और उसका विकास-क्रम

पंत के साहित्य के किसी भी गंभीर अध्येता के समक्ष उनके समग्र, विशिष्ट

काव्य-व्यक्तित्व का एक स्पष्ट, परिभाषेय रूप उभरता है। पंत के काव्य-व्यक्तित्व को उसकी समग्रता में समझे बिना न तो उनकी वृहत् काव्य-यात्रा को ठीक-ठीक आकलित किया जा सकता है, न उनके काव्य में प्रकट होनेवाले कुछ ऊपरी विरोधाभासों को सही परिप्रेक्ष्य में रखकर निरसित ही किया जा सकता है। आगे हम इस काव्य-व्यक्तित्व की कुछ सामान्य विशेषताएं निरूपित कर पचास वर्षों से भी अधिक के लम्बे प्रसार में उनके विकास-क्रम को समझने का प्रयास करेंगे।

पंत के काव्य-व्यक्तित्व की जो विशेषता हमारा ध्यान सबसे पहले आकृष्ट करती है, वह है जीवन के प्रति उनकी सहज उन्मुखता। जीवन के जिन अनेक भिन्न-भिन्न आयामों का साक्षात्कार वे अपने सुदीर्घ काव्य-काल में कर सके थे, वह इसी कारण संभव हुआ। पंत के काव्य-जीवन के मोड़ों को इस जीवनोन्मुखता अथवा ऐतिहासिक अनुभूति के माध्यम से ही समझा जा सकता है जिसके कारण कवि सदैव अपने को जीवन की गति के केन्द्र में स्थापित करता रहा और उस गति की धड़कनों को सीधे सुनता, अन्य शब्दों में वह समय का आन्तरिक साक्षात्कार लगातार करता रहा। संवेदनशील कवि के लिए बाह्य जीवन-व्यापार भी अपने अन्तस् में सतत् घटती हुई एक प्रक्रिया है जो उसकी चेतना को बराबर परिचालित करती रहती है। कोई कवि अन्तर्मुख है या बहिर्मुख, यह बात प्रायः जीवन के प्रति उसकी उन्मुखता का स्वरूप निश्चित करती है, इसमें सन्देह नहीं। पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं हो सकता कि वह किसी कवि की जीवनोन्मुखता या जीवन-विमुखता का मापदण्ड नहीं बन सकती। समस्त जीवन-संघर्ष को अपने भीतर घटित होते महसूस करना और उसके भीतर से अपनी अन्तःप्रज्ञा में उस संघर्ष के समीकरण और एक व्यापी सामंजस्य की खोज करना, अपने-आप में, जीवन के किसी एक पक्ष को ही समस्त जीवन का सत्य मानकर अपने को उसका पक्षधर बना लेने की अपेक्षा बहुत बड़ा काम है।

यहां हम उससे भी थोड़ा और आगे बढ़कर यह कहना चाहते हैं कि काव्य में जिसे अन्तर्मुख होना कहते हैं, पंत उस अर्थ में अन्तर्मुख हैं ही नहीं। एकदम प्रारंभ में वीणा में उन्होंने सरस्वती से यह आशीर्वाद मांगा था :

> आधरामृत से इन निर्जीवित
> शब्दों में जीवन लाओ,
> आंखों ने जो देखा, कर को
> उसे खींचना सिखलाओ।

ये पंक्तियां १९१८ में लिखी गई थीं। उस काल में भी पंत की दृष्टि बाह्य 'वास्तव' के प्रति ही थी, यह यहां स्पष्ट दिखाई देता है। पंत की प्रकृति-संबंधी कविताओं में इसी कारण प्रकृति अपने समस्त रूपाकार के साथ प्रस्तुत होती है, व्यक्तिगत भावों या आवेगों-संवेगों के साथ लिपटी हुई, उन पर आश्रित अथवा उनसे निर्धारित होकर नहीं। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कदाचित् 'आंसू' अथवा 'उच्छ्वास' में देखा जा सकता है। ये दोनों ही कविताएं निश्चित रूप से आत्मपरक (आत्मकथात्मक नहीं, 'व्यक्ति' के सुख-दुःख से बंधी) हैं। पंत की वृत्ति गोचर प्रकृति के रूपावयवों का सीधा

साक्षात्कार करके उन्हीं में रमती है, उन्हें अपनी भावना के रंग में रंगकर नहीं देखती। वास्तव में पंत की संवेदनात्मकता ही इस ढंग की है कि वे सीधे रूपात्मकता से प्रभावित होते हैं और उसी ताजगी के साथ वे अपने संवेदन को कविता में उतार भी देते हैं, उसमें अपनी कांट-छांट, विश्लेषण-संश्लेषण आदि का मेल नहीं करते।

यही बात मनोदशाओं और मनःस्थितियों के अंकन में भी दिखाई देती है। पंत अपने पाठक को मन:स्थितियां और मनोदशाएं देते हैं, गहन रूप से विश्लेषित और सश्लेषित भाव-दृश्य नहीं। पंत अन्त:स्थित भावों का आकलन-अध्ययन करके संश्लिष्ट भाव-चित्र प्रस्तुत करने की बजाय सांकेतिकता के सहारे उनके संवेदन को मूर्त कर देते हैं। संवेदन की ताजगी ही उनके भाव-चित्रों की जान है, संश्लिष्टता नहीं। इसके उदाहरण भी पंत के प्रथम चरण के काव्य से ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इन दो बातों पर बल देने का तात्पर्य इतना ही था कि अपने काव्य-काल के जिस खण्ड में पंत प्रायः अन्तर्मुख समझे गये हैं, उस खण्ड में भी वे वस्तुतः उस प्रकार अन्तर्मुख नहीं थे जिस प्रकार, उदाहरणार्थ, प्रसाद। कोई भी अन्तर्मुख कवि वस्तु अथवा भाव के संवेदनाजन्य प्रभाव तक ही अपने को नहीं रखता। उसके भीतर की तत्त्व-व्यवस्था ऐसी होती है कि वह सतत् ताजा भावों और प्रतिक्रियाओं में हस्तक्षेप करती चलती है। अन्तर्मुख कवि इसलिए सहज ही विश्लेषण और संश्लेषण की प्रवृत्ति प्रदर्शित करने लगता है। इस वास्तवोन्मुखता के कारण ही पंत अपने प्रथम चरण के काव्य में भी जीवन-विमुखता के दोष से बच गए हैं। जब छायावादी कविता का यौवन-काल था तब भी पंत रहस्यवादी और स्वकीय दु:ख आदि की निवृत्ति करनेवाली उक्तियों पर कम ही उतरे। जहां उतरे भी, वहां अन्ततः 'स्व' से बड़ा कुछ प्रधान हो जाता है। ग्रंथि में एक उदाहरण :

> विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
> ऊंघती है नींद-सी मेरी स्पृहा,
> ललित लतिका के विकंपित अधर में
> कांपती है मुखर मेरी कल्पना।

पंत की छायावादकालीन रचनाओं में भी इसी वास्तवोन्मुखता के कारण लोक-जीवन के चित्र भी उपलब्ध होते हैं। उनकी प्रेरणा सदैव अपने बाहर के जीवन से आती है। आत्मकेन्द्रित वे जीवन में कुछ रहे हों, साहित्य में कभी नहीं रहे।

सहानुभूति : १९३६ के आसपास जब पंत छायावादी काव्य-भूमि से निकलकर यथार्थवादी काव्य-भूमि पर आये तब इसी सहानुभूति के कारण नवीन काव्य-विजय—नये वास्तव—को अपनाने में उन्हें कोई अड़चन नहीं हुई। जनगण के प्रति उनकी जो सहानुभूति इस काल की रचनाओं में व्यक्त हुई वह इसी कारण वाद-प्रेरित न होकर स्वतःप्रेरित हुई। **'भारतमाता ग्रामवासिनी'** से लेकर **'तुम हंसते-हंसते कृष्ण बन गये मन में, जन-मंगल हित हैं'** तक पंत की सहज सहानुभूति का विस्तार ही प्रकट हुआ है। उसमें किन्हीं पूर्वनिर्णीत सिद्धान्तों का आग्रह नहीं है। पूर्वनिर्धारित सिद्धांतों को नवीन संवेदनाओं पर आरोपित करना होता तो पंत दु:ख-दारिद्र्य आदि की भी कोई अद्वैत-

वादी व्याख्या और समाधान ढूंढ़ लेते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया; क्योंकि दर्शन की धुंध से उनकी दृष्टि कभी आवृत्त नहीं हुई। फलतः वे मुक्तमन और मुक्तहृदय से 'वास्तव का ग्रहण कर सके।' चतुर्दिक् व्याप्त दुःख-दारिद्र्य को जानने के लिए उन्हे मार्क्सवाद की जरूरत नहीं पड़ी। इसके लिए उनकी अपनी सहानुभूति की दृष्टि थी। पुस्तकों के अध्ययन से यह दृष्टि उत्पन्न नहीं हुई, वरन् इस दृष्टि के कारण ही वे मार्क्सवाद के निकट गए। कवि की यही सीधी जीवनोन्मुखता 'ग्राम्या' के बाद की कृतियो मे भी प्रकट हुई जिसे पंत ने 'चेतनावादी काव्य' कहा है। किन प्रेरणाओं के अन्तर्गत पत की चेतना इस नई काव्य-भूमि में संक्रमित और प्रवाहित हुई उसका कुछ विचार ऊपर हो चुका है। आगे पंत के चेतनावादी काव्य के प्रसंग में इस पर विस्तृत विचार किया जायेगा। पंत का चेतनावादी काव्य भी उसी तरह जीवनोन्मुख है जिस प्रकार उनका सौंदर्यवादी या यथार्थवादी काव्य (जिनकी चर्चा हमने ऊपर की है)। 'चेतनावाद' से जो अंतर्मुख वृत्ति ध्वनित होती है, पंत के अध्येता को वह उनकी चेतनावादी कविताओ मे कहीं नहीं मिलेगी। वास्तव में अरविन्द का दर्शन, जिससे अपनी इस काव्यभूमि मे पत प्रवाहित हुए थे, स्वयं भी अंतर्मुख नहीं है। वह जीवनोन्मुखता के आग्रह के कारण इस दिशा में अरविन्द से भी आगे बढ़ गये हैं। इसलिए आन्तरिक मुक्ति का लोक-व्यापी प्रसंग पंत की दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुआ। उनके लिए जिस प्रकार बाह्य बधनों से मुक्ति एक सामूहिक वस्तु है, उसी प्रकार आन्तरिक मुक्ति भी। पंत की 'लोकायतन' के बाद से 'समाधिता' तक की कृतियों में भी, जिन्हें वे विकासवादी कहना चाहते थे, उनके इसी विचार का प्रतिफलन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'वीणा' से लेकर 'समाधिता' तक पंत की दृष्टि सर्वत्र जीवनोन्मुख रही है। 'वीणा' से 'समाधिता' तक की उनकी काव्य-यात्रा में यह जीवनोन्मुखता सदैव भिन्न-भिन्न आयामों में प्रकट होती रही है। इसलिए निर्भ्रान्त रूप से इसे उनके काव्य-व्यक्तित्व की प्रथम विशेषता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

भावदृष्टि : पंत के काव्य-व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता को उनकी भाव-दृष्टि कहा जायगा। भाव-दृष्टि से तात्पर्य उस विचार-पद्धति से है जो विश्लेषणमूलक बौद्धिक चिन्तन से भिन्न कविस्वभावोचित चिन्तन से उत्पन्न होती है। कवि पंत में यह भाव-दृष्टि उनके काव्य-जीवन के बहुत प्रारंभिक काल में प्रकट होती दिखाई देती है। क्रमश पुष्ट होती हुई, यह अधिक प्रौढ़ रूप में उनकी बाद की रचनाओं में उभरती है। जिसे पत की बौद्धिकता कहा जाता है, हम उसे ही उनकी भाव-दृष्टि कहना चाहेंगे। कई कारणो से यह शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रथम तो यह कि बौद्धिकता से जिस विश्लेषणमूलक दृष्टि की अपेक्षा होती है, वह पंत के काव्य में नहीं है। हम कह आये हैं कि पत अपने चतुर्दिक के जीवन का सीधा सामना या साक्षात्कार करते हैं और उसे अपने ग्रहण के अनुरूप चित्रित कर देते हैं। विचारों का सामना भी वे इसी तरह करते हैं। ठहरकर वे अपने संवेदनों को विश्लिष्ट और संश्लिष्ट बौद्धिक विचार का रूप नही देते। इसका अर्थ यह नहीं है कि पंत निष्कर्षों की खोज नहीं करते या उन्हें निष्कर्षों की उपलब्धि ही नहीं हुई। उनका समस्त परवर्ती काव्य निष्कर्षों की उपलब्धि का काव्य

है यहा इतना ही कहना है कि निष्कषा की उपलब्धि उन्होने बौद्धिक पद्धति की बजाय संवेदनात्मक पद्धति पर की। ऐसा न मानने पर उनकी सतत् परिवर्तनशीलता और विकासशीलता को समझ पाना कठिन होगा। बौद्धिक निर्णय बांधते हैं, परिवर्तन-शीलता उनमें बहुत कम होती है। इसलिए बौद्धिकता पंत की दृष्टि के लिए अनुपयुक्त, या कम-से-कम अपर्याप्त, शब्द है। भाव-दृष्टि से पंत की बौद्धिकता का सही रूप सामने आता है। इसके अतिरिक्त एक और भी बात है। भाव-दृष्टि कहने से हमारे सामने पत के समस्त काव्य में आद्यन्त व्याप्त एक विशेष प्रवृत्ति आ जाती है। बौद्धिकता शब्द से 'गुजन' के पहले की कविताओं का चित्र नहीं उभरता और 'गुंजन' की भी बीस से कम कविताएं ही सामने आती हैं। परन्तु पंत की भाव-दृष्टि को केवल 'गंजन-ज्योत्स्ना' काल मे ही खोजना अपने-आप में भ्रामक है। यह मानना विचित्र लगता है कि जो प्रवृत्ति कवि की एक पुष्ट कृति 'पल्लव' में नहीं थी वह अगली कृति में सहसा प्रकट हो गई।

जैसा कि हम बार-बार बलपूर्वक कह चुके हैं, पंत इतने संवेदनशील हैं कि कुछ काल तक भी जीवन से दृष्टि हटाकर बौद्धिक काट-छांट में उलझना उनके लिए प्रायः सम्भव नहीं होता। इसलिए विचारों का भी उन्होंने उसी प्रकार संवेदना के स्तर पर साक्षात्कार किया है जिस प्रकार दृश्य-चित्रों आदि का। उनकी अद्‌भुत संवेदन-क्षमता को विचार जहां तक ग्राह्य हुए हैं, वहां तक उनका काव्य संवेदन का काव्य है, जहा विचार स्वतंत्र रूप से 'कथित' हुए हैं (और ऐसे उदाहरण भी काफी ढूंढ़े जा सकते है), वहा संवेदना का योग न होने से काव्यात्मकता की हानि हुई है। अपनी स्वाभाविक वास्तवोन्मुखता के कारण वे प्रत्येक विचार को एकदम से खींचकर जीवन-संदर्भों मे ले आते हैं। कोई विचार-पद्धति बौद्धिक विश्लेषण के हिसाब से ठीक है, सिर्फ इतने से पत का काम नहीं चलता। वे उसे जीवन-व्यापक जीवन के संदर्भ में संवेदना के स्तर पर घटित करते हैं, उसे एक जीवन्त जीवन-पद्धति के रूप में देखना चाहते हैं। इसके बिना उनके लिए विचार की पूर्णता नहीं है। अरविन्द के दर्शन को स्वीकार करके पंत ने किस प्रकार व्यापक जीवन के संदर्भ में उसे स्थापित कर 'लोकायतन' में उसका रूप ही एकदम परिवर्तित या कहें, व्यापक कर दिया, यह इस बात का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। 'लोकायतन' में जिस प्रकार के व्यापक सामंजस्य का अवतरण किया गया है वह बुद्धि के स्तर पर विश्लेषण के आधार पर घटित हो नहीं सकता। इसी तर्क पर हम कहना चाहते है कि पंत में भाव-दृष्टि है, बौद्धिकता नहीं। और आगे बढ़कर हम यह भी कहना चाहते है कि बौद्धिकता, कम-से-कम पंत के संदर्भ में, भाव-दृष्टि से कुछ छोटी पड़ती है।

पर इस बात को समाप्त करने के पूर्व दो संभावित भ्रमों का निराकरण कर लेना चाहिए। एक भ्रम तो यह हो सकता है कि चूंकि पंत के काव्य-व्यक्तित्व मे बौद्धिकता नहीं है, इसलिए उनके काव्य में विचार नहीं हैं। पर ऐसा नहीं है। पंत के काव्य में विचार हैं, पर बौद्धिकता नहीं है। यह कथन कुछ अन्तर्विरोधी-सा लग सकता हे, पर वास्तव में यह पंत की एक विशेषता को बहुत सही ढंग से प्रस्तुत करता है। पत की कविता के बड़े भाग में विचार आये हैं, पर उनके पीछे जो दृष्टि है वह विश्लेषण की नही है। विश्लेषण की बजाय पंत विचारों को भी संवेदना के मार्ग से ही पकड़ते है।

इसी कारण उनके विचारों में एक अनोखी काव्यात्मक सार्थकता उत्पन्न हो सकी है। बौद्धिकता का अनिवार्य अंग विश्लेषणात्मक दृष्टि है जो पंत ने अपनी काव्य-यात्रा में बहुत कम ही अपनाई है। इसी कारण पंत की विचारशीलता को बौद्धिकता न कहकर भाव-दृष्टि कहना अधिक समीचीन है। यदि ऊपर निर्दिष्ट बातों को बराबर ध्यान में रखा जाय तो इसे एक बृहत्तर प्रकार की बौद्धिकता भी कह सकते हैं। पर जिसे कायदे से बौद्धिकता कहना चाहिए, वह बौद्धिकता पंत के काव्य में निश्चित रूप से नहीं है।

दूसरा भ्रम जो उत्पन्न हो सकता है वह यह कि पंत की अपनी निश्चित जीवन-दृष्टि नहीं है। यह भी सही नहीं है। पंत में एक गतिशील (डाइनेमिक) जीवन-दृष्टि बराबर रही है। उसे जीवन-दर्शन का रूप उन्होंने अपनी बहुत बाद की, प्रौढ़ वय की कृतियों में ही दिया है। पर कवि के लिए जीवन-दर्शन का महत्त्व नहीं होता, उसके लिए महत्त्व जीवन-दृष्टि का होता है। और यह जीवन-दृष्टि जितनी गतिशील होगी, कवि उतना ही जीवन्त होगा। पंत की जीवन्तता का यही रहस्य है। पंत की जीवन-दृष्टि आद्यन्त मुख्यतः दो प्रेरक तत्त्वों से परिचालित हुई है—एक को हम पूर्णता की खोज कह सकते हैं, दूसरे को सामंजस्य की खोज। आगे उन दोनों का हम अलग-अलग पंत के काव्य-व्यक्तित्व की स्वतंत्र विशेषताओं के रूप में अध्ययन कर सकते हैं।

पूर्णता की खोज : इसे हम पंत के काव्य-व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता के रूप में कह सकते हैं। पल्लव की भूमिका में पंत ने कविता को 'परिपूर्ण क्षणों की वाणी' कहा है। अपनी उसी अन्तर्दृष्टि को पूर्ण करने को—इसकी परिधि में जीवन के सारे आयाम समेट लेने की कामना पंत में दिखाई देती है—

मुझे अधूरा कम ही भाता,
हृदय पूर्णता के प्रति जाता।

कवि की खोज प्रारंभ से ही पूर्ण जीवन की खोज है। कोई दर्शन, कोई वाद, कोई सम्प्रदाय-दृष्टि उस खोज की सारी शर्तों को पूरा नहीं कर पाती। इसीलिए पंत गांधी से भी पूरी तरह सहमत नहीं होते, मार्क्स से भी नहीं, अरविन्द से भी नहीं। पूर्ण दृष्टि का अन्वेषण और सन्धान वे अपने तईं, अपनी अन्तर्दृष्टि से ही कर पाते हैं। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि जिस चीज को गांधी, मार्क्स या अरविन्द नहीं पा सके उसे पंत ने प्राप्त कर लिया। इसका अर्थ केवल यह है कि पंत की पूर्णता की खोज प्रकृत्या इन सबसे भिन्न प्रकार की थी। अपनी-अपनी पद्धति पर गांधी, मार्क्स और अरविन्द ने भी एक पूर्ण जीवन का स्वरूप कल्पित किया। ये तीनों जिस तरह परस्पर भिन्न निष्कर्षों पर पहुंचते हैं, उसी प्रकार पंत इन तीनों से ही भिन्न निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। अपनी विलक्षण भाव-दृष्टि द्वारा वे जीवन की पूर्णता की एक ऐसी परिकल्पना को अपने काव्य में संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करते हैं, जिसमें जड़ और चेतन, व्यष्टि और समष्टि, बाह्य-जगत् और आंतर-जगत् सबका सामंजस्य उद्घाटित होता है।

कवि-कलाकार जीवन को खण्डों में ग्रहण करके भी अच्छी सर्जना कर सकता है। उसके लिए जीवन की पूर्णता का दर्शन अनिवार्य नहीं है। फिर भी अधिकांश महान् प्रतिभाओं में ऐसा दर्शन उद्भासित होता है। पंत में भी पूर्णता की एक खोज निरन्तर

दिखाई पड़ती है। सौंदर्य-चेतना, बौद्धिक चेतना, भू-चेतना और सूक्ष्म चेतना—इस क्रम से इस खोज का विकास प्रायः निरूपित किया जाता है। यह क्रम पंत की सतत् विकासमान चेतना को मोटे तौर पर रेखांकित करता है—पूर्ण से पूर्णतर की ओर, यही पंत की यात्रा रही। पंत ने बार-बार अपने काव्य में व्याप्त इस पूर्णताकामी दृष्टि की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। स्पष्ट देखा जा सकता है कि एक ओर पंत में पूर्णता की चरम आकांक्षा है और दूसरी ओर वे कला की श्रेष्ठता का आकलन पूर्ण मूल्यों की खोज और नूतन, प्राणवान् मूल्यों की स्थापना के आधार पर करते हैं। सम्पूर्णता के प्रति कवि का यह लगाव 'कला और बढ़ा चांद' की इन पंक्तियों में कितनी उत्कटता के साथ व्यक्त हुआ है :

'इस नीरव शांति के
अतल सिन्धु से
मैं सर्वांगपूर्ण होकर
निकलूंगा।
सम्पूर्ण होकर।'

जीवन में पूर्णता की इस खोज में पंत की दृष्टि मुख्यतः मंगल-भावना पर रही है। पूर्णतर की प्राप्ति का आकर्षण कवि को शुद्ध व्यक्तिगत जिज्ञासा की शांति के लिए नहीं है। उसके मूल में मानवता के मंगल की अभिलाषा एवं आग्रह है :

'मुझे उस पार खड़ी
मानवता के लिए
सत्य का बोहित्थ
खेना है।'

सामंजस्य-भावना : पंत के काव्य-व्यक्तित्व की चौथी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता जो उनकी जीवन-दृष्टि को निर्धारित करती रही है, उनकी सामंजस्य-भावना है। जीवन के वैषम्यों, अनेकताओं और विरोधों में पंत सदैव एक सामंजस्य की खोज करते रहते हैं :

'इन क्षण दृश्यों के
बदलते रूपों में
समग्रता, संगति
कहां है ?'

पंत के काव्य की यह एक ऐसी विशेषता है जिसे साधारण पाठक भी लक्ष्य किये बिना नहीं रहता। अपने-अपने जीवन-सत्यों को कसकर पकड़े रहने वाले आग्रही हठधर्मियों को पंत के इस सामंजस्य के सिद्धान्त में अगंभीरता और गैरईमानदारी की बू आई। जो लोग मूलतः यह मानकर चलते हैं कि जीवन के विरोध शाश्वत हैं और उनका निरसन या शमन संभव नहीं है उन्हें पंत का विश्वास विचित्र, ऊपरी और बनावटी लगता है। पंत-साहित्य के गंभीर अध्येता को पंत के सामंजस्यवाद को ठीक-ठीक समझने के लिए पहले अपने सारे आग्रहों को छोड़कर उनकी रचनाओं के बीच से होकर गुजरना

होगा इतर आग्रहों के बल पर उसका मूल्यांकन करने से भ्रामक धारणाओं की सृष्टि ही होती रहेगी।

पंत में सामंजस्य के कई आयाम हैं। सबसे पहले तो उनमें स्व और पर का, अन्तः और बाह्य का सामंजस्य है जिसके कारण वे विश्व-वेदना को अपने प्राणों में उतार पाते हैं :

'तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल, जग जीवन की ज्वाला में गल।'

पंत ने अपनी काव्य-यात्रा इसी मूल सामंजस्य के साथ शुरू की थी। अपने अंतः को बाह्य के साथ, विश्व के साथ, जीवन के साथ समंजित कर लेने के उपरान्त कवि जग-जीवन के वैषम्यों का सीधा संवेदन प्राप्त करके उनके भीतर अनुस्यूत एक स्वाभाविक एकत्व को भावित करने की योग्यता स्वभावतः ही प्राप्त कर लेता है। अपने कृतित्व के बहुत प्रारंभिक काल में भी व्यक्ति और वस्तु-जगत् का वह द्वन्द्व पंत के समक्ष नहीं है जो अधिकांश रोमैंटिक कवियों के सम्मुख रहता है। पंत के लिए इस प्रकार का विभाजन कभी रहा ही नहीं। इसे अद्वैतवाद के अध्ययन का प्रभाव कहा जाता है, पर वास्तव में यह कवि की स्वाभाविक वृत्ति का परिणाम है जो पर्वतीय प्रदेश के सहज वातावरण में जन्मी थी। 'वीणा' में उन्होंने कहा था :

इन असंख्य मृदु-कण्ठ-स्वरों में
मिला हुआ है अलि ! मेरा भी
कम्पित स्वर अति-दीन

बाद में यह 'कम्पित स्वर' क्रमशः स्पष्ट और दृढ़तर होता जाता है। 'गुंजन' तक आते-आते कवि जीवन से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर चुका होता है और आगे उसके लिए जीवन की विषमताएं उसके लिए स्वकीय हो जाती हैं। वह उनके सामंजस्य की खोज में तत्पर होता है। 'गुंजन' की बहुत-सी कविताएं व्यक्ति-जीवन और व्यापक जीवन तथा सुख और दुःख के सामंजस्य का उद्घाटन करती हैं :

(१) जीवन-मधु-संचय को उन्मन
करते प्राणों के अलि गुंजन।

(२) सुख-दुःख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।

'ज्योत्स्ना' में इसी सामंजस्य की और व्यापक भूमियों की तलाश है। विश्व-जीवन में एक व्यापक सामंजस्य द्वारा नव-जीवन का उदय—इस रूपक की विषय-वस्तु है। 'ज्योत्स्ना' का एक पात्र कहता है—'जन्म-मरण, सुख-दुःख, जीवन के बाह्य विरोधों एवं प्रतीप-आविर्भावों के बीच मनुष्य को, अपनी सहज बुद्धि से काम लेकर, एक बार सामंजस्य स्थापित करना ही पड़ता है।—समस्त विरोधों के भीतर जीवन की अविच्छिन्न एकता खोजकर उस पर हृदय केन्द्रित कर लेना होता है। इसी सामंजस्य की

ृष्ठभूमि में नव निर्माण का तूर्य नाद होता है 'गई रात, त्यागो जड़ निद्रा, खुला ज्योति का छल गगन पर।' आगे 'युगांत' से पंत भौतिक जीवन के वैषम्यों के प्रति उन्मुख होते हैं। इस दिशा में वे मार्क्सवाद से भी प्रभावित हुए, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया। पर मार्क्सवादी दृष्टि जिस वैषम्य, विरोध या संघर्ष को तत्वतः और मूलतः सत्य मान-कर चलती है उसकी वैसी चेतना पंत में नहीं है। एकाध उदाहरणों को छोड़कर इसके अतिरिक्त पंत को मार्क्सवाद का दर्शन भी पूर्णतः स्वीकार्य नहीं लगा है। उसे उन्होंने गांधीवाद के उदात्त साधनवाद के साथ ही समंजित करके ही स्वीकार किया है। साम्य-वाद पंत के साथ वहीं तक चल पाता है जहां तक वस्तु-सत्य उसमें प्रतिभासित है। 'श्रम-शोषण' मार्क्सवाद का अपना शब्द हो सकता है, पर श्रम-शोषण का 'फेनामिन' निश्चित रूप से उससे बाहर, अपने-आप में सत्य है। अपनी संवेदनशीलता के कारण पंत उसका सहज ग्रहण कर सके। पर इससे आगे चलकर पंत सहज भाव से भव-मानवता की सामंजस्य-भूमि पर उतर आते हैं, जो मार्क्सवाद की भूमि नहीं है।

'ग्राम्या' में 'ग्राम-देवता' प्रायः अपने स्वर में अन्य कविताओं से कुछ अधिक प्रखर और विद्रोही है, पर यहां भी पंत की दृष्टि आंतर और बाह्य जगत् के विरोध की बजाय उनके अन्योन्याश्रय सम्बन्ध पर ही जमती है। 'ग्राम्या' के बाद का पंत का समस्त काव्य एक प्रकार से सामंजस्य का ही काव्य है। बाह्य और अन्तर्, आत्मतत्त्व और भूततत्त्व, अर्थ और संस्कृति, व्यष्टि और समष्टि, ऊर्ध्व संचरण और समतल संचरण आदि सबका सामंजस्य पंत के चेतनावादी ('स्वर्ण-किरण' से 'लोकायतन' तक) तथा विकासवादी ('किरण-वीणा' से 'समाधिता' तक) काव्य में अत्यन्त व्यापक स्तर पर प्रकट हुआ है। इस सामंजस्य में कवि ने जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति का मार्ग अन्वे-षित कर लिया है। यहां दोहरा देना होगा कि पंत का यह सामंजस्यवाद भी लोक-मंगल की भावना से ही प्रेरित है। पंत अपने इस विराट् सामंजस्य को मनुष्यों के बीच अव-तरित देखना चाहते हैं।

पंत के काव्य-व्यक्तित्व के चार वैशिष्ट्य-विधायक तत्त्वों का संक्षिप्त विवेचन हमने ऊपर किया है, इन्हीं से उद्भूत और घनिष्ठतः सम्बद्ध अन्यान्य तत्त्वों का परिचय इस प्रबंध में आगे प्राप्त होगा, क्योंकि अन्ततः पंत के समस्त काव्य का अध्ययन उनके सम्पूर्ण काव्य-व्यक्तित्व का अध्ययन है।

हमने देखा कि पंत का काव्य-व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार के द्रवत्व से युक्त है। बहुत-से प्रभावों को घुलाने और बहुत-सी भूमियों में ढलने की इसीलिए उनमें असाधारण क्षमता है। सहानुभूतिपूर्वक इस तथ्य को न समझने के कारण आलोचक कभी कवि पंत को अस्थिरताग्रस्त समझ लेता है, कभी प्रगतिवाद या अन्य किसी वाद की पूर्ति पूरी न करने के लिए उन पर झुंझलाता है। वास्तव में परमहंस, गांधी, मार्क्स, अरविन्द सभी पंत के काव्य-व्यक्तित्व की निरंतरता में कुछ दूर तक चलते हैं, पर उसके नैरन्तर्य को कहीं भंग नहीं करते, न उसमें कोई अभीप्सित मोड़ ही पैदा करते हैं।

अब तक प्रायः पंत के खंडित व्यक्तित्वों की ही चर्चा हुई है—छायावादी कवि पंत, प्रगतिवादी कवि पंत आदि। यह बात जैसे बिना कहे मान ली गई है कि पंत वे

काव्य में एकसूत्रता या समग्रता की खोज करना व्यर्थ है। कुछ आलोचकों ने तो पंत के काव्य-व्यक्तित्व को रेखाचित्रों में बांधने का प्रयास किया है और यह माना है कि पंत में एक ही शिखर नहीं है, छोटे-छोटे कई शिखर हैं। इस प्रकार की परिकल्पना निरर्थक है, क्योंकि पंत का काव्य-व्यक्तित्व द्विधा-विधा-अनेकधा अंतर्विरोधों से ग्रस्त न होकर समग्रता में है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्हीं आलोचकों ने अन्यत्र पंत के काव्य में एक 'अंत:संगति' की चर्चा भी की है।

वास्तव में पंत के स्थूल काव्य-विभागों से दृष्टि को हटाकर उसे मूल विशेषताओं की ओर उन्मुख किए बिना पंत के काव्य-व्यक्तित्व की समग्रता को ठीक-ठीक समझना असंभव है। मैं तो यहां तक कहना चाहूंगा कि पंत के समग्र काव्य-व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषताओं को हृदयंगम करने के लिए 'वीणा' से 'ज्योत्स्ना' तक के साहित्य का गंभीर अध्ययन ही पर्याप्त होगा। आगे मार्क्स और अरविन्द के प्रभाव से यदि कुछ विशेषताएं अधिक प्रखर होकर उभरीं तो उन्हें नई शुरुआतों के रूप में देखना ठीक नहीं होगा। कई अन्तों की बात भी उसी तरह बेमानी है। इससे ऐसा भान होता है, मानो पंत कई बार नौसिखिये बने हों और कई बार माहिर भी। एक दिशा में महारत हासिल करके जैसे वे दूसरी दिशा में नौसिखिये बनते रहे हों। वास्तव में समर्थ प्रतिभाएं अपनी रचना-यात्रा में उत्तरोत्तर समृद्ध ही होती जाती हैं, वे अपनी समस्त समृद्धि के साथ ही नव-नव मार्गों पर संक्रमण करती हैं।

आगे के तीन अध्यायों में हम **छायावाद, प्रगतिवाद, चेतनावाद** आदि के स्थूल विभागों के माध्यम से ही पंत के काव्य-व्यक्तित्व के विकास-क्रम का अध्ययन करेंगे। प्रगतिवादी कहे जाने वाले और चेतनावादी काव्य की चर्चा करते हुए हम इन भूमियों पर पंत के काव्य-व्यक्तित्व के स्वाभाविक संक्रमण का विस्तार से विवेचन करेंगे और तर्कसंगत ढंग से पंत के काव्य में उनका एक समग्र काव्य-व्यक्तित्व रेखांकित करने का प्रयास करेंगे।

छायावाद और पंत

छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और समृद्ध काव्य-प्रवृत्ति का 'छायावाद' नाम अनेक अर्थों में अत्यंत अपर्याप्त और किसी हद तक भ्रामक है। स्वयं पंत ने इसे 'इतिहास के पृष्ठों पर बलपूर्वक अंकित' बताया है। प्रारम्भ में संभवतः छायावाद के कवियों की अस्पष्ट और अनिर्दिष्ट-सी प्रतीत होने वाली शैली को देखकर अवज्ञापूर्वक, मात्र उपहास के निमित्त इस शब्द का प्रयोग उनकी रचनाओं के लिए किया गया। छायावाद चाहे जैसे भी आया हो, यह शब्द अब प्रायः सन् १९१६ से '३६ तक के साहित्य की व्यापक काव्य-प्रवृत्ति के लिए हिन्दी आलोचना में रूढ़ हो चुका है। स्वयं छायावादियों ने भी इसे बहुत प्रारभ में ही स्वीकार कर लिया था। पर इसका अर्थ यह नहीं कि इस शब्द के शब्दार्थ को आधार बन कर छायावाद की वास्तविक चेतना को समझा या समझाया जा सकता है। न तो कथ्य की दृष्टि से, न शिल्प की दृष्टि से ही छायावाद की कविता में 'छाया' शब्द से व्यक्त होने वाली अयथार्थता और अस्पष्टता दिखाई पड़ती है। वास्तव में छायावाद जीवन-दृष्टि, मूल्य-चेतना और कला-बोध के स्तरों पर एक गम्भीर, व्यापक और अर्थपूर्ण आन्दोलन के रूप में हमारे साहित्य में प्रकट हुआ। उसके सही स्वरूप की व्याख्या करने के लिए हमें इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि की सही जांच करनी पड़ेगी। छायावादी कवियों के मानस को ठीक-ठीक सहानुभूतिपूर्वक न समझने के कारण ही उनके काव्य को कभी-कभी आयातित, मूलविहीन और परापेक्षी इत्यादि कहा गया है और एक सुधी आलोचक ने उसे 'अमरवेलि' की त्रासद तुल्यता तक प्रदान कर दी है।

सबसे पहले यह स्पष्ट समझ लेना उचित होगा कि किन विशिष्ट परिस्थितियों मे छायावाद का आन्दोलन उभरा। इस बात का तो कोई अर्थ ही नहीं है कि छायावाद की प्रेरणा विदेशी थी—अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों से आई; क्योंकि यदि यह आरोप

शतशः सही भी मान लिया जाय तो भी यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है कि उन्नीसवीं शती की एक विदेशी काव्य-धारा का अनुगमन हिन्दी में इतना पीछे क्यों हुआ जबकि यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि हिन्दी के लेखक और पाठक छायावाद के जन्म के बहुत पहले से ही अंग्रेजी के साहित्य से भली-भांति परिचित थे। इससे भी बड़ा प्रश्न यह है कि यह 'विदेशी पौधा' यदि पूर्णतः इस देश की भूमि के अयोग्य ही था तो यह इतने दीर्घकाल तक फूलता-फलता कैसे रहा और ऐसी समृद्धि का सृजन करने मे सफल कैसे हुआ जो अब भी हिन्दी-काव्य के गौरव का प्रमुख आधार है। अतएव यह तो मानकर ही चलना होगा कि छायावाद अपनी युग की चेतना का प्रतिफलन था। छायावाद के कवि की मनोभूमि को समझने के लिए हमें उसके युग की सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक पीठिका की ओर जाना होगा। इस सभी का सम्मिलित प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में छायावाद के साहित्य में प्रकट हुआ। यह अलग बात है कि किसी का प्रभाव—जैसे राजनीति का—अप्रत्यक्ष और किंचित् गौण रहा तो किसी का—जैसे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का—प्रत्यक्ष और प्रमुख।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण से ही भारतवर्ष में एक नवीन सांस्कृतिक चेतना की लहर उठने लगती है। निश्चित रूप से इस चेतना के मूल मे पाश्चात्य शिक्षा और वैज्ञानिक आधुनिकता का संस्पर्श था। पुनर्जागरण शब्द की सार्थकता १९वीं शताब्दी के समस्त आन्दोलनों में कदाचित् महर्षि दयानन्द के आन्दोलन के साथ संयुक्त होने में सबसे अधिक है। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की एक कड़ी श्रीमती एनी बेसेंट की थियोसॉफिकल सोसायटी भी है। श्रीमती बेसेंट ने अखिल विश्व का कल्याण हिन्दुत्व के जागरण में माना, पर सांस्कृतिक जागरण का कार्य सर्वाधिक व्यापक स्तर पर पूरा किया रामकृष्ण मिशन ने। इसके संस्थापक स्वामी विवेकानन्द निर्विवाद रूप से आधुनिक युग में वेदान्त के व्यावहारिक आदर्श के सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता हैं। भारत के सांस्कृतिक दाय के प्रति उन्होंने विदेशियों का ध्यान आकृष्ट किया और साथ ही अपने देशवासियों को कर्म-योग का उपदेश भी उन्होंने दिया। उनका मानवतावाद वेदान्त-दृष्टि का ही एक विस्तार है और अनेकानेक कवियों-साहित्यकारों का प्रेरणा-स्रोत बनता रहा है।

पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य जो विवेकानन्द ने किया वह था कर्म और शक्ति का आह्वान। 'निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर दार्शनिक संक्रमण' विवेकानन्द की विशिष्ट देन थी। देशवासियों में आत्मविश्वास को उभारने और उन्हें कर्म में प्रवृत्त करने का स्तुत्य प्रयास उन्होंने किया। इस प्रकार स्वामी जी ने नये भारत का आध्यात्मिक निर्देशन किया।

सांस्कृतिक नवजागरण के क्रम में गांधी का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके असहयोग आन्दोलन को केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। भारतीय परम्परा में सम्मानित सत्य, अहिंसा इत्यादि के हथियारों से लड़ा गया वह युद्ध गांधी की अनोखी देन थी जो अपने बाह्य के भीतर सच्ची सांस्कृतिक चेतना छिपाये थी

राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमि : पीछे छायावादी काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त दिग्दर्शन है। छायावादी काव्य की चेतना राजनीतिक-सामाजिक की अपेक्षा सांस्कृतिक ही अधिक है, यह छायावाद का कोई पाठक लक्ष्य कर सकता है। इसलिए उपर्युक्त आन्दोलनों के अंक में पलती हुई सांस्कृतिक नव-चेतना छायावाद के काव्य के अध्ययन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अब थोड़ा राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन पर भी विचार कर लेना चाहिए। यद्यपि इन क्षेत्रों का कोई स्पष्ट प्रसार छायावादी काव्य में नहीं मिलता, फिर भी यह मान लेना भ्रामक ही होगा कि संवेदनशील, बौद्धिक दृष्टि से सचेत छायावादी कवियों को अपने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवेश की कोई चेतना ही नहीं रही होगी। वास्तव में ये कवि अपने विशिष्ट स्तर पर जीवन से बहुत अधिक जूझने वाले लोग थे। उन पर पलायनवाद का इल्जाम बहुत दूर तक सही नहीं है।

और पीछे न जाकर सन् १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से ही प्रारंभ करें। कांग्रेस की स्थापना अपने-आप में पहले ही उत्पन्न हो चुकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का राजनैतिक स्तर पर विकास था। कांग्रेस प्रारम्भ में मध्यममार्गियों की संस्था थी जो राष्ट्रप्रेम और राजभक्ति को साथ-साथ वहन कर रहे थे। प्रारम्भ के राजनीतिक नेता और विचारक ब्रिटिश राज के प्रति कभी अपनी भक्ति में कोई कमी नहीं रखते या दिखाते थे। उग्रता और विद्रोह की प्रवृत्ति का उदय बाद में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय तथा विपिनचन्द्र पाल, अरविंद घोष के नेतृत्व में उभरा। सन् १९०५ में बंग-भंग हुआ। इसका भारी विरोध हुआ। इसी समय बंकिमचन्द्र के 'वन्दे मातरम्' को राष्ट्रगीत का दर्जा भी प्राप्त हुआ। सरकार ने दमन का सहारा लिया। धीरे-धीरे इस दमन-चक्र के प्रतिक्रियास्वरूप हिंसात्मक उपायों का समर्थन करने वाला एक क्रांतिकारी दल संगठित हुआ। १९०५ ई० से लेकर १९१७ ई० तक यह आन्दोलन प्रबल रहा। इससे ब्रिटिश राज की स्थिति में तो बहुत अन्तर नहीं आया पर इसने समस्त राष्ट्र के मन और प्राण को झकझोरकर रख दिया। असन्तोष और विरोध की आग धीरे-धीरे सुलगने लगी। आज इस बात का अनुमान करना कठिन है कि देश की चेतना उन तमाम पाशविक काण्डों से कितनी आहत, कुण्ठित और हतदर्प हुई होगी। छायावाद के कवि उस समय काव्य-क्षेत्र में उतर ही रहे थे।

सन् १९२० में भारतीय राजनीति में गांधी का युग प्रारम्भ होता है। उन्होंने सविनय अवज्ञा, असहयोग, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आदि के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन को सच्ची नैतिक शक्ति प्रदान की। १९२१ में प्रिंस ऑफ वेल्स की यात्रा इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार भारतीय जनता इस यात्रा के प्रति उदासीन रही। आधुनिक भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिए इस यात्रा का बड़ा महत्त्व है क्योंकि पन्द्रह वर्षों से भी कम के अंतराल में किस प्रकार भारतीयों के हृदय से राजभक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी थी, इसका सबसे बड़ा निदर्शन यह घटना है। १९२८ ई० में साइमन कमीशन आया जिसका पूर्ण बहिष्कार किया गया। जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में, उसी प्रकार आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन की शक्तियां क्रियाशील

हुई। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, नारी-स्वातंत्र्य, अस्पृश्यता आदि पर समाज-सुधारकों की दृष्टि बहुत पहले ही गई थी। गांधी ने इस दिशा में जो स्तुत्य प्रयास किया वह सर्व-विदित ही है।

ये समस्त परिवर्तन एक दुर्निवार प्रक्रिया के परिणाम थे। किसी ने इसके लिए प्रयास नहीं किया होता तब भी वे अपनी स्वाभाविक गति से आते, यहां तक कि किसी ने इन्हें रोकने का प्रयास किया होता (और किसी ने ऐसा प्रयास किया ही न हो ऐसा भी नहीं है, तब भी। इस परिवर्तन से तत्कालीन मनुष्य का सोचने-समझने का ढंग बहुत बदला और यह बदलाव बहुत दूर तक छायावाद की कविता में भी प्रतिफलित हुआ।

साहित्यिक पृष्ठभूमि : उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य से हिन्दी-साहित्य मे नवीन युग का सूत्रपात होता है। इस नवीन संक्रमण के अगुआ बने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। प्राचीनता के स्थान पर नवीनता का स्वागत इस युग में हुआ। खड़ी बोली में कविता करने का भी कुछ प्रयास हुआ और नवीन विषयों पर तो काफी लिखा गया—विशेषतः गद्य में। सन् १६०० से 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ और उसके साथ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-साहित्य में प्रवेश किया। इसी के साथ द्विवेदी जी के नेतृत्व में हिन्दी-साहित्य एक नवीन मार्ग पर अग्रसर हुआ। द्विवेदी युग की काव्य-दृष्टि नैतिकता और आदर्श के द्वारा परिचालित होती थी। इनके भी स्पष्ट और परिभाषित प्रतिमान उसके सम्मुख नहीं थे, न ऐसे किन्हीं प्रतिमानों का निर्माण करने का प्रयास ही इस काल में हुआ। आदर्श की द्विवेदीयुगीन परिकल्पना अत्यन्त व्यावहारिक, सरल और किसी हद तक 'मीडियाकर' थी। वास्तव में यह युग आदर्शवाद की बजाय सुधार-वाद का था। साधारण और लोकप्रिय संदर्भों के बीच द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी सुधारवादी दृष्टि का उद्घाटन किया। इतना तो निश्चित ही है कि अपने उपयोगिता-वादी आदर्श के कारण ये कवि गम्भीर सांस्कृतिक चेतना का वह धरातल स्पर्श न कर सके जो बाद में छायावाद की कविता में स्पर्श किया जा सका। द्विवेदी जी के प्रतिभा-शाली अनुयायियों—मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध आदि—ने उत्तम काव्य की सर्जना की, पर कवित्व की न्यूनता कहीं-कहीं उनमें भी खटक जाती है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि द्विवेदी युग में काव्य के क्षेत्र में कोई नवीन उपलब्धि ही नहीं हुई। द्विवेदी जी ने अत्यंत लगन और उद्योगपूर्वक भाषा-सम्बन्धी एक आदर्श रखा। खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इसी युग को है। वास्तव में खड़ी बोली के पक्ष मे जो 'मिशनरी' उत्साह द्विवेदी जी ने दिखाया वह अपनी मिसाल आप है। पर इसके आगे बढ़कर अभिव्यंजना की कोई नवीन प्रणाली इस युग में विकसित नहीं हो पाई। भाषा के स्वाभाविक माधुर्य और संगीत आदि का अन्वेषण करने की बजाय कवियो ने सस्कृत की पदावली, समासों आदि का सहारा लिया।

इस काव्य की पीठिका पर छायावाद की नई काव्यधारा प्रतिष्ठित हुई। हम सहजही देख सकते हैं कि इसयुग में बहुत कुछऐसा नहीं सम्पन्न हो पाया था जिसेसम्पन्न होना चाहिए था और बहुत कुछ ऐसा सम्पन्न हुआ जो न हुआ होता तो कोई बुराई नही थी। छायावाद जिस सर्जनात्मक संकल्प को लेकर खड़ा हुआ उसके लिए द्विवेदी युग का

मुहावरा बहुत छोटा पड़ा।

यहां बंगला के समकालीन काव्य पर भी विचार कर लेना उचित होगा, क्योंकि हमारे आलोच्य काल पर उसका प्रभाव प्राय: निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता रहा है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि नवीन प्रभावों को हिन्दी की अपेक्षा बंगला ने कुछ अधिक शीघ्र ग्रहण किया। छायावाद के उदय के पूर्व ही बंगला के रवीन्द्रनाथ विश्व-कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। रवीन्द्रनाथ काव्य में भारत के सांस्कृतिक जागरण के प्रतिनिधि थे। दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावों के प्रति भी उनकी बुद्धि ग्रहण-शील थी। उससे उनके काव्य में जहां विश्व-मानवता की चेतना का प्रकाश हुआ वहीं अपनी सांस्कृतिक चेतना की विराटता का भी प्रसार हुआ। साहित्य के शिखर पर उदित होकर 'रवीन्द्रनाथ ने' भारतीय कविता की परिभाषा ही बदल दी। रवीन्द्र की कविता का स्वर कुछ यूरोपीय 'मिस्टिसिज्म', कुछ औपनिषदिक अद्वैत और कुछ मध्यकालीन भारतीय संतों तथा रहस्यवाद के सम्मिलित प्रभावान्तर्गत उभरा था। रवीन्द्र ने अपनी विलक्षण कवित्व-शक्ति के बल पर इस नव-रहस्यवाद को एक ऐसा रमणीय और मनो-हारी स्वरूप प्रदान किया जो बरबस प्रभावित करता है। भाषा और शैली के वे जादूगर थे, इसमें संशय नहीं। रवीन्द्र ने अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों से प्रेरणा ग्रहण की। कुछ रवीन्द्र और बंगला काव्य के माध्यम से और बहुत कुछ सीधे छायावादियों ने भी यह प्रभाव ग्रहण किया। इसलिए छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि में उन्नीसवीं शताब्दी क अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों का भी समावेश कर लेना होगा।

सन् १७९८ ई० में वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज का 'लिरिकल बैलड्स' प्रकाशित हुआ। यहीं से अंग्रेजी की रोमैंटिक काव्यधारा का प्रारंभ माना जाता है। वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की कविताओं में जीवन-दृष्टि के स्तर पर मशीन, संघर्ष, प्रतियोगिता की सभ्यता का विरोध दीख पड़ता है। भौतिकता की आपाधापी में जीवन का मूल्यवान अंश उपेक्षित हो रहा है, ऐसा वर्ड्सवर्थ ने अनुभव किया। वर्ड्सवर्थ ने फ्रांसीसी क्रांति से प्रभाव ग्रहण करके व्यवस्था और धर्म की जकड़न के विरुद्ध व्यक्ति की महत्ता और उसके स्वातंत्र्य का उद्घोष किया।

जिस चीज को वर्ड्सवर्थ ने आन्दोलन के रूप में शुरू किया था वह बाद में शैली, कीट्स और बायरन द्वारा केवल एक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहीत हुई। वर्तमान के प्रति असंतोष, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की चेतना तथा एक आदर्श जीवन की कामना इन कवियों मे भी समान रूप से झलकती है। पर इनकी व्यक्तिगत विशिष्टताएं उन्हें एक-दूसरे से बहुत अलग करती हैं। इस त्रयी का सबसे समर्थ कवि कदाचित् कीट्स था। कीट्स के काव्य में हमें प्रेम तथा सौंदर्य की उत्कट मांसलता के साथ कहीं-कहीं असंतोष और निराशा के स्वर प्राप्त होते हैं। जीवन के सौंदर्य का जितना सीधा और उत्कट आकर्षण कीट्स में व्यक्त हुआ वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा की शक्ति उसमें महाकवि की-सी थी, निराशा का स्वर शैली में अधिक प्रखर है। शैली का अनुकरण सबसे अधिक हुआ। कारण स्पष्ट है। उसका निराशावाद टैगोर के रहस्यवाद की तरह ही आकर्षक और साथ ही सहज-साध्य लगने वाली वस्तु थी। हिन्दी में जिन समर्थ कवियों ने निराशा को

प्रामाणिक ढंग से व्यक्तिगत स्तर पर झेला, उनके काव्य में शैली का प्रभाव पड़ गया है।

इस प्रकार १९वीं शताब्दी के स्वच्छंदवादी अंग्रेजी काव्य के गुण उन्मुक्तता, स्वच्छंदता, स्वातंत्र्यप्रियता, व्यक्तिवादिता, सौंदर्य की नव-चेतना, अभिव्यक्ति के नये काव्यात्मक रूप की खोज, 'फॉर्म' की उपेक्षा, निराशा, असंतोष, विद्रोह इत्यादि बताए जा सकते हैं। इनमें से अधिकांश सभी कवियों में समान हैं।

इस प्रसंग को समाप्त करने के पूर्व विक्टोरियन युग के कवियों टेनिसन, ब्राउनिंग इत्यादि का उल्लेख भी आवश्यक है। पहले के स्वच्छन्दतावादी कवियों से इन लोगों का स्पष्ट वैभिन्य है, फिर भी अपनी आशावादिता, आदर्शप्रियता, परिवर्तन-कामना, सौंदर्यानुभूति तथा भावाभिव्यक्ति में ये कवि भी रोमैंटिक कवियों से अनेक समानताएं प्रदर्शित करते हैं। सामान्यतः इन लोगों को स्वच्छन्दतावाद से भिन्न काव्य-पद्धति का प्रणेता स्वीकार किया जाता है जो सत्य भी है। पर इन कवियों की दृष्टि और भंगिमा मे एक स्पष्ट रोमैंटिक तत्त्व था—उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। आदर्शवादी ये लोग भी थे, यद्यपि असंतोष और निराशा के स्वर इनमें नहीं उभरे। अतएव हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी साहित्य पर इनका भी प्रभाव स्वीकृत होता है।

छायावादी कविता में इस पृष्ठभूमि का प्रतिफलन : इस बहुविध, पीठिका पर छायावाद का युग प्रतिष्ठित हुआ। छायावाद के कवि हमारी शती के सर्वाधिक संवेदनशील कवियों में से थे, इसलिए इस पृष्ठभूमि की स्पष्ट प्रतिक्रिया उनके मानस में घटित हुई। यह प्रतिक्रिया ऊपर वर्णित सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक इत्यादि सभी स्तरों पर हुई, यद्यपि उसका रूप कहीं व्यक्त, कहीं अर्द्धव्यक्त और कहीं अव्यक्त ही रहा। नीचे हम क्रम से छायावाद के काव्य में इस पृष्ठभूमि का बहुआयामी प्रतिफलन अंकित करेंगे।

सांस्कृतिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में पनपी हिन्दी कविता लगभग प्रारंभ से ही पुनर्जागरण के स्वर लेकर चलती है। छायावादी युग में आकर यह चेतना विवेकानन्द के प्रभाव में विश्व-मानवतावाद और सार्वभौमवाद के उदय के रूप में प्रकट हुई। अध्यात्म का विश्वात्मवाद विवेकानन्द के माध्यम से ही पहले हिन्दी के कवियों के पास आया, पीछे चाहे बहुतों ने उपनिषदों के अध्ययन द्वारा उसे और पुष्ट कर लिया हो। अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों तथा रवि बाबू के अध्ययन से भी इन कवियों को इस दिशा में कुछ प्रेरणा अवश्य मिली।

इन प्रभावों के अन्तर्गत छायावादी कवि की चेतना मानवतावाद तथा विश्वैक्यवाद की ओर प्रवाहित हुई। पर छायावादी कवियों की दृष्टि को जो मूलतः सांस्कृतिक कहा गया है, उसका एक और भी गंभीर अर्थ है। छायावाद का युग विकट वैषम्यों का युग था। छायावादी कवि ने इस वैषम्य को स्थूल ढंग से, सीधे-सीधे नहीं पकड़ा, न इसका सामना ही उसने किया। एक नितान्त अविरोधी, समन्वयात्मक सांस्कृतिक भूमि पर उसने इस वैषम्य के कारणों की खोज की तथा उनका समाधान तलाश किया। कायदे से उस काल में अन्याय के विरुद्ध कवि को एक प्रतिपक्षी के रूप में खड़ा होना चाहिए था। वह नहीं हुआ। छायावादी का असंतोष वैषम्य के स्थूल कारणों की खोज में तत्पर नहीं हुआ तो मान लिया गया कि अवश्य वह उससे कतरा गया। छायावाद पर

जो बार बार पलायनवाद का इल्जाम लगाया गया है वह इसी कारण इस समस्या का निराकरण छायावादी कवि के सांस्कृतिक आग्रह को समझकर सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों का छायावादी मन पर प्रभाव और प्रतिक्रिया का निरूपण करते हुए अत्यन्त सावधानी की अपेक्षा है। छायावादी कवि की मूल चेतना सांस्कृतिक थी, राजनीतिक-सामाजिक आदि प्रभाव उसका अनुषंग ही बन सके। इस कारण छायावाद एक भावात्मक भूमि पर प्रतिष्ठित था, 'फ्रस्ट्रेशन', 'न्यूरॉसिस' आदि की अभावात्मक भूमि पर नहीं। ऐसे निष्कर्ष ढालना अति स्थूल बुद्धि का परिणाम ही कहा जाएगा।

और ऐसा भी नहीं है कि छायावाद में अन्यायी राजनीति और जड़-समाज की कोई प्रतिक्रिया ही नहीं हुई। निराला की 'जागो फिर एक बार' और ऐसी कुछ कविताओं मे राष्ट्रीय वीर्य को अन्याय और दमन के विरुद्ध ललकारा गया है। इसी प्रकार सामाजिक जड़ता की प्रतिक्रिया छायावाद में दिखाई पड़ती है—विशेषतः नारी की स्थिति के संदर्भ में। नारी-संबंधी इस नवीन अवधारणा का प्रतिफलन छायावाद के प्रेम-संबंधी दृष्टिकोण में भी हुआ। भारतीय नैतिक दृष्टि की जड़ता को तोड़ने में इन कवियों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। छायावाद की कविता में जो जगह-जगह निराशा, अवसाद और कुण्ठा के स्वर उभरे हैं वे सर्वांशतः नहीं तो पर्याप्त दूर तक इन्हीं दबावों के प्रभावान्तर्गत। पूंजीवाद के आगमन के साथ ही व्यक्तिवाद अपनी पूरी गरिमा के साथ आया। अब साहित्यकार भी अपनी सृष्टि के प्रेरणा-स्रोत अपने ही अंदर तलाश करने लगा। इससे कथ्य तथा शिल्प के स्तर पर व्यापक परिवर्तन आये। यह सर्वथा समीचीन निष्कर्ष है कि पूंजीवाद के प्रभावान्तर्गत जीवन-दृष्टि और कलात्मक बोध के स्तर पर एक स्वभावतः स्वच्छन्द और व्यक्तिनिष्ठ प्रवृत्ति काव्य में आई और उसका प्रतिफलन छायावाद में भी देखा जा सकता है। पर छायावाद में पराजयवाद और रहस्यवाद की प्रवृत्तियों को पूंजीवाद का प्रभाव बतलाना कुछ दूर की सूझ ही है। इस प्रकार के निष्कर्षों को साम्प्रदायिक आग्रहों का ही परिणाम कहा जाएगा।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियां सभी भाषाओं के काव्यों में समान ही होती हैं। अतः अंग्रेजी तथा बंगला के स्वच्छन्दतावादी काव्य के साथ छायावादी काव्य की अनिवार्य समानताएं हैं। सांस्कृतिक दृष्टि, विश्ववाद, भावात्मक शैली और रहस्यवाद, छायावाद को रवीन्द्र की विशिष्ट देन हैं। नवीन सौंदर्य-दृष्टि, व्यक्तिवाद, अभिव्यक्ति के नये रूप आदि अंग्रेज स्वच्छन्दतावादियों की विशिष्ट देन हैं।

इन बातों के अतिरिक्त दो अन्य बातों का भी उल्लेख आवश्यक है—वे बातें प्रकृति-प्रेम तथा नवीन काव्य-शिल्प की हैं। यहां पहले ही यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि न तो प्रकृति-प्रेम के लिए, न नवीन शिल्प के स्वरूप के लिए छायावादी कवि विदेशी कवियों और न ही रवीन्द्रनाथ पर निर्भर रहे हैं। इस भ्रम का प्रचार कम-से-कम शिल्प के क्षेत्र में बहुत दिनों तक किया गया। छायावादियों में प्रमुख प्रकृति-प्रेमी कवि पंत कहे जाते हैं, पर इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि प्रकृति-प्रेम उनके भीतर वर्ड्सवर्थ या

रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से उपजा। इसी प्रकार शैलीकारों के रूप में सभी प्रमुख छायावादी कवियों का अपना ऐसा प्रखर व्यक्तित्व है कि इस क्षेत्र में अंग्रेज कवियों तथा रवीन्द्रनाथ के प्रभाव को बहुत दूर तक खींचना ठीक नहीं होगा। अंग्रेजी और बंगला काव्य के प्रभाव के इस संक्षिप्त निरूपण के अनन्तर इतना और उल्लेख कर देना होगा कि छायावाद प्रकृत्या इन दोनों से भिन्न है।

छायावाद का स्वरूप :
विद्वानों के विचार तथा पंत के विचार

उपर्युक्त विवेचन से छायावाद की स्वच्छंदतावादी कविता का स्वरूप कुछ स्पष्ट हो जाता है। उसकी सामान्य विशेषताएं, व्यक्तिवाद, मानवतावाद, प्रेम की नयी अवधारणा, रहस्यवाद, स्वच्छन्द शिल्प आदि ऊपर अपनी विशिष्ट पृष्ठभूमियों और संदर्भों में व्याख्यायित की गई हैं। छायावाद के सम्बन्ध में छायावादी कवियों तथा आलोचकों के दो मोटे वर्ग बन गए हैं। एक वर्ग छायावाद को रहस्यवाद से अभिन्न और अध्यात्म की पीठिका पर प्रतिष्ठित मानता है। दूसरा वर्ग छायावाद की प्रेरणाओं की लौकिक व्याख्या करके आध्यात्मिकता का निषेध करना चाहता है। इनके बीच एक अन्य वर्ग है जो छायावाद को प्रमुखतः काव्य-शैली के रूप में स्वीकार करता है, पर इस मत को अधिक समर्थन नहीं मिला है।

छायावाद के सम्पूर्ण काव्य की रहस्यवादी प्रेरणा पंत को स्वीकार नहीं है। वे 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' में कहते हैं—"मेरे विचार में उस युग की पुष्कल बहुमुखी काव्य-सृष्टि को सामने रखते हुए छायावाद पर रहस्यवादी दृष्टि से विचार करना मात्र अनिरंजना है और उस युग की मुख्य काव्य-प्रवृत्ति पर एक गलत मानदण्ड का प्रयोग करना है।" वास्तव में छायावाद की रहस्यात्मकता आध्यात्मिक नहीं, बौद्धिक है। आधुनिक काव्य का रहस्यवाद—चाहे वह रवीन्द्रनाथ का हो, चाहे निराला का या महादेवी का—अन्ततः काव्य का गुण है, आत्मा का नहीं। इसी प्रकार छायावादी कविता के निराशावाद और दुःखवाद के भी निश्चित ऐतिहासिक कारण हैं। उसे सर्वात्मवाद की विश्व-करुणा से जोड़ना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। छायावाद में रहस्यवाद और निराशावाद के निश्चित तत्त्व हैं, पर वे छायावाद के एकमात्र या मूल तत्त्व नहीं हैं। छायावाद की आध्यात्मिक व्याख्या की प्रतिक्रिया जोरदार ढंग से हुई है और अनेक विद्वानों ने छायावाद की व्याख्या लौकिक धरातल पर करने का प्रयास किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावाद की भावभूमि की खोज लौकिक धरातल पर ही हो सकती है, किसी अलौकिक या आध्यात्मिक धरातल पर नहीं। पर यहां इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि लौकिक दृष्टि को प्रधानता देने वाली छायावाद की व्याख्यायें भी जहां निराशावाद, वैयक्तिक कुण्ठा, दमित वासना, पलायनवाद आदि को एकांत महत्त्व देने लगती हैं, वहां वे भी तथ्य-परकता से च्युत होती हैं। विशेषकर जब छायावादियों की हीनता प्रदर्शित करने के लिए ऐसा किया जाता है तब तो इन

व्याख्याओं में विश्वास करने वालों को भी इनका विरोध करना चाहिए

पीछे छायावाद के स्वरूप को समझने का कुछ प्रयास है। वास्तव में छायावाद की कविता में इतनी प्रवृत्तियां एक साथ प्रकट हुई हैं कि उन सबको किसी एक मूल कारण में खोज निकालना संभव नहीं है। छायावाद स्वच्छंदतावादी आन्दोलन है, इसलिए उसमें स्वच्छंदतावाद की सभी विशेषताएं—रहस्यवाद, प्रकृति-पूजा, नारी की नवीन प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक जागरण, नए छंद, नये प्रतीक आदि प्रकट हुई हैं। पर अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण छायावाद की स्वच्छन्दतावादी कविता का अपना विशिष्ट स्वर है। वास्तव में, यदि देश-काल को ध्यान में रखते हुए हम छायावादी काव्य का सर्वांगीण अध्ययन करें तभी उसके स्वरूप का ठीक-ठीक विश्लेषण हो सकता है।

छायावाद के स्वरूप की इस पृष्ठभूमि में ही हम पंत की छायावादी कविता का परिचय सम्यक् प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु इसके पहले स्वयं पंत के छायावाद-सम्बन्धी विचारों को भी अलग से थोड़ा देख लेना होगा।

पंत छायावाद को रहस्यवाद मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनका तर्क है कि 'मध्यकालीन संतों की दृष्टि जैसी आत्मकेन्द्रित, जीवन-विमुख तथा लोक-निष्क्रिय थी वैसी छायावाद की नहीं थी, प्रत्युत वह सक्रिय तथा प्रवृत्तिमूलक थी।' पंत ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि छायावाद विश्वात्मा तथा विश्व-मानव की भावनाओं को प्रतिबिम्बित करता है न कि आत्म-ब्रह्म और आत्म-परिष्कार को। छायावाद आत्ममुक्ति की बजाय भाव-मुक्ति, मानव-मुक्ति, विश्व-मुक्ति तथा लोक-मुक्ति के स्वप्नों को मूर्त करने का प्रयास करता है।

इसी प्रकार वे छायावाद को अंग्रेजी और बंगला की रोमैंटिक कविता की अनुगूंज मानने को भी तैयार नहीं हैं। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि विश्व-विकास की जिन शक्तियों से उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी कवियों को तथा बंगाल में रवीन्द्रनाथ को प्रेरणा मिली, काल का व्यवधान पार करने के बाद उन्हीं विकास-स्रोतों से छायावाद को भी प्रेरणा मिली। इसलिए इन सभी काव्यों में एक समानता मिलना स्वाभाविक है। इसे ही भ्रमवश अवांछित प्रभाव समझ लिया जाता है।

छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' मानने के पक्ष में भी पंत नहीं हैं। 'पिछली और नई वास्तविकता के लिए स्थूल और सूक्ष्म का उपयोग अर्थ-व्यंजकता की दृष्टि से संगत नहीं प्रतीत होता।'

पंत छायावाद पर कल्पना-प्रधानता के आरोप का खण्डन नहीं करते, प्रत्युत वे उसे स्वीकार करके कल्पना को काव्य का केन्द्रीय तत्त्व मानने पर बल देते हैं। 'कोई भी गम्भीर, व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण अनुभूति काल्पनिक होती है।' अनुभूति-काव्यात्मक अनुभूति-अनिवार्यतः काल्पनिक होती है। इसलिए कल्पना यथार्थ-बोध का विरोधी बोध नहीं है। छायावादी कवि ने अपनी कल्पना-दृष्टि से 'नवीन वास्तविकता की सम्भावना के अप्रकट सौंदर्य' को रूप प्रदान किया। स्पष्टतः ही पंत की यह दृष्टि सौंदर्यवादी है। उन्होंने निकट यथार्थ के प्रति सीधी अनुभूति की प्रेरणा के स्थान पर आदर्श की प्रेरणा

पर बल दिया है और उसे श्रेष्ठतर भी सिद्ध किया है। हमारा इससे मतभेद है। यहा तक तो हम मान सकते हैं कि कल्पना, अनुमान आदि को प्रधानता देने वाला साहित्य भी उच्चकोटि का साहित्य हो सकता है। छायावाद का अधिकांश साहित्य इसका प्रमाण है, पर वास्तविकता से सीधे प्रभावित कोई साहित्य होता ही नहीं या होता है तो श्रेष्ठ नहीं होता, यह प्रतिपत्ति निश्चित रूप से भ्रामक है। इसी प्रकार पंत का यह वक्तव्य भी कि 'छायावाद को रोमैंटिक काव्य तक ही सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति आंख मूंद लेना है' अनावश्यक आग्रह व्यक्त करता है। इससे भी आगे बढ़कर जब वे कहना चाहते हैं कि 'रोमैंटिक प्रवृत्ति को छायावाद की केन्द्रीय प्रवृत्ति मानना अनुचित है' तो निश्चित रूप से ऐतिहासिक सत्य की हत्या होती है। अपनी इस प्रतिपत्ति की पुष्टि में पंत ने दो मुख्य तर्क दिए हैं, एक तो यह कि छायावाद ने 'राष्ट्रीय अन्तर्जागरण की चेतना तथा वैश्व विकास के नये मूल्य के रूप-स्पर्श' को वाणी दी और दूसरा यह कि छायावाद में 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' जैसी क्लासिकल कृतियां भी मिलती हैं तथा साथ ही उसकी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएं भी धीरे-धीरे 'क्लासिक्स' की श्रेणी में आ गई हैं। स्पष्ट है कि इनमें से पहली बात का रोमैंटिक प्रवृत्ति से कोई अनिवार्य विरोध नहीं है। दूसरी बात भी ठीक नहीं जंचती। एकाध कविताओं से किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का निश्चित निर्धारण नहीं हो सकता, न 'क्लासिक्स' में केवल 'क्लासिकल' ढंग की रचनाओं का ही समावेश होता है।

'रोमैंटिसिज्म' शब्द का बहुत सीमित अर्थ ग्रहण करने के कारण ही यह भ्रम उत्पन्न होता है कि 'केवल' रोमैंटिक होने में किसी काव्य-धारा की हेठी है। सत्य यह है कि रोमैंटिक शब्द अपने-आप में ही बहुत वैविध्य समेटे हुए है। उसके वैविध्य को स्थापित करने के लिए किसी विरोधी या विपरीतार्थक शब्द की विशेषताएं भी उसके साथ सयुक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। छायावाद रोमैंटिक है, यह मान लेने से उसमें वैविध्य की कमी व्यंजित नहीं होती।

छायावाद के सम्बन्ध में पंत की धारणाओं का यह संक्षिप्त दिग्दर्शन है। इनके अतिरिक्त पंत ने छायावाद पर राजनीतिक-सामाजिक दबावों तथा व्यक्तिगत संघर्षों का भी महत्त्व स्वीकार किया है। साथ ही अन्य कुछ आनुषंगिक कारण भी उन्होंने स्वीकार किये हैं। पर मुख्यतः हम उनकी छायावाद-संबंधी धारणाओं में दो प्रतिपत्तियों को रेखांकित कर सकते हैं—एक यह कि छायावाद विश्वात्मवाद के नये व्यापक आदर्श को वाणी देता है और दूसरी यह कि छायावाद का संघर्ष यदि राजनीतिक-आर्थिक धरातल पर नहीं है तो एकदम व्यक्ति के सीमित धरातल पर भी नहीं है वरन् एक बृहत् सांस्कृतिक भूमि पर है। पंत का आग्रह स्पष्ट ही छायावाद को अन्तर्मुखी मानने के विरोध मे है। छायावाद भविष्यमूलक वास्तविकता का चित्रण करता है, इसलिए वास्तव में वह न तो अंतर्मुखी है, न व्यक्तिनिष्ठ। छायावाद की सम्यक् समीक्षा उसकी यथार्थ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ही ठीक-ठीक की जा सकती है, किन्हीं आरोपित मूल्यों के आधार पर नहीं।

पंत का छायावादी काव्य

छायावाद की पृष्ठभूमि तथा उसके स्वरूप के इस संक्षिप्त विवेचन के अनन्तर अब हम पंत की उस काव्य-यात्रा से परिचय प्राप्त करने में तत्पर हो सकते हैं जो 'वीणा' से 'युगान्त' तक धीरे-धीरे एक सुनिश्चित गति से चलती रहती है और फिर अपने अन्तिम बिन्दु पर उसी तरह धीरे से मुड़कर एक अन्य मार्ग पर प्रारंभ हो जाती है। इस यात्रा के सोपान हैं—'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और 'गुंजन'। इस उपशीर्षक के अन्तर्गत हम 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुंजन' का परिचय प्राप्त करेंगे।

वीणा : 'वीणा' की कविताएं, स्वयं कवि की विज्ञप्ति के अनुसार, अधिकांश सन् १६१८-१६ ई० की लिखी हुई हैं। कवि ने उन्हें अपना दुधमुंहा प्रयास कहा है। 'वीणा' की कविताएं प्रारंभिक होते हुए भी कथ्य और शिल्प के स्तरों पर पीछे की कविताओं से एक विचित्र अलगाव दिखाती हैं। पंत अपनी इन प्रारंभिक कविताओं में ही अपना पृथक् काव्य-व्यक्तित्व बनाने लगते हैं। निश्चय ही इस अलगाव का बहुत-सा अंश सीधे रवीन्द्र-नाथ के प्रभाव में आया है। संग्रह की अधिकांश कविताओं का कुछ रहस्याच्छादित स्वर इसका स्पष्ट प्रमाण है। फिर भी रवीन्द्रनाथ से कवि का अलगाव भी इन प्रारंभिक रच-नाओं में ही प्राप्त हो जाता है जो कवि की स्वतंत्र प्रतिभा, अनुभव-शक्ति और कलात्मक वैशिष्ट्य का प्रमाण है। पहली कविता में ही कवि कविता को सम्बोधित करते हुए कहता है :

> अधरामृत से इन निर्जीवित
> शब्दों में जीवन लाओ,
> आंखों ने जो देखा, कर को
> उसे खींचना सिखलाओ।

स्पष्ट ही यहां कवि का आग्रह बाह्य जगत् के नानारूपात्मक सौंदर्य को अंकित करने पर है, अंतर्मुखी पद्धति पर व्यक्तिगत सुख-दुःख, रहस्य-बोध आदि की विवृत्ति पर नहीं। इस 'आंखों से देखी' वस्तुओं का चित्रण कवि की प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं में मिलता है जिनकी संख्या इस संग्रह में काफी है। प्रकृति के प्रति कवि का प्रेम अनेक प्रकार से व्यक्त हुआ है। कहीं वह उसे 'मां' कहकर पुकारता है :

> यह चरित्र मां! जो तूने है
> चित्रित किया नयन-सम्मुख,
> गा न सकी यदि मैं इसको तो
> मुझको इसमें भी है सुख!

कहीं वह जागतिक प्रेम की अपेक्षा प्रकृति-प्रेम को श्रेयात् निरूपित करता है—

> बालकाल में जिसे जलद से
> कुमुद-कला ने किलकाया,
> तारावलि ने जिसे रिझाया
> मृदु स्वप्नों ने सुहलाया।

कहीं उसे प्रकृति में रहस्य-तत्त्व की छाया दिखने लगती है :

निशानाथ के प्रियवर सहचर !
अंधकार, स्वप्नों के यान !
किसके पद की छाया हो तुम ?
किसका करते हो अभिमान ?

वैसे शुद्ध रहस्यवादी ढंग की कविताएं भी इस संग्रह में बहुत हैं। रहस्यवाद का यह स्वर 'वीणा' में प्रकृति-प्रेम के अतिरिक्त अन्य सभी स्वरों से कुछ अधिक ही मुखर प्रतीत होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि अभी तक कवि अपनी भावभूमि की तलाश में ही संलग्न है, इसलिए बाह्य प्रभाव उसमें कुछ प्रधान हो गए हैं और नितान्त स्वकीय प्रवृत्तियां अपेक्षाकृत विरल। रहस्यवाद की एक उक्ति द्रष्टव्य है—'वीणा' से तमाम इस प्रकार के उदाहरण दिए जा सकते हैं :

अहा अभागिन हो तुम मुझसी
सजनि ! ध्यान में अब आया,
तुम इस तरुवर की छाया हो
मैं उनके पद की छाया।

रहस्यवादी प्रेम-संबंधी उक्तियों के साथ विश्व-प्रेम, लोक-प्रेम तथा जाति-प्रेम की उक्तियां भी जगह-जगह दिखाई पड़ती हैं। इस संग्रह में ऐसे उदाहरण कुछ विरल हैं, पर जितने भी हैं, वे एक प्रवृत्ति का प्रदर्शन तो करते ही हैं। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है :

विश्व-प्रेम का रुचिकर राग,
पर-सेवा करने की आग,
इसको संध्या की लाली-सी
मां ! न मन्द पड़ जाने दे,
द्वेष-द्रोह को सान्ध्य जलद-सा
इसकी छटा बढ़ाने दे।

वेदनावाद-छायावाद की एक विशेषता है, यह ऊपर कहा गया है। इस प्रसंग से वेदना-संबंधी यह उक्ति द्रष्टव्य है :

आज वेदने ! आ तुझको भी
गा-गाकर जीवन दे दूं,
हृदय खोल के रो-रोकर !

'वीणा' की कविताओं की चर्चा को समाप्त करने के पूर्व दो कविताओं की चर्चा अलग से आवश्यक है—एक तो 'चेतक' पर लिखी हुई कविता तथा दूसरी 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि' वाली कविता। 'चेतक' पर लिखी हुई कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उसका कथ्य इस संग्रह की अन्य कविताओं से भिन्न-ऐतिहासिक है। पर 'चेतक' की मृत्यु की घटना का कुछ एक क्षिप्र दृश्य-योजनाओं में वर्णन करनेवाली यह कविता न तो इतिहास-दृष्टि की कविता है, न गौरव-गायन की, न स्वामिभक्ति का गुण बखानने वाली है। यह इतिहास के एक अत्यन्त करुण नाटक का पुनःसृजन है जिसमें कवि ने 'जा रहा

है वह सखि उस पार' जैसी पक्तियो से एक अनोखी सद्य -उपस्थिति का गुण उत्पन्न कर दिया है। कविता की ये पंक्तियां इस दृश्य को जैसे काल और आकाश के विस्तार मे फैलाकर उसे एक चिरन्तनता प्रदान कर देती हैं :

करुण नयनों की नीरव-कोर
डाल निश्चल स्वामी की ओर,
अर्ध हिनहिना, अश्रुजल छोड़
दृगों में मूंद चरम-छवि पावन।

१२-८-८१

दूसरी कविता 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि वह इस संग्रह की सबसे प्रौढ़ कविता है और पंत की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में अपना स्थान रखती है। प्रथम रश्मि के आभास से बाल-विहंगिनी कूज उठी । उसको संबोधित करते हुए कवि ने प्रातःकाल के आगमन का बड़ी ही व्यंजक शैली में चित्रण किया है। १९१९ ई० में लिखी होने पर भी प्रौढ़ता की दृष्टि से यह कविता 'पल्लव' की कविताओ से घटकर नहीं है। एक व्यंजनापूर्ण चित्र द्रष्टव्य है :

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरों पर
हिल मोती का-सा दाना।

'वीणा' की कविताओं का यह विहंगावलोकन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उनमें छायावाद की सभी प्रवृत्तियां अपने मूल रूप में विद्यमान है। साथ ही कवि पंत की वे प्रवृत्तियां, जो बाद में 'पल्लव' में पुष्ट रूप में दृष्टिगत होती हैं, भी इस संग्रह में मिल जाती हैं। कुछ रचनाएं तो सीधे ही बाद में 'पल्लव' में कुछ विकसित रूप में सम्मिलित कर ली गईं। स्वयं पंत की विज्ञप्ति के अनुसार, 'वीणा में कौन-कौन तुम परिहत बसना' शीर्षक एक छोटा-सा प्रगीत है जो पीछे सन् १९२० में 'छाया' नामक लम्बी रचना में विकसित होकर 'पल्लव' में सम्मिलित कर दिया गया है तथा 'कैसा नीरव मधुर राग यह' प्रगीत 'पल्लव' में 'स्वप्न' शीर्षक मेरी प्रसिद्ध रचना मे पल्लवित हुआ। अन्त में यह भी समझ लेना आवश्यक है कि प्रारंभिक होने के बावजूद 'वीणा' प्रगीत-काव्य की दृष्टि से एक श्रेष्ठ रचना है। निश्चय ही इसमें अपरिपक्व आयु की अप्रौढ़ अनुभूतियां और कल्पनाएं हैं पर उससे प्रगीतों का स्तर घटा नही है, बल्कि कहीं-कहीं इसी कारण उनमें मोहकता का गुण कुछ अधिक आ गया है। भाषा-शैली जैसा कि पंत ने स्वयं स्वीकार किया है, अभी वैसी सुघड़ नहीं है जैसी बाद की कृतियों में—वह अभी निर्माण की प्रक्रिया में ही है। फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रगीत-काव्य के इतिहास में 'वीणा' निश्चय ही एक नवीन संभावना लेकर आई।

ग्रंथि : 'ग्रंथि' के प्रारंभ में कवि के 'विज्ञापन' के अनुसार यह कविता-पुस्तक सन् १९२० की जनवरी में लिखी गई थी। 'ग्रंथि' प्रणय-काव्य है। कभी-कभी यह अनुमान भी व्यक्त किया गया है कि इसका आधार कवि के अपने जीवन का एक अनुभव

है। इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना संभव नहीं है, पर एक बात तो इससे स्पष्ट होती ही है कि ग्रंथि का कवि किस प्रकार अपने वर्णन-कौशल द्वारा अपनी कथा में विश्वसनीयता और प्रामाणिकता का गुण उत्पन्न कर सका है।

ग्रंथि का कथा-भाग बहुत थोड़ा है। वास्तव में कथा पर कवि का उतना आग्रह भी प्रतीत नहीं होता जितना प्रेम की अनुभूति तथा अन्य आनुषंगिक अनुभूतियों की व्यंजना पर। कथा प्रथम पुरुष में वर्णित है। उसका सारांश इस प्रकार है—मधुमास में एक बार नायक की नौका ताल में डूब जाती है। थोड़ी देर बाद जब वह अपनी आंखें खोलता है तब वह अपने को किनारे पर एक सुन्दरी बाला के अंक में सिर रखे पड़ा पाता है। प्रथम दर्शन में ही दोनों में प्यार हो जाता है, परन्तु यह प्रेम अभी ठीक से पुष्ट भी नहीं हो पाता है कि नायिका का ग्रंथिबंधन किसी और से हो जाता है। प्रेमी विरह-दग्ध होकर प्रथम तो नाना प्रकार से विलाप करता है और अन्ततः विरह को ही अत्यानिक सत्य मानकर संतोष कर लेता है।

इसी वियोगान्त कथा को कहीं प्राकृतिक सुषमा, कहीं प्रथम मिलन के संकोच, कहीं प्रणय के उल्लास, कहीं परिहास की प्रगल्भता और अन्त में विरह की सांद्र भावधारा के ताने-बाने से कवि ने इस छोटे काव्य का आकार अत्यन्त नैपुण्य और कारीगरी के साथ बुना है। प्रारंभ में कवि अपनी सहचरी कल्पना को संबोधित करके उसे अतीत की 'सजल सुधि' में मग्न होने के लिए आमंत्रित करता है। वह मधुमास की उस संध्या का उल्लेख करता है जिसमें उसकी तरणि तरणि (सूर्य) के साथ ही ताल में डूब गई थी। चेतना लौटने के बाद कवि का साक्षात्कार अपनी जीवन-रक्षिणी नवयौवना से होता है। कवि चमत्कृत हो उठता है—जीवन की तरंगों में नित्य ही कोई-न-कोई डूबता ही रहता है, पर सबको सहसा एक दूसरी तरी इस तरह मिल जाती है क्या ?

मग्न होकर किन्तु सबको सहज ही
नाव मिलती है नहीं यों दूसरी।

थोड़ी देर तक कवि उस चन्द्रोपम मुख को देखता रहता है। फिर एक पल के लिए उठकर और तत्काल गिरकर नायिका की पलकें उसके अनुराग को व्यंजित कर देती हैं :

एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय-संबंध था।

प्रणय के इस प्रथम परिचय को जब आंखों की भाषा में दोनों के हृदयों ने ग्रहण कर लिया तब नायक ने 'विनत वाणी' में अपनी प्रिया से हृदय की बात कही। जिस आहत भ्रमर को तुमने अपने हृदय से लगा लिया है उसे तुम एक लहर से बचाकर दूसरी लहर के हवाले न करो। तुम्हारे प्रेम का यह दीन भिखारी ही तुम्हारे प्रणयदान का वास्तविक अधिकारी है क्योंकि

दीनता के ही विकम्पित पात्र में
दान बढ़कर छलकता है प्रीति से।'

प्रेम-निवेदन की इस विकलता का प्रत्युत्तर भी तत्काल प्राप्त होता है, पर इससे बिल्कुल भिन्न ढंग से। नायिका की आंखें एक क्षण के लिए नायक की आंखों से मिलती हैं, उसके मुंह से केवल एक विशद-व्यंजनापूर्ण शब्द निकलता है—'नाथ !' पर :

उस अनूठे सूत्र में ही हृदय के।
भाव सारे भर दिये, तावीज-से।

आगे स्पृहा और संकोच के सुन्दर समर का वर्णन है। नायिका के होंठ लज्जा के कारण सिल-से जाते हैं। वह आगे कुछ भी नहीं कह पाती।

दृश्य बदलता है। यहां से कवि हमें हास-बिलास और रंगरेलियों के उन्मुक्त वातावरण में ले चलता है। परिदृश्या पर नायिका की विनोदी सखियों का आगमन होता है। वे तानों और मधुर व्यंग्यों की बौछार करने लगती हैं। इस हास-परिहास के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

मन्द जलकर रुक, अचानक अधखुले
चपल पलकों से हृदय प्राणेशका
गुदगुदाया हो नहीं जिसने कभी
तरुणता का गर्व उसने क्या किया!

हास-सरिता में सरोजों-से खिले।
गाल के गहरे गढ़ों को मधुप से
चुम्बनों से हो नहीं जिसने भरा,
उस खिली चम्पाकली ने क्या किया?

इसके बाद नायक की अपनी कथा है, जिसमें वह बतलाता है कि किस प्रकार उसका जीवन प्रारंभ से ही सब प्रकार से प्रेम-शून्य रहा है—माता-पिता का वियोग और व्यापी अकिंचनता। उस अभाव की पूर्ति इस नवोदित प्रणय-राग के द्वारा कुछ पूरा होने ही वाली थी कि :

प्रातः-सा जो दृश्य जीवन का नया
था खुला पहले सुनहले स्पर्श से,
सांझ की मूर्च्छित प्रभा के पत्र पर
करुण उपसंहार हा! उसका मिला!!

और :

हाय! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि-बन्धन हो गया, वह नव कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

उक्ति का चमत्कार तो यहां है ही, साथ ही विवशता का भाव अत्यन्त प्रभावी

ढग से व्यक्त भी हो सका है। असूया के भाव का विस्तार यहां विवशता की इसी गहनता के कारण नहीं हो पाता। सीधे कवि विरह और कातरता के समुद्र में डूबने-उतराने लगता है। यह कसक आगे चलकर अत्यन्त तीव्र रूप में इन पंक्तियों में प्रकट हुई है :

शैवलिनि ! जाओ मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर
उडुगनो ! गाओ, पवन ! वीणा बजा।
पर, हृदय ! सब भांति तू कंगाल है।

शुद्ध भाव-व्यंजना की दृष्टि से पंत की ये पंक्तियां सारे आधुनिक साहित्य में अनूठी कही जायेंगी। जिस प्रकार की कुछ हलकी मानवीय असूया, कुछ वैराग्य और कुछ असग निराशा की अभिव्यक्ति एक साथ यहां संभव हुई है, वैसी कम ही दिखाई देती है।

तदुपरान्त निराश प्रणय के उद्‌गार हैं। नायक दर्शन, सौंदर्य, प्रेम, स्मृति, आशा, वेदना आदि को सम्बोधित करके निराशा और वेदना की अनेक करुण उक्तियों का सागर हमारे सामने उड़ेल देता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

आश्रु! —दिल की गूढ़ कविता के सरल
औ' सलोने भाव ! माला की तरह
विकल पल में पलक जपते हैं तुम्हें,
तुम हृदय के घाव धोते हो सदा।

ग्रंथ के अंतिम भाग में विराग और बौद्धिकता का स्वर है। नायक अपनी वेदना मे ही स्थिर हो जाता है और अपने अभाव में ही वैभवशाली हो जाता है। वेदना से अधिक निरापद और समृद्ध क्या हो सकता है—विशेषतः जब किसी की वेदना अपने चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण में उस तरह विकीर्ण हो जाय :

विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
ऊंघती है नींद-सी मेरी स्पृहा,
ललित लतिका के विकंपित अधर में
कांपती है मुखर मेरी कल्पना।

'ग्रंथि' प्रेम-कहानी है जिसका मूल स्वर विप्रलंभ का है। कहानी में संयोग या परिहास के आनन्दप्रद क्षण भी स्मरण की धुंध से ढककर एक अज्ञात पीड़ा की ही सृष्टि करते हैं। फिर भी उल्लास आदि के वर्णन निश्चित रूप से अत्यंत मोहक हैं। सखियों के परिहास में हम इसके उदाहरण देख आये हैं। विरह का तो यह काव्य ही है।

ऊपर 'ग्रंथि' के भाव-पक्ष पर ही विचार हुआ है, परन्तु उसका कला-पक्ष भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कहना न होगा कि 'ग्रंथि' का कला-पक्ष 'वीणा' की अपेक्षा अधिक पुष्ट है, पर इतने से 'ग्रंथि' की कला का ठीक परिचय नहीं होता। वास्तव में इस रचना में पंत संस्कृत के कवियों तथा हिन्दी के रीति-कवियों की शैली पर चलते दिखते हैं—संस्कृत कवियों की शैली पर विशेषतः उनके इस काव्य में अलंकारों तथा उक्ति-वैचित्र्य-विधायक अन्य तत्त्वों का जितना प्रयोग है उतना अन्यत्र कहीं नहीं। यद्यपि यहां

अलंकार संस्कृत के महान कवियों की शैली पर भाव व्यंजना को अधिक मुखर बनाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं न कि मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए। इस विशेषता का चाहे जो भी कारण रहा हो (संभव है इसका कारण कवि द्वारा इस काल में संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन रहा हो जैसा कि स्वयं कवि ने इंगित किया है), इतना निश्चित है कि ग्रंथि का शिल्प-विधान, कुछ अंशों को छोड़कर (विशेषतः बाद के कुछ अंशों को) सर्वत्र, संस्कृत-काव्य से प्रभावित है। पंत ने 'वीणा' के लिए जो कहा था, वह ग्रंथि के लिए कहा जाना चाहिए—कि वह पुराने ढंग के रसज्ञों को भी उतनी ही पसंद आयेगी। पंत के काव्य में 'ग्रंथि' से श्रेष्ठ बहुत कुछ है, पर उससे अधिक मनोरम और हृदयहारी बहुत कम। संस्कृत के प्रभाव को जहां पंत ने लिया है वहां उन्होंने अपने को उस महान् साहित्य की परम्परा के उपयुक्त सिद्ध किया है। निम्नलिखित उद्धरणों में ग्रंथि पर संस्कृत की काव्य-शैली का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है :

निज पलक, मेरी विकलता साथ ही
अवनि से, उर से मृगाक्षिणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेहश्यामल दृष्टि से।
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।

देख रति ने मोतियों की लूट यह।
मृदुल गालों पर सुमुखि के लाज से
लाख-सी दी त्वरित लगवा, बन्द कर
अधर विद्रुम द्वारा अपने कोश के।

इनमें से अनेक पंक्तियों को पढ़कर सहसा कालिदास की याद आ जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण 'ग्रंथि' से उद्धृत किये जा सकते हैं। और निःसन्देह ग्रंथि के सर्वश्रेष्ठ अंश इस प्रभाव को स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं।

सर्वांशतः यह कहा जा सकता है कि 'ग्रंथि' एक सफल मनोरम प्रेम-काव्य है। जिन्हें काव्य में वृहत्तर संवेदना-भूमियों और बौद्धिकता का आग्रह नहीं है, जिनकी रसज्ञता अब भी पुराने ढर्रे पर चलती है, ऐसे पाठकों को भी छायावाद की यह कृति उतना ही लुभाती है। साथ ही खड़ी बोली की सामर्थ्य को भी यह दृढ़तापूर्वक संस्कृत और ब्रजभाषा की रम्यता के समक्ष स्थापित करती है।

पल्लव : 'पल्लव' में सन् १६१८ से १६२५ ई० तक की कवितायें संकलित हैं। इस प्रकार इसकी कुछ रचनाओं का रचना-काल 'वीणा' के काल तक चला जाता है—जैसे 'विनय', 'मोह', 'बसन्तश्री', 'स्वप्न' का काल। पर अधिकांश में, रचनाओं में एक परिपक्वता दिखाई पड़ी है। निश्चय ही कवि के छायावादी काव्य-व्यक्तित्व का सबसे अच्छा प्रस्फुटन 'पल्लव' में ही हुआ है। इसी कारण अब भी उनकी छायावादी कविता के प्रेमी 'पल्लव' को ही उनकी सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति मानते हैं। 'पल्लव' की भूमिका ब्रजभाषा काव्य-परम्परा के समक्ष खड़ी बोली की नई काव्य-धारा को उच्च स्वर में स्थापित करती है। इस कारण भी 'पल्लव' का ऐतिहासिक महत्व है।

आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास-क्रम की दृष्टि से 'पल्लव' की भूमिका—'प्रवेश'—का ऐतिहासिक महत्त्व है। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह भूमिका हिन्दी के नवयुग में प्रवेश का उद्‌घोष है। इसलिए 'पल्लव' की कविताओं पर विचार करने के पूर्व उसकी भूमिका पर भी विचार कर लेना उचित होगा। कवि के विज्ञापन के अनुसार इस भूमिका में काव्य के बाह्य रूप पर ही थोड़ा-बहुत विचार किया गया है, 'काव्यकला के आभ्यंतर रूप' पर विस्तार-भय से विचार नहीं किया जा सका। फिर भी, चूंकि काव्य के बाह्य और आभ्यंतर पक्षों का विभाजन कभी इतना पूर्ण नहीं होता, बाह्य पक्ष के विचार के साथ ही अनिवार्यतः आभ्यंतर पक्ष का भी कुछ विचार हो गया है। इस भूमिका में कवि हिन्दी की नव काव्यधारा के पक्षधर के रूप में खड़ा होता है और अपने प्रतिपक्ष में प्रधानतः ब्रजभाषा (जिससे यहां प्राचीन साहित्यिक हिन्दी का अभिप्राय ग्रहण किया गया है) तथा उसकी रीति-कविता को रखता है। इसी प्रसंग में काव्य-भाषा, छंद आदि पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' का वास्तविक महत्त्व इसी बात में है कि उसमें युग की नई प्रवृत्ति की सच्ची पहचान है तथा अपने पक्ष को पुरातनधर्मिता के विरुद्ध आग्रहपूर्वक प्रस्तुत करने का साहस है। इस भूमिका में प्रतिभाशाली युवक कवि के सहज आत्मविश्वास, आदर्शप्रियता तथा नवीन के प्रति स्वस्थ आग्रह का जीवन्त प्रकाशन हुआ है। यही इस भूमिका की सार्थकता है और इसी दृष्टि से इसका मूल्यांकन करना उचित होगा।

इस प्रसंग का अधिक विस्तार न करके अब हम सीधे 'पल्लव' की कविताओं पर आ जायें। 'पल्लव' की कविताओं का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—प्रेम-गीत, कल्पना-प्रधान कविताएं, भाव-प्रधान कविताएं तथा वे कविताएं जिनमें कल्पना और भावों का उचित सम्मिश्रण है।

प्रेम-गीतों—'उच्छ्‌वास' और 'आंसू'—को पहले लें। 'उच्छ्‌वास' में एक कथा-नक है—कथानक क्या, कथानक का आभास-मात्र है। कथा-सूत्र अत्यंत विरल और ग्रथि की अपेक्षा बहुत अस्पष्ट है। आत्मकथात्मक शैली में वर्णित यह घटना एक किशोर और किशोरी के परस्पर आकर्षण और फिर संदेह के कारण विकर्षण या विराग से सम्बन्ध रखती है। प्रारंभ में कवि 'उच्छ्‌वास' को संबोधित करता है :

> "सिसकते, अस्थिर मानस से
> बाल बादल-सा उठकर आज
> सरल अस्फुट उच्छ्‌वास।
> अपने छाया के पंखों में
> (नीरव घोष भरे शंखों में)
> मेरे आंसू गूंथ, फैल गंभीर मेघ-सा
> आच्छादित कर ले सारा आकाश।"

उच्छ्‌वास को संबोधित करते हुए ही कवि यह निरूपित करने लगता है कि जरा आदरणीय है, यौवन विलासमय है, स्नेह की वस्तु तो एकमात्र शैशव है। और इसके तुरत बाद, विलक्षण आकस्मिकता के साथ कविता की नायिका का परिचय प्राप्त होता

है—'बालिका ही थी वह भी !' उसके बाद नायिका का रूप-वर्णन प्राप्त होता है। उसकी मुसकान यह चित्र एक बार पुनः 'ग्रंथि' की विदग्धता की याद ताजा करता है :

छपी-सी पी सी मृदु मुस्कान
छिपी-सी, खिंची सखी-सी साथ,
उसी की उपमा सीवन, भान
गिरा का धरती थी, घर हाथ।

धूल की ढेरी में गीत खोजनेवाला नायक अपने गीतों को अपनी प्रिया के प्राणों में उतार-उतारकर उसके अधरों पर मृदु हास-सा मंडरा गया। धीरे-धीरे वह उसके समीप खिच आता है। परिदृश्य में सावन के बादल हैं, मेखलाकार पर्वत है जिसके परिवेश में उसको प्रतिबिम्बित करता विशाल ताल है तथा झरने हैं जो मानो गिरिवर का गौरव-गान करते झरते रहते हैं। इन सबके बीच में से आकाश की ओर उठे हुए विशाल वृक्ष हैं जो नितान्त शांत, आत्मस्थ और मग्न हैं।

सहसा परिदृश्य बदलता है :

'उड़ गया अचानक, लो भूधर
फड़का अपार वारिद के पर !
रव शेष रह गए हैं निर्झर !
है टूट पड़ा—भू पर अम्बर।

यों यह एक सीधी प्राकृतिक घटना—वर्षा, तड़ित् आदि—का चित्रण है, पर आकस्मिकता से यह घटना अंकित की गई है और जिस अनोखी लाक्षणिकता से इसको समन्वित कर दिया गया है, वह हमें आगे आनेवाली घटना के लिए तैयार करती है।

आगे की घटना भी उसी तरह, मानो प्रसंगतः, ला दी गई है, जैसे नायिका को लाया गया है :

मर्म पीड़ा के हास !
रोग का है उपचार,
पाप का भी परिहार,
है संदेह, नहीं है इसका कुछ संस्कार !
हृदय की है दुर्बलहार !!

संदेह की आकाशबेलि निराधार ही उपज जाती है और स्नेह के इस कोमल विटप में कांटा-सा उग आता है। राग विराग में परिणत हो जाता है। इस स्थिति का चित्रण इन व्यंजक शब्दों में किया गया है :

मिले थे दो मानस अज्ञात,
स्नेह शशि बिम्बित था भरपूर !
अनिल-सा कर अकरुण आघात,
प्रेम प्रतिभा कर दी वह चूर !!

कविता का अंत वेदना की उक्तियों के साथ होता है—'कौन किसके हृदय को जान पाता है ?' किसी की भावनाओं के संबंध में किए गए अनुमान सदैव सच तो नहीं होते ! फिर

भी भ्रम को सत्य मान ही लिया जाता है और इस कारण निरपराधों को भी दण्डित होना ही पड़ता है :

> निरपराधों के लिए भी तो अहा !
> हो गया संसार कारागार है !!

कविता इस उदास उक्ति पर समाप्त होती है। ग्रंथि की तरह 'उच्छ्वास' भी विरह-गीत है, इसमें सन्देह नहीं; पर सम्बन्ध-सूत्र की विरलता के कारण 'ग्रंथि' की सी प्रभावान्विति इसमें नहीं है। उसके स्थान पर यहां गीति-तत्त्व अधिक प्रबल है। शैली की दृष्टि से यह रचना निश्चय ही कवि की प्रौढ़ता का द्योतक है।

'आंसू' जैसा नाम से ही स्पष्ट है, विरह-काव्य है। 'उच्छ्वास' और 'आंसू' दोनों मिलाकर हिन्दी कविता के मेघदूत कहे जा सकते हैं। 'आंसू' में कवि का 'गीला गान' है। इसकी पृष्ठभूमि भी वही है जो 'उच्छ्वास' की। प्रारंभ में ही कवि पावस के उन प्रेममय मासों को आंखों में साकार करने की अभ्यर्थना आंसू से करता है। कविता का प्रारंभ ही एक अत्यन्त संश्लिष्ट चित्र-विधान के साथ होता है :

> अपलक आंखों में
> उमड़ उर के सुरभित उच्छ्वास !
> सजल जलधर-से बन जलधार
> प्रेममय वे प्रिय पावस-मास
> पुनः नयनों में कर साकार।

इसके बाद कवि अपने गान के गायन में तत्पर होता है, जिसका वर्ण-वर्ण हृदय का कम्पन है, शब्द-शब्द सुधी का दंश है, चरण-चरण आह है। वियोगी नायक को भादो का गीला मास पुनः-पुनः अपनी प्रिया की याद दिलाता है और वह सुधि जब तड़ित की तरह हृदय को चीरकर उसे अधीर कर देती है तब बादलों से ज्वाला निकलने लगती है, सोने का सन्ध्याकाल विकराल भृतुगृह बन आता है तथा चन्द्रमा तपने लगता है। जब वह देखता है कि उपवन फूलों के प्यालों में अपने प्रिय मधुकर को अपने यौवन-रस का पान करा रहा है तब एक अनोखी आकुलता उसे घेर लेती है। चन्द्रमा उसे अपनी प्रिया के मुख की याद दिलाता है :

> तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
> मुझे करता तब अंतर्धान,
> न जाने तुमसे मेरे प्राण
> चाहते क्या आदान !

इसके उपरान्त कुछ दूर तक प्रकृति-वर्णन है। थोड़ी देर के लिए कवि मानो अपने विषय से हटकर पर्वत, बादलों और चपला की आंखमिचौनी में खो जाता है, पर शीघ्र ही पुनः वह अपनी प्रिया की स्मृति की ओर लौट आता है। यहां इस कविता का पहला अंश समाप्त होता है।

दूसरे भाग के प्रारम्भ में कथा की हलकी-सी एक कड़ी उभरती है यह प्रणय करुण है, जिसमें दुराव न हो सके वह भय है, जो सदैव बचना ही

चाहता है सामना नहीं कर सकता वह हृदय है जिसका घाव कभी भर नहीं पाता। कवि नीचे की पंक्तियों में प्रिया से वियोग के कारण—संदेह—की ओर भी संकेत करता है :

करुण अतिशय उनका संशय
छुड़ाते हैं जो जुड़े स्वभाव ! !

कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय क्या गंगाजल की धार ! !

अंत में कविअपनी प्रिया की मधुर स्मृति में खो जाता है और उसके स्पर्श,वाणी चितवन, श्वास, छाया, नेत्र, हृदय आदि का सौंदर्य और प्रभाव चित्रमयी भाषा मे निरूपित करने लगता है। इनकी याद करके वह विकल हो जाता है :

दैव ! जीवन भर का विश्लेष—
मृत्यु ही है निःशेष ! !

और अंत में अपने हृदय को इस प्रकार तोष देता हुआ कवि इस कविता का समापन करता है :

मूंद पलकों में प्रिया के ध्यान को !
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को !

'आसू' 'ग्रंथि' और 'उच्छ्वास' दोनों की अपेक्षा अधिक सही अर्थों में विरह काव्य है। 'ग्रंथि' और 'उच्छ्वास' दोनों ही अपनी बौद्धिक ढंग की दुःख-चेतना के कारण सच्चे भावुकों को कहीं निराश करती हैं। 'आंसू' में वियोग की वेदना अंकुठित व्यक्त हुई है।

यहां 'आंसू' की एक और विशेषता का उल्लेख करके यह प्रसंग समाप्त किया जा सकता है। 'आंसू' में जगह-जगह विरह-वर्णन की दो प्रवृत्तियां प्रकट हुई हैं जिनका संबंध पहले की कवि प्रवृत्तियों से जोड़ा जा सकता है। एक तो 'आंसू' के कवि ने विरहावस्था में चन्द्रमा, तारों, संध्या इत्यादि प्राकृतिक उपकरणों की दाहकता का वर्णन किया है जो रीति-पद्धति से जोड़ा जा सकता है। दूसरे, उसने प्राकृतिक पदार्थों में मानवीय दुःख की छाया देखने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की है, कुछ उसी तरह जैसे कालिदास ने; पर इन दोनों ही प्रवृत्तियों में हमारे कवि ने रीति-कवियों तथा संस्कृत-कवियों से एक स्पष्ट भिन्नता भी प्रस्तुत की है जिससे उसकी इन प्रवृत्तियों को सीधे हिन्दी के रीति-काव्य और संस्कृत के काव्य से जोड़ने में संकोच होता है। रीति-कवियों की ताप-संबंधी व्यजनाएं अनुमानाश्रित होते हुए भी विरही व्यक्तित्व को केन्द्र में रखती हैं। पंत के वर्णन मे प्रकृति की दाहकता का निरूपण कल्पनाश्रित पर वस्तुगत है। प्रकृति की काल्पनिक भयावहता का वर्णन वह अपने विरह-दुःख की व्यंजना के लिए एक प्रकार से अलंकार

के रूप में करता है। इस अन्तर को समझने के लिए अंधकार का यह रूप द्रष्टव्य है :

पटक रवि को वलि सा पाताल
एक ही वामन पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल,
धुएं का विश्व विशाल।

उसी प्रकार प्रकृति में अपनी मनःदशा का आरोपण भी वह संस्कृत कवियों से भिन्न पद्धति पर करता है। कालिदास के लिए प्रकृति में अपनी मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब देखना अनुभूति का विषय था, आधुनिक कवि के लिए यह कल्पना का विषय है। इससे भी बड़ी बात यह है कि यहां प्रकृति में शाश्वत मानवीय भावों का आरोपण है—कवि के लिए दुःख, प्रतीक्षा, चाह आदि की भावनाओं का एक शाश्वत स्वरूप भी है—न कि व्यक्तिगत भावों का। प्रसंगतः यहां यह भी उल्लेख कर देना होगा कि छायावादी कवि करुणा, वेदना आदि को जिस तरह शाश्वत प्रकृति का अंग समझता प्रतीत होता है उस तरह उल्लास, उत्फुल्लता आदि को नहीं।

इन प्रेमगीतों के अनन्तर अब उन कविताओं पर विचार करें जिन्हें हम कल्पना-प्रधान कविताएं कह आए हैं। शुद्ध कल्पनाप्रधान ढंग की कविता इस संग्रह में 'नक्षत्र' है जिसमें कल्पना का रंग इतना चटख है कि भावोन्मेष बहुत दब गया है। काव्य की दृष्टि से नक्षत्र' साधारण रचना कही जायेगी। इस प्रकार की कविताओं में जहां भाव-वृत्ति का भी कुछ संयोग हो गया है वहां कविता में उच्च काव्यात्मकता का गुण प्रकट हुआ है, उदाहरणार्थ 'वीचि विलास' शीर्षक कविता।

भावप्रधान कविताओं में 'मधुकरी', 'मोह', 'मुसकान', 'विसर्जन' और 'सोने का गान' उल्लेखनीय हैं। 'मधुकरी' प्रकृति की कविता है। कवि मधुप-कुमारी से अपने गान सिखा देने का अनुरोध करता है।

'मोह' शीर्षक कविता 'वीणा' की बारहवीं कविता की याद दिलाती है। यहां उसी भाव को कुछ भिन्न ढंग से दुहरा दिया गया है :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?

'मुसकान' शीर्षक कविता मुसकान की बरबस आ जाने की प्रवृत्ति की व्यंजना करने के साथ ही कुछ रहस्यमय संकेत भी देती है :

नहीं रखती मैं जग का ज्ञान,
और हंस पड़ती हूं अनजान !
रोकने भी पर तो सखि हाय
नहीं रुकती तब यह मुसकान !

'विसर्जन' सीधे रहस्यानुभूति की कविता है। 'सोने का गान' पुनः प्रकृति की कविता है। विहग-कुमारी को सम्बोधित करके कवि ने यहां बहुत कुछ 'मधुकरी' के भाव ही व्यक्त किये हैं :

त्रिपट म थीं तुम छिपी विहान
विकल क्यों हुए अचानक प्राण ?
छिपाओ अब न रहस्य, कुमारि,
लगा यह किसका कोमल बाण ?

तीसरे प्रकार की कविताओं में मौन निमंत्रण, स्वप्न, छाया, बादल, बालापन आदि को रख सकते हैं। भाव-सौंदर्य और कला-सौष्ठव की दृष्टि से ये कविताएं इस संग्रह में सहज ही विशिष्ट लगती हैं। 'मौन निमंत्रण' रहस्य-भावना की कविता है। यह कविता पंत की सर्वाधिक लोकप्रिय कविताओं में से एक है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से यह कविता श्रेष्ठ कही जायेगी। अंतिम पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान,
अहे सुख दुःख के सहचर मौन!
नहीं कह सकती तुम हो कौन।

'स्वप्न' शीर्षक कविता स्वप्न के नाना आयामों को चित्रित करती है—निद्रा के भी और जागृति के भी। निद्रा के स्वप्न तो दिन के आगमन के साथ तिरोहित हो जाते हैं, पर जागृत के स्वप्न, जो सदैव सुप्त हृदय में छिपे रहते हैं, उनका क्या होगा ?

अलि ! क्या कहती है, प्राची से
फिर उज्ज्वल होगा आकाश
पर, मेरे तमपूर्ण हृदय में
कौन भरेगा प्रकृत प्रकाश।

'छाया' 'वीणा' की 'कौन-कौन तुम परिहृतवसना' वाली कविता का ही विकास है; पर पुरानी कविता से इसमें एक विशेषता साफ दिखाई पड़ती है—वह यह कि पुरानी कविता में (शायद उसके लघु आकार के कारण) रहस्य-भावना प्रधान थी जब कि इस कविता में छाया को लेकर की गई मनोरम उत्प्रेक्षाएं आ जाते ही प्रधान हो गई हैं। ऐसी दो उक्तियां द्रष्टव्य हैं :

१. अहो, कौन हो दमयंती सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई।

२. गूढ़ कल्पना सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय सी
ऋषियों के गंभीर हृदय सी,
बच्चों के तुतले भय सी।

'बादल' शुद्ध प्रकृति की कविता है जिसमें बादलों का वर्णन आत्मकथात्मक ढंग प
किया गया है। कविता पर्याप्त लम्बी है, पर अपनी नव-नवोद् भावना-प्रवाह के कारण
कहीं शिथिल नहीं होती। शुद्ध चित्रण-प्रधान इतनी लम्बी कविता—वह भी इस स्त
की —लिख लेना पंत जैसे कल्पनाशील कवि का ही काम था। एक अत्यन्त रमणीय चित्र
द्रष्टव्य है :

फिर परियों के बच्चों-से हम
सुभग सीप के पंख पसार
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में,
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।

निश्चित रूप से ये पंक्तियां अद्भुत व्यंजना-शक्ति की परिचायक हैं।

'बालापन' बाल्यकाल की भावनाओं के प्रति एक आग्रह व्यक्त करती है। इसमें
एक नवयौवना का अपने कर्ता के प्रति यह निवेदन व्यक्त हुआ है :

इस अभिमानी अंचल में फिर
अंकित कर दो विधि ! अकलंक,
मेरा छीना बालापन फिर
करुण, लगा दो मेरे अंक।

'बालापन' कई दृष्टियों से अत्यन्त सुन्दर कविता है। उसमें एक अबोध भावुकता का
प्रवाह उमड़ रहा है।

'पल्लव' की कविताओं पर एक विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त अब हम इस
संग्रह की एक ऐसी कविता पर विचार करेंगे जिसे जान-बूझकर ऊपर के विभाजन में
सम्मिलित नहीं किया गया है। वह कविता है—'परिवर्तन'।

कवि चतुर्दिक एक निर्मम, अपरिहार्य शक्ति की क्रीड़ा देखता है, जिसे वह
'परिवर्तन' का नाम देता है। निःसंग रूप से जगती पर शासन करने वाली यह शक्ति
अपने विराट् रूपाकार में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। कवि उसे सम्बोधित करता है :

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन,
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान-पतन !

इस शक्ति के प्रवाह में साम्राज्य बह जाते हैं, गगनचुम्बी प्रासाद भग्न हो जाते हैं,
मानव-संचित कला-वैभव नष्ट हो जाते हैं, संयोग वियोग में डूब जाता है और स्मित
अश्रु में। यह दुर्निवार शक्ति समस्त संसार पर किसी क्रोधोन्मत्त दैत्य की कृष्ण छाया-
सी छा गई है। इसके प्रभावान्तर्गत ही विश्व में अपार हिंसा है, संहार है, रक्तपात
है।

पर कविता इस निराशा के स्वर पर समाप्त नहीं होती। आगे कवि मानवीय
विकास और नवनिर्माण की ही बात दिखाता है :

जगत की सुन्दरता का चाद
सजा लांछन को भी अवदात
सुहाता बदल, बदल दिन-रात
नवलता ही जग का आह्लाद !

सुख-दुःख, राग-विराग, जीवन-मृत्यु के सामंजस्य और संतुलन द्वारा ही विकास का मानवीय नियम सिद्ध होता है ।

कविता के अन्त में इस विचार का प्रतिपादन है कि संसार के परिवर्तन-विकास का निरन्तन नियम केवल ऊर्ध्वस्थ शक्ति का ही परिणाम है । यह दिव्य सत्ता ही सत्य है और परिवर्तन उसका अनित्य नर्तन है । जीवन की इस आदि शक्ति (ब्रह्म) की परिकल्पना कवि इन शब्दों में करता है :

एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्बर में नील विकास ।

इस प्रकार परिवर्तन की अनिवार्यता और भयावहता के वर्णन से प्रारम्भ करके यह कविता परिवर्तन के पीछे एक अपरिवर्तनीय शक्ति और सत्ता के अन्वेषण पर रुकती है तथा जीवन में मृत्यु और मृत्यु में जीवन के सामंजस्यवादी दर्शन पर समाप्त होती है

तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार,
तुम्हीं में निराकार, साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार ।

'परिवर्तन' निश्चित रूप से पंत की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से एक है । स्वयं पत इसे 'पल्लव' की सर्वश्रेष्ठ और प्रतिनिधि रचना मानते हैं । 'पल्लव' की श्रेष्ठ रचना तो इसे प्रायः सभी आलोचकों ने माना है, पर प्रतिनिधि रचना इसे प्रायः नहीं माना गया है । जो हो, पर इतना निश्चित है कि 'पल्लव' ही क्या, समस्त पंत-काव्य में इस कविता का अपना विशिष्ट स्थान है ।

अन्त में 'पल्लव' न केवल छायावादी कवि पंत की, प्रत्युत छायावाद की प्रतिनिधि कृति है । 'पल्लव' में पंत के काव्य-व्यक्तित्व का चरमोत्कर्ष माना जाय या नही, इसमें साहित्यिक आलोचकों का परस्पर वैमत्य हो सकता है, पर इसमें संदेह नही कि पत जी के अधिकांश भक्त 'पल्लव' को ही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं ।

गुंजन : 'गुंजन' में प्रायः १६२६-३२ तक की कविताएं संकलित हैं । अब तक कवि में एक प्रौढ़ता का आभास मिलने लगता है । पंत जी के अपने शब्दों में—'गुंजन' उनकी आत्मा का 'उन्मन गुंजन' है ।

'गुंजन' की कविताओं की दो साफ कोटियां दिखायी पड़ती हैं—एक को हम जीवन-सबधी विचारपूर्ण कविताए कह सकते हैं दूसरी को प्रणय-कविताए इनके अतिरिक्त 'नौका विहार' अप्सरा' एक तारा' और 'चादनी' जैसी कविताए हैं जो

इस विभाजन में सम्मिलित नहीं होतीं, फिर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

आत्मा के गुंजन का स्वर पहले गीत 'गुंजन' और संग्रह की पहली अशीर्षक कविता में ही उभरता है। 'वन-वन, उपवन-उपवन में नव वय के अलियों का गुंजन' कवि के हृदय में अपनी प्रतिध्वनि पाता है और उसके प्राण जीवन-रस का संचय करने को आतुर होते हैं। कवि विश्व-वेदना में तपकर अपने मन के सजल स्वर्ण-से जीवन की पूर्ण मूर्ति गढ़ने का संकल्प करता है। निर्विकार मन को वह जीवन की गंध ग्रहण करने के लिए तत्पर करता है—'गंधहीन तू गंधयुक्त बन'।

इनके उपरान्त जीवन-संबंधी कोई सत्रह कविताएं हैं जो कवि की भावनात्मक तथा वैचारिक प्रौढ़ता की परिचायक हैं। ये सभी सन् १९३२ की जनवरी-फरवरी की लिखी हुई हैं और इसलिए स्वभावतः एक सूत्र में गुम्फित हैं।

सुख-दुःख की मानवीय द्विधा के सम्बन्ध में कवि की यह उक्ति द्रष्टव्य है :

हंसने ही में तो है सुख
यदि हंसने को होवे मन,
भाते हैं दुःख में आते
मोती-से आंसू के कण।

कवि की जीवन-दृष्टि को ये पंक्तियां अत्यंत सहज ढंग से उद्घाटित कर देती हैं। कवि जीवन में सुख-दुःख के सहज स्वीकार का पक्षपाती है। पर यह निष्ठुर विरागी का निस्संग स्वीकार नहीं है। सुख में हंसी और दुःख में आंसू सहज मानवीय प्रतिक्रियायें हैं। इनका निषेध कवि को मानवीय प्रकृति के विरुद्ध जान पड़ता है। इसलिए वह सुख-दुःख के सामंजस्य के सिद्धांत को बाहर से मानव-जीवन पर आरोपित नहीं करना चाहता, वरन् सहज मानवीय प्रतिक्रियाओं में एक व्यापक सत्य की छाया देखना चाहता है और असहज प्रतिक्रियाओं—चाहे वह किसी प्रकार की हों—का निषेध करना चाहता है। यही संश्लिष्ट भाव इन छोटी-छोटी चार पंक्तियों में कितनी सफाई से व्यक्त हुआ है।

जीवन के प्रति कवि का उल्लासमय आशाभाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है

सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन।

इस प्रसंग की अंतिम कविता 'झर गई कली, झर गई कली' में कवि का जीवन-संबंधी आदर्श व्यक्त हुआ है। यहां लहरों के फेनिल मोती से मुंह भरने के मोह में वृन्त-च्युत कली के रूपक द्वारा कवि ने यह व्यक्त करना चाहा है कि स्वार्थ के आतिशय्य में अपने मानवत्व से च्युत होना दुःख का कारण है। रूपक कुछ कमजोर है, फिर भी मूल भाव अच्छी तरह व्यक्त हो गया है :

है लेन-देन ही जग-जीवन
अपना पर सबका अपनापन।

प्रणय-कविताएं इस संग्रह में दस के आसपास हैं। सबसे पहले 'भावी पत्नी के

प्रति कविता आती है विशेष नवीनता न होने पर भी इस कविता के चित्र बड़े ही भाव पूर्ण और सुंदर है प्रथम मिलन की कल्पनाएं विशेषतः बड़ी सुंदर बन पड़ी है आगे कुछ गीतों में कवि अपनी प्रेयसी का रूप-चित्रण करता है। ऐसी दो कविताएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक में कवि अपनी प्रेयसी की मुसकान का चमत्कारी वर्णन करता है, दूसरी में उसकी आंखों का।

इनके बाद शृंगार के गीत हैं। कुछ को छोड़कर अधिकांश गीत यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इनमें भी 'आज रहने दो यह गृह-काज' वाला गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शृंगार भाव की उत्कटता की ऐसी व्यंजना पंत के काव्य में प्राय कम है। पंत के शृंगार-वर्णनों में प्रायः वैराग्य और संयम की एक हलकी झाईं रहती है। यह कविता एकदम उन्मुक्त है :

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण! रहने दो यह गृह काज!
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये! लालस-सालस वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष।

इसके अतिरिक्त भाषा के सौंदर्य और वर्णन-कौशल के उत्कर्ष की दृष्टि से 'वितरती गृह-वन मलय-समीर' वाली कविता भी उल्लेखनीय है। इन दो प्रमुख गीति-मालाओं के अनन्तर बहुत-सी स्फुट कविताएं आती हैं जिनमें से अधिकांश प्रकृति-विषयक हैं। उनमें से कई काफी पहले की हैं और सुन्दर होने के बावजूद कथ्य या शिल्प की दृष्टि से इस संग्रह की प्रतिनिधि कविताओं से पीछे की हैं। इसलिए उनका उल्लेख यहां आवश्यक नहीं है। अन्य कविताओं में यहां 'जग के उर्वर आंगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन', 'एक तारा', 'चांदनी', 'अप्सरा' और 'नौका-विहार' का उल्लेख आवश्यक है। शुद्ध काव्यकला की दृष्टि से देखा जाय तो उपर्युक्त दो गीतिमालाओं की अपेक्षा ये कविताए अधिक सुन्दर हैं और 'गुंजन' के वास्तविक सौंदर्य का आधार हैं। कवि के काव्य-व्यक्तित्व के विकास-क्रम पर ही मुख्य दृष्टि रखने वाला पाठक या आलोचक सहज ही इस संग्रह की प्रारंभ की बीसेक कविताओं को सारा महत्त्व दे बैठता है। पर सच्ची काव्य-दृष्टि रखने वाला कोई भी काव्य-रसिक यह अनुभव करेगा कि इन अंत की कविताओं में अधिक जान है, अधिक आकर्षण है। इनमें भी 'नौका-विहार' तो निश्चित रूप से अद्भुत के अतिरिक्त और कुछ नहीं कही जा सकती।

'जग के उर्वर आंगन में' इत्यादि कविता जीवन की अव्ययता तथा चिर-नवीनता का संदेश है :

जग के उर्वर आंगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!

'एक तारा' का प्रारंभ संध्या के वर्णन से होता है। फिर संध्या के पहले तारे का वर्णन है जिसका मानवीकरण करके उसमें एकाकीपन, आकांक्षा आदि का आरोप किया

गया है और उनमें तारों-भरे आकाश का उल्लेख है। कवि की दृष्टि में अकेला तारा आत्मदर्शन का प्रतीक है, तारों-भरा आकाश विश्व-दर्शन का। इस कविता से संध्या का चित्र द्रष्टव्य है :

अब हुआ सान्ध्य स्वर्णमलीन,
सब वर्ण-वस्तु से विश्व हीन।
गंगा के चल-जल में निर्मल,
कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूंद चुका अपने मृदुदल।
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर
पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।

'चांदनी' पंत की काव्य-कला का उत्कर्ष बिन्दु है। चांदनी को नाना रूपों में कल्पित करके कवि उसके शांत, अपलक, स्निग्ध सौंदर्य की व्यंजना करता है। 'चांदनी' उन कुछ कविताओं में से है जिन्हें उद्धरणों द्वारा नहीं जाना जा सकता। सारी कविता सौंदर्य का एक अजस्र प्रवाह है जिसके खण्ड करके उसे नहीं समझा जा सकता है। कारण स्पष्ट है। चांदनी का यह वर्णन कल्पना अथवा अनुमान पर आश्रित नहीं है जिसका सौंदर्य प्रायः खण्ड-चित्रों में व्यक्त होता है। यह चांदनी की सजीव उपस्थिति की सीधी अनुभूति से उत्पन्न दृश्य-चित्र है जिसमें चांदनी वस्तु-सौंदर्य से अधिक भाव-सौंदर्य का आधार बन गई है। 'चांदनी' और 'नौका-विहार' इस संग्रह की ऐसी दो कविताएं हैं जिन्हें पूरा उद्धृत करना ही अधिक उचित है। फिर भी निम्नलिखित उद्धरणों से 'चांदनी' के वैशिष्ट्य का कुछ अनुमान तो हो ही जाएगा :

१. वह फूली बेला की बन
जिसमें न नाल, दल, कुड्मल
केवल विकास चिर-निर्मल
जिसमें डूबे दस दिशि-दल।

२. वह मृदु मुकुलों के मुख में
भरती मोती के चुम्बन,
लहरों के चल-करतल में
चांदी के चंचल उडुगण।

अगली कविता 'अप्सरा' कल्पनाप्रधान सृष्टि है। 'अप्सरा' की चिर-परिचित कल्पना को ही यहां कवि अनेक प्रकार की मनोरम काव्य-कल्पनाओं का आधार बनाता है। वर्णनों में अलंकृति का प्राचुर्य है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

रवि-छबि-चुम्बित चल-जलदों पर
तुम नभ में, उस पार,
लगा अंक से तड़ित-भीत शशि
मृग-शिशु को सुकुमार।

अब हम इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कविता 'नौका-विहार' पर आते हैं। जिस प्रकार 'पल्लव' में 'परिवर्तन' अपने विशिष्ट स्वर के कारण अलग दिखाई पड़ती है उसी प्रकार 'गुंजन' में 'नौका-विहार' अपनी विलक्षण सौंदर्य-चेतना, कलात्मक सौष्ठव, बारीकी और सफाई के कारण शेष सभी कविताओं से कुछ ऊपर दिखाई देती है। सौदर्यवादी रचनाशक्ति का यह चरम निदर्शन है। कलात्मक दृष्टि से भी पंत के समस्त काव्य में इतनी पुष्ट कविताएं इनी-गिनी हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह शुद्ध वस्तु-चित्रण की कविता है, और अपनी विशिष्टता के लिए इसे केवल अपने संश्लिष्ट चित्रों का भरोसा है—'परिवर्तन' की तरह इसमें दार्शनिक बौद्धिकता की एक अन्तर्धारा नहीं है जो सहज ही किसी कृति का महत्त्व बढ़ा देती है। 'नौका-विहार' में भी दार्शनिक चिन्तन आया है—अन्त में—पर उससे काव्य-सौंदर्य में व्याघात ही पहुंचा है। सहृदय पाठक को प्राकृतिक परिसर के संश्लिष्ट, कोमल चित्रों के बाद दार्शनिक विचार एकदम फीका लगता है। यह कमी भी इस प्रकार इस कविता के उत्कृष्ट अंशों की उत्कृष्टता की ही प्रमाण बन गई है।

'नौका-विहार' की पृष्ठभूमि में कवि के कालाकांकर के निवास-काल की एक नौका-यात्रा है। ग्रीष्मकाल की चांदनी और गंगा की पतली धार तथा शुभ्र, निस्तब्ध, तारकित आकाश इस कविता का वातावरण निर्मित करते हैं। इन्हीं कुछ उपादानों से कवि ने सौंदर्य का वह कलात्मक प्रासाद निर्मित किया है जो अपनी मिसाल आप है। यह सौदर्य-सृष्टि, जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है, एक सम्पूर्ण सृष्टि है जिसे खण्ड-खण्ड समझना ठीक नहीं होगा। फिर भी बानगी के लिए कुछ चित्र प्रस्तुत हैं :

१. तापस-बाला-सी गंगा कल शशि-मुख से दीपित मृदुकरतल
लहरें उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशिकी रेशमी-विभा से भर
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।

'नौका-विहार' के साथ 'गुंजन' की कविताओं का परिचय समाप्त होता है। सहज ही देखा जा सकता है कि 'गुंजन' तक आते-आते कवि में भावना की अपेक्षा चिंतन अधिक मुखर है तथा शिल्प भी पहले की अपेक्षा अधिक पुष्ट, यद्यपि अपेक्षया कम तरल हो गया है।

ज्योत्स्ना : 'ज्योत्स्ना' का प्रकाशन १९३४ में हुआ। यह पांच अंकों की एक नाट्य-कृति है। फिर भी उसका अध्ययन पंत की गद्य-कृतियों के साथ न करके यहीं कर लेना आवश्यक है, क्योंकि नाट्य-कलाके क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग के स्थान पर यह कृति पंत की जीवन-दृष्टि का एक नूतन विस्तार ही अधिक है। पंत के समस्त परवर्ती काव्य के विकास को ठीक-ठीक समझने के लिए 'ज्योत्स्ना' का अध्ययन अनिवार्य है। इसलिए हम 'ज्योत्स्ना' का अध्ययन इस अध्याय में करेंगे। वैसे भी यह कृति नाट्य-कृति की अपेक्षा कविता का आनंद ही देती है। नाट्य-कला के आधार पर इसका मूल्यांकन

करना इसके साथ अन्याय ही होगा।

हम देख आये हैं कि 'गुंजन' में कवि जीवन-जगत् के वैषम्यों का समाधान खोजने लगा था, पर वहां यह खोज वैयक्तिक स्तर पर थी, व्यक्तिगत दृष्टिकोण से थी। ज्योत्स्ना' में कवि ने उसे एक सार्वभौमता प्रदान कर दी है। जीवन के व्यापक वैषम्यों का आकलन करके कवि ने अपनी विशिष्ट सामंजस्यवादी सांस्कृतिक दृष्टि से उनका समाधान प्रस्तुत किया है। 'ज्योत्स्ना' पाश्चात्य 'ऐलेगरी' के ढंग का रूपक है जिसमें इंदु, ज्योत्स्ना, पवन, सुरभि, स्वप्न, कल्पना, उषा आदि को 'मानवीकृत' करके कवि ने उनके माध्यम से नवीन जीवन-स्पंदन को अभिव्यक्त किया है। पर यहां हमें 'ऐलेगरी' और 'मानवीकरण दोनों का ही प्रयोग अत्यंत सामान्य ढंग से ही करना चाहिए, क्योंकि पारिभाषिक अर्थ में ये दोनों ही 'ज्योत्स्ना' के संदर्भ में ठीक नहीं बैठते। वास्तव में पंत ने अपनी स्वाभाविक वस्तुनिष्ठा और प्रकृतिप्रेम के कारण ज्योत्स्ना, इंदु, उषा, छाया आदि को न तो पूर्णतः प्रतीकवत् प्रयुक्त किया है, न उनका पूर्ण मानवीकरण ही किया है वरन् उनका गोचर, अनुभाव्य रूप अनावृत ही रहने दिया है। इस नाटक की प्रतीकात्मकता इसी में है कि इसमें कवि संपूर्ण नाटकीय व्यापार को प्रतीकात्मक बनाकर मानवता के नव-जीवन के स्वप्न को रूप देने का प्रयास करता है।

पहले अंक में संध्या छाया को सूचित करती है कि इंदु अब पृथ्वी का शासन अपनी वधू ज्योत्स्ना को दे रहा है। अब संसार में आदर्श साम्राज्य स्थापित होगा। दूसरे अंक में इंदु और ज्योत्स्ना का आगमन होता है। इंदु इन विषमताओं का कारण जड़वाद को तथा 'भौतिक वाद-विवादों के मरु' को ठहराता है।

बाद की कथा दो बिंदुओं पर घूमती है। एक ओर संसार के संघर्ष, कटुता, विद्वेष, दैन्य आदि का चित्रण है और दूसरी ओर समता, सामंजस्य, प्रेम, नव-सामाजिकता (मानवता) आदि की स्थापना का वर्णन। कटुता, विद्वेष आदि का कारण जड़-वाद, अपूर्ण जीवन-दृष्टि, एकांगिता आदि को बताया गया है और नव-मानवता का जन्म ज्योत्स्ना के राज्य में स्वप्न और कल्पना के माध्यम से मानव के मन में नये जीवन का सौंदर्य जगाकर संपादित किया गया है। सारी कथा अपनी परिणति तक एक हलके नाटकीय ढंग से पहुंचती है।

दूसरे अंक में ही ज्योत्स्ना स्वर्गलोक से विदा हो जाती है। तीसरे अंक में वह मर्त्यलोक पहुंच जाती है जहां पवन और सुरभि उसकी अगवानी को प्रस्तुत मिलते हैं। यहां पवन ज्योत्स्ना के समक्ष संसार का चित्र उपस्थित करता है। मर्त्यलोक के दूत के रूप में झींगुर का कर्कश स्वर सुनाई देता है :

> जो है समर्थ, जो शक्तिवान,
> जीने का है अधिकार उसे।
> उसकी लाठी का बैल विश्व,
> पूजता सभ्य-संसार उसे! आदि

ऐसे पाशविक सिद्धांत के उद्गार सुनकर ज्योत्स्ना उद्विग्न हो उठती है और तत्काल पवन और सुरभि से कहती है—तुम दोनों के मधुर-सम्मिलन से, मनुष्य जाति के

के मंगल के लिए मैं दो सूक्ष्म तत्त्वों को जन्म देना चाहती हूं, जो अपनी सूक्ष्मता के प्रभाव से ससार के मनोलोक में प्रवेश कर, मनुष्यों के हृदय में उन्नत, संस्कृत भावनाओं का विकास एव प्रचार करेंगे। पवन और सुरभि उत्साहपूर्वक अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं और ज्योत्स्ना उनसे दो तत्त्वों को उत्पन्न करती है। ये तत्त्व स्वप्न और कल्पना हैं। ज्योत्स्ना के आदेश पर स्वप्न और कल्पना सुप्त मनुष्य जाति के मनोलोक में प्रवेश कर नवीन स्वप्नों का चित्रपट बुनते हैं तथा नवीन संस्कार और भावनाएं जाग्रत् करते हैं। फलत नवयुग का निर्माण करने के लिए मनःस्वर्ग से देव-बाल तथा देव-बालाएं प्रकट होकर, अनेक मानसी वृत्तियों—करुणा, ममता, स्नेह, प्रीति, विद्या, प्रतिभा, कांति, कीर्ति, महिमा, सुषमा, ज्ञान, ध्यान, चित्र, नृत्य, काव्य, गान आदि का—आकार ग्रहण कर लेती हे। इनमें से कुछ के नाम हैं, कुछ के लिए अभी शब्द नहीं मिले। उसके बाद 'शांत, शिष्ट, सुख-सम्पन्न नवीन मनुष्य-जाति का दृश्य' आता है। आगे यमुना और जार्ज, रोज और मुहम्मद के माध्यम से धर्म-निरपेक्ष बंधुत्व, वेदव्रत, राबर्ट, सुलेमान आदि के माध्यम से बौद्धिकों के बीच नव-मानवता के सिद्धांत का स्वीकरण, मेरिस, नीलरतन आदि के बीच शिक्षा के क्षेत्र में तथा कवियों, कलाकारों, चित्रकारों आदि के मध्य कला के क्षेत्र में नव-जीवन के आधारों का अवतरण दिखाया गया है। क्रमशः समस्त जीवन में नयी चेतना का प्रसार दिखाया गया है। अंक के अंत में ज्योत्स्ना का स्वर्ग को वापस जाना दिखाया गया है।

चौथे अंक में छाया और उल्लू देखते हैं कि विश्व-संस्कृति, मानव-प्रेम आदि का प्रचार हो जाने के कारण, पिछले युग की समस्त स्थूल प्रवृत्तियां अपने आदि निवास तम मे लीन हो रही हैं। लावा पक्षी के द्वारा नव-प्रभात में उषा के आने का संवाद प्राप्त होता है।

पांचवें और अंतिम अंक में उषा स्वर्ग से नवीन प्रकाश लेकर धरती पर आती है। उसके साथ अरुण भी आता है। दोनों नव-जीवन के रूप-रंग, सुख-सौंदर्य की चर्चा करते हैं। अंत में लहरों और हवा के गीतों से नाटक समाप्ति पर आता है। समाप्ति एक गीत से ही होती है, जिसमें ओस, फूल, दूब, पल्लव, किरणें आदि मूक भाव से सम्मिलित होते हैं। गीत की समाप्ति के पूर्व ही यवनिका गिरती है।

समस्त नाटक की वस्तु पर यह संक्षिप्त दृष्टि डाल लेने के बाद यह सहज ही समझा जा सकता है कि नाटक में मुख्य दृष्टि नूतन जीवन-दृष्टि के संप्रेषण पर ही रखी गई है। कला, कथा-क्रम, नाट्य-शिल्प आदि सभी यहां दूसरे स्थान पर ही रखे गये है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से नाटक कमजोर है, यह तो बेहिचक कहा जा सकता है, कथा-सूत्र भी बहुत ठीक तरह से निर्वहित नहीं दिखाई देता। पर कला की दृष्टि से यह नाट्य-कृति किसी काव्यकृति-सी लुभावनी लगती है। प्रकृति की विभिन्न शक्तियों तथा पक्षी-कीटादिकों का जैसा गुण व्यंजक मानवीय रूपाकार कवि कल्पित कर सका है वह अत्यत उन्नत कल्पनाशीलता का ही परिचायक है।

परंतु जैसा कि स्पष्ट किया गया है ज्योत्स्ना का मूल या महत्त्व उसके कला शिल्प में नहीं उसकी अभिनव जीवन दृष्टि में है यह तो स्पष्ट ही है कि ज्योत्स्ना

म पंत पहली बार व्यापक मानवीय भूमि पर उतरे हैं। वैषम्यों का समाधान यहां अवैयक्तिक र्न सार्वभौम स्तर पर खोजने का प्रयास है। नाटक में जगह-जगह जाति, धर्म, राष्ट्र पूर्व, पश्चिम आदि की संकीर्णताओं की चर्चा है। जड़वाद, विकासवाद आदि के प्रभाव से तथा अंधविश्वास से सत्य के कुज्झटिकाच्छन्ना हो जाने के कारण मानव जिस विषम, संघर्षपूर्ण, असमंजित, भ्रांत स्थिति में जी रहा है उसका भी निदर्शन है। इन सभी वैषम्यों और संघर्षों का तिरोभाव दिव्य शक्तियों द्वारा वितरित नव-जीवन के स्वप्नों के द्वारा दिखाया गया है, जिनके प्रभाव में संसारी जन यह जान पाते हैं कि सद्वृत्तियों से शासित जीवन कितना उच्चतर और सुंदरतर है। स्वप्न और कल्पना के माध्यम से नव-जीवन वितरित करने से पंत का अभिप्राय यह है कि संसार को उच्च आदर्शों की आवश्यकता है जिनके प्रकाश में वह अपनी वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन कर सके तथा साथ ही जिनके आकर्षण में बंधकर वह नव-निर्माण की प्रेरणा ग्रहण कर सके। इस दृष्टि से ज्योत्स्ना का दर्शन बहुत गहन नहीं है, सीधा मानवीय दर्शन है जिसमें तर्कजाल की अपेक्षा भाव-शक्ति का प्रसार है। अंत में जिस अभिनव सौंदर्य, अभिनव सुख और अभिनव संस्कृति का विकास दिखाया गया है, वह भी कल्पित होने पर भी अत्यंत भाव-ग्राह्य है।

ज्योत्स्ना में विश्व-संस्कृति का उदय दिखाया गया है। इसे हम आत्म-संस्कृति भी कह सकते हैं, क्योंकि विश्व-संस्कृति और आत्म-संस्कृति में यहां कोई अंतर नहीं है। इस आत्म-संस्कृति के माध्यम से समस्त विश्व में व्याप्त वैषम्यों का तिरोभाव और नव-मानवता का उदय दिखाया गया है। यहां पर बाह्य का तिरस्कार या निषेध करके आंतर की स्थापना नहीं की गई है, वरन् आंतर जगत् की पूर्णता द्वारा बहिर्जीवन की पूर्णता का स्वप्न चरितार्थ किया गया है। तीसरे अंक में बहिर्जीवन की मान्यताओं—लोकतन्त्र समाजवाद आदि—का सविस्तार विवेचन भी है। इसलिए 'ज्योत्स्ना' के दर्शन का बहिर्जीवन से विरोध निश्चित रूप से नहीं है। विरोध यदि है, तो बहिर्जीवन को ही एक-मात्र साध्य मानकर उसकी पूर्णता की खोज में आंतर जीवन की अवहेलना करने से। पंत ने यहां आंतर जीवन को बहिर्जीवन के ऊपर स्थापित किया है, क्योंकि युगांतर आत्मा के द्वारों से ही आता है। इस प्रकार इस नाटक में कवि ने युग के विपर्यस्त मानदंडों को उलटकर उनके उचित क्रम में स्थापित किया है। 'ज्योत्स्ना' में बुद्धि और भौतिकता के ऊपर देवत्व-प्रिय मानवता की प्रतिष्ठा है।

ऊपर कहा गया है कि 'ज्योत्स्ना' में आंतर के पुन:संयोजन द्वारा बाह्य के पुन:-संयोजन का स्वप्न है। उससे आगे बढ़कर वैचारिक धरातल पर बाह्य और आंतर का अभेद, सामंजस्य या समायोजन स्थापित करने की प्रवृत्ति पंत के काव्य में बहुत बाद में प्रकट हुई। उसे अपनी रुचि के अनुसार 'ज्योत्स्ना' के काल तक खींच देना ठीक नहीं है। हां, इतना कहा जा सकता है कि इस प्रकार के सामंजस्य का बीज रूप ज्योत्स्ना की सामंजस्यवादी प्रवृत्ति में देखा जा सकता है।

यहां एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्योत्स्ना का लेखक नव-मानवता के स्वप्न को किन्हीं आरोपित सिद्धांतों के आधार पर चरितार्थ नहीं करता। वह सहज मानवीय भावनाओं और प्रवृत्तियों के बीच से ही नव-निर्माण का मार्ग निकालना

चाहता है। अंतिम अंक में उषा कहती है—"मोह को मिटाना ध्येय नहीं है, नाथ ! अनुरक्ति एवं मोह को पहचानना ही ध्येय है।"

संक्षेप में, 'ज्योत्स्ना' व्यापक मानव-जीवन के क्षेत्र में कवि के पदार्पण का प्रारंभ सूचित करती है। इसी प्रवृत्ति का विस्तार आगे की कृतियों में दिखाई देता है। विशेषत 'ग्राम्या' के बाद की कृतियों को ठीक-ठीक कवि के स्वाभाविक विकासक्रम में स्थापित करने के लिए 'ज्योत्स्ना' का सम्यक् अनुशीलन अत्यंत आवश्यक है।

ऊपर छायावाद-आंदोलन और उसके युग की पृष्ठभूमि में पंत की छायावादी कृतियों का परिचय प्राप्त किया गया है। पंत के छायावादी काव्य की संवेदना-भूमियो तथा उसके शिल्प पर आगे विचार होगा, यहां इतना ही कह देना यथेष्ट होगा कि ऊपर जिन रचनाओं पर विचार किया गया है, वे छायावादी काव्य का सम्यक् प्रतिनिधित्व करती हैं। शैश्व जीवन की खोज, एकता का अन्वेषण, व्यक्ति की प्रतिष्ठा, प्रकृति-प्रेम, प्रेम का नव-स्वरूप, वेदना का दर्शन, रहस्यवाद आदि जो भी विशेषताएं छायावाद की कविता में तत्तत् प्रभावों के अंतर्गत तथा कवियों की स्वकीय प्रेरणाओं के आलोक म प्रकट हुई उन सबका प्रकाशन पंत के काव्य में हुआ है, यह ऊपर के संक्षिप्त दिग्दर्शन के प्रकाश में स्पष्ट देखा जा सकता है।

पर इसके साथ ही एक और बात पर हमारा ध्यान जाता है। पंत की ये कृतिया छायावाद का प्रतिनिधित्व करने के बावजूद छायावाद के समस्त काव्य में अपनी अलग पहचान रखती हैं। पंत के काव्य-व्यक्तित्व के संदर्भ में जिन वैशिष्ट्य-प्रतिपादक तत्त्वो की चर्चा हम कर आये हैं वे यहां भी पंत को उनके समकालीनों से अलग करते है। उदाहरणार्थ, पंत में प्रसाद की सी अंतर्मुखता नहीं है। इसके विपरीत वे वास्तवोन्मुख है। दोनों की प्रकृति कविताओं की तुलना करके इस बात को आसानी से समझा जा सकता है। प्रसाद प्रकृति को स्वकीय आवेगों से लपेटे बिना शायद ही कभी छोड़ते है। इसके विपरीत पंत प्रकृति के गोचर सौंदर्य से दृष्टि हटाकर उसमें अपने भावों की छाया देखने का प्रयास शायद ही कभी करते हों। इसी प्रकार पंत निराला की तरह की निर्बंध वृत्ति भी प्रदर्शित नहीं करते। इसके स्थान पर संयम का एक स्वाभाविक गुण उनके काव्य-व्यक्तित्व में इस काल में भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अपनी स्वाभाविक निर्बंधता के कारण निराला जिस प्रकार अत्यंत तेजस्वी और साथ ही अत्यंत मधुर तथा कोमल हो पाते हैं उस प्रकार पंत नहीं। पंत की कोमलता और माधुर्य प्रसिद्ध हैं। पर ध्यान से देखें तो उनकी कोमलता में भी एक संयम (जिसे आभिजात्य कह सकते हैं) का तत्त्व है जो उसे निराला की कोमलता से अलग करता है। तीसरी बात जो पंत को उनके सम-कालीनों से अलग करती है, वह उनकी भिन्न शैली है। यह स्वीकार करना होगा कि कोमलता, गरिमा और आभिजात्य का गुण खड़ी बोली में जिस सीमा तक पंत ने उत्पन्न किया उस सीमा तक और किसी ने नहीं। यह मानने को जी चाहता है कि काव्य की ऐसी भाषा का संधान करने में पंत के सम्मुख ब्रजभाषा की नहीं, बंगभाषा की चुनौती रही होगी। खड़ी बोली हिंदी की प्रकृति में कोमलता और विलास की गुंजाइश ही नही है, इस भ्रम को सबसे समर्थ ढंग से पंत ने तोड़ा।

इन तीन बातों के अतिरिक्त अन्य कई बातों का उल्लेख भी किया जा सकता है—जैसे प्रकृति-प्रेम, आदर्श दृष्टि का स्वरूप इत्यादि, पर इन सभी बातों पर हम आगे विचार करेंगे। यहां एक उल्लेख मात्र करना अलग होगा कि अनेक कारणों से पंत का किंचित् अगंभीर पाठक भी उनकी पंक्तियों को सहज ही पहचान पाता है। यह पहचान उनके छायावादी काव्य में भी उतनी ही स्पष्ट उभरती है।

प्रगतिवाद और पंत

प्रगतिवादी काव्य की पृष्ठभूमि

काल के एक दीर्घ अंतराल के बाद रचनाकारों ने यह महसूस किया कि सर्जना की गभीरतम उपलब्धि सामाजिक चेतना के संदर्भ में ही मूल्यांकित हो सकती है। छायावाद का अंतिम दशक कथ्य, शिल्प एवं संवेदना के विविध स्तरों पर इस नई पहचान से साक्षात्कार करने के लिए न केवल उत्सुक है अपितु बेचैन भी। यह बेचैनी रचना-प्रक्रिया में एक निश्चित आकार ग्रहण करती है तथा अपनी अर्थपूर्ण परिणति के लिए सचेष्ट दिखलायी पड़ती है। वस्तुतः प्रगतिवाद का एक निश्चित दृष्टिकोण धीरे-धीरे अपने छायावादी स्वरूप में ही विकसित होता रहा। संभव है, इसकी स्थिति का आभास उस रचनाधारा में बहुत ज्यादा स्पष्ट न हो, फिर भी उसका बीज-रूप काफी कुछ पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों में ही स्थिर होता रहा। सन् १९३० के आसपास भारतवर्ष में नवीन सामाजिक चेतना का अभ्युदय होता है, जिसका निर्णायक प्रभाव परवर्ती हिंदी काव्य पर अनेक आयामों में प्रकट हुआ। हालांकि काव्य का मूल स्वरूप एवं उसकी अंदरूनी सघटना करीब-करीब अपरिवर्तित ही रही फिरभी संवेदनाकी दिशा में एकस्पष्ट विभाजन परिलक्षित होता है। सन् १९३६ तक हिंदी कविता ने अपनी दिशा का निर्धारण करीब-करीब पूरा कर लिया। सर्वथा नवीन लोकोन्मुखी जीवन-दृष्टि, भावबोध तथा प्रशस्त रचना-क्षेत्र को यथार्थवादी स्पर्श से अनुप्राणित करने का नितांत सहानुभूतिपूर्ण संकल्प ही प्रगतिवाद के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। छायावाद की काव्य-दृष्टि जीवन के व्यापक संदर्भों को अपने अंदर समाहित न कर सकी। उसका संपूर्ण रचना-संसार एक नितांत वायवीय एवं वैयक्तिक बोध से ग्रस्त होता गया। फलतः उसकी मूल्यगत सार्थकता अदर ही अंदर नष्ट होती रही। छायावादी काव्य प्रवृत्ति युगीन चेतना को वहन करने में असमर्थ सिद्ध हुई। उसकी अंतर्मुखी काव्य-प्रवृत्ति बहिर्गत वस्तुवादी यथार्थको रचना-स्तर पर उद्घाटित करने में भी अक्षम सिद्ध हुई। सूक्ष्मता के प्रति इस अगाध आकर्षण

के कारण समष्टिगत सत्यों की नितांत उपेक्षा हुई, फलतः उसकी ग्राह्यता दिन-ब-दिन कम होती गयी। छायावाद की इन असफलताओं को कारण रूप न मानकर भी इतना तो निश्चित रूप से प्रतिपादित किया जा सकता है कि इनका प्रगतिवादी काव्यधारा के निर्माण में काफी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। व्यक्तिगत धरातल पर जिस निराशा को कवियों ने झेला उसे बौद्धिक तटस्थता से उपस्थित करके वे नितांत कुंठा की स्थिति मे उबर आये। अपने निजी सुख-दुःख से ऊपर उठकर समाज के व्यापक सुख-दुःख की भाव-भूमि में प्रवेश करने लगे। पंत का प्रगतिवादी काव्य और निराला का प्रगतिशील काव्य (नये पत्ते, बेल आदि) इसका प्रमाण हैं। एक बात जो इस क्षेत्र में आड़े आती थी वह थी सूक्ष्मता के प्रति आग्रह। छायावादी कवि सूक्ष्मान्वेषी रहे हैं, इसीलिए तथाकथित सामाजिक यथार्थ के क्षेत्र 'क्षुधा', 'काम' के साम्यवादी साक्षात्कार से ही वे अपने अंदर प्रगतिशीलता नहीं भर सके बल्कि जीवन के इस अतिस्थूल धरातल के द्वंद्वों के परिशमन में अपनी संवेदनाजन्य आंतरिक दृष्टि का चैतन्य भी उन्होंने मिलाया। इस अर्थ में उनकी प्रगतिशीलता केवल बाह्यतः सक्रिय न होकर आंतरिक रूप से सामाजिक दायित्व का वहन करती हुई, उसकी सामूहिक वृत्तियों के परिमार्जन की भी आकांक्षी रही है। उन्हें ऐसा लगा है कि बिना समूहगत आंतरिक संस्कार के (इसके लिए भी सूक्ष्म चेतना का स्पर्श तो आवश्यक होगा ही) बाहरी एकता, भ्रातृत्व आदि की स्थापना अंततः निर्मूल सिद्ध हो सकती है—यह एक ऐसा 'इनट्यूशन' था जो आज के साम्यवादी कहे जाने वाले राष्ट्रों में पर्याप्त रूप से प्रमाणित हो चुका है।

हिंदी कविता में प्रगतिवाद को प्रमुखतः दो अर्थों में लिया गया। एक, साहित्य की अविच्छिन्न, शाश्वत प्रगतिशील चेतना के उन्नायक के रूप में, दूसरा, मार्क्सवादी साहित्य एवं समाज सिद्धांतों के प्रचारक के रूप में। विद्वानों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो प्रगतिशील एवं प्रगतिवादी साहित्य में स्पष्ट विभाजक रेखा खींचने के पक्ष में है। वस्तुतः इस तरह की विभाजक रेखा मूल्य की दृष्टि से कोई खास मतलब नहीं रखती। प्रगतिवादी काव्यदृष्टि अपनी घोषित घोषणाओं के किस हद तक अनुकूल है, इसी कसौटी पर उसकी अर्थवत्ता, सार्थकता एवं प्रासंगिकता की जांच समीचीन होगी। नाम के आधार, काव्य-कोटियों के निर्धारण की यह पद्धति बहुधा पूर्वाग्रहरहित दृष्टिकोण के निर्माण में बाधक सिद्ध होती है।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि किन विशिष्ट परिस्थितियों के बीच मे प्रगतिवाद काव्य ने अपना स्वरूप निश्चित किया। विद्वानों का एक वर्ग इस निश्चित राय का है कि प्रगतिवाद का मूल स्रोत विदेशी है। वस्तुतः यह आरोप उतना ही निराधार है जितना कि यह कहना कि छायावाद १९वीं शताब्दी के रोमैंटिक कवियों की परपरा से विकसित हुआ। यह सही है कि प्रगतिवाद हिंदी साहित्य के स्वाभाविक एव ऐतिहासिक कारणों से उद्भूत हुआ, किंतु साथ ही साथ इस तथ्य से भी इनकार नही किया जा सकता कि राजनैतिक एवं आर्थिक आग्रहों से ग्रस्त होने के परिणामस्वरूप उसका प्रकृत स्वरूप तथा बहुत कुछ पृष्ठभूमि में चला गया

प्रगतिवादी काव्य की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि

प्रगतिवादी युग में भारतीय समाज दीर्घकालीन परतंत्रता के कारण विघटन, शोषण एवं अन्याय के विभिन्न चक्रों के बीच अपनी अस्तित्व-रक्षा के निमित्त प्रयासशील दृष्टिगत होता है। अनुभव के एक स्तर पर वह अन्याय, शोषण एवं दमन के दंश का झेल रहा था तो दूसरे स्तर पर भारतीय जनता की राष्ट्रीय आत्मचेतना के जागरण, राष्ट्रोदय के श्रीगणेश, भारतीय समाज के समस्त नवीकरण और भारत में आधुनिक विज्ञान, संस्कृति तथा अग्रगामी सामाजिक विचार के प्रसार से उसका आत्मीय संबंध भी स्थापित हो रहा था। सामंतवाद की समाप्ति के पश्चात् हिंदुस्तान में पूंजीवादी प्रवृत्तियों का जोरों से प्रचार होता है। नितांत वैयक्तिक अनुभूतियों को छायावाद में जो प्रश्रय मिला उसका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यही पूंजीवादी संस्कार था। हालांकि यह कहना ठीक नहीं है कि पूंजीवादी संस्कार पूरी तरह से बद्धमूल हो चुके थे किंतु फिर भी इतना तो निर्भ्रांत रूप से कहा जा सकता है कि इसका एक सुनिश्चित स्वरूप स्पष्ट हो गया था।

अंग्रेज भारत में शुद्ध व्यवसायी के रूप में आये थे। यंत्र युग के आविष्कार के अनतर भी ब्रिटिश सरकार ने भारत को एक अच्छे बाजार के रूप में मानकर इसका उद्योगीकरण नहीं किया। इस प्रकार देश की संपत्ति विदेश में प्रवाहित होने लगी। धीरे-धीरे अंग्रेजी सरकार ने यह महसूस किया कि भारत में उद्योगीकरण का विकास करने से उनके साम्राज्यवादी हितों को काफी बढ़ावा मिलेगा। भारतीय प्राकृतिक साधनों का विकास उनकी इसी नीति के परिणाम के रूप में सामने आया किंतु उद्योगीकरण की दिशा में यह ध्यान रक्खा गया कि ऐसे ही उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय जहां अंग्रेजी साम्राज्य की पूंजी लगी है। ऊपर से देखने पर तो यह औद्योगिक उन्नति की एक संभावनापूर्ण दिशा प्रतीत होती है किंतु इससे शोषण के अपेक्षाकृत ज्यादा पैने हथियारों की सृष्टि हुई। बेरोजगारी, महंगाई, पूंजी पर एकाधिकार इत्यादि प्रवृत्तियों के कारण भारतीय अर्थतंत्र पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो गया।

भारतीय सामाजिक जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष धर्म की मध्ययुगीन कट्टरता तथा उसका नितांत रूढ़िवादी स्वरूप भी इस युग तक आते-आते परिवर्तन की प्रक्रिया से सर्वथा अछूता नहीं रहा। २०वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही धर्म एवं बाह्याचार का यह स्वरूप काफी कुछ बदल गया था, किंतु बद्धमूल संस्कार से विमुक्ति पूर्णतया संभव नहीं हो सकी। फिर भी आलोच्य युग तक आते-आते इतनी समझ तो विकसित हो ही चुकी थी कि धर्म अब मनुष्य की नियति का निर्णायक नहीं हो सकता। बहुत सारी बातें जिनका विश्लेषण मनुष्य से संभव नहीं हो पाया था, उसे एक अतीव रहस्य के आवरण में स्थित कर देने की प्रवृत्ति का इस युग तक आते-आते क्रमशः तिरोभाव परिलक्षित होता है। आध्यात्मिक अनुभूति के स्थान पर भौतिकता की यथार्थानुभूति की प्रवृत्ति प्रखर होती गई।

राजनीतिक पृष्ठभूमि : सन् '३० तक आते-आते हिंदुस्तान की राष्ट्रीय संस्था

कांग्रेस में वामपक्षी दल कायम हो गया था, स्वयं कांग्रेस के प्रस्तावों में हिंदुस्तान के श्रमजीवी जनसमूह की चर्चा होने लगी थी। किसान-मजदूर आंदोलन में काफी ताकत आ गई थी। तत्कालीन साहित्य में भी इस राजनीतिक जागरण की छाया दृष्टिगोचर होने लगी थी। इस काल में पूंजीवाद अधिक विकसित हुआ, साम्राज्यवादी शासकों एव राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का परस्पर-विरोध प्रबल हुआ। किंतु सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण वही प्रवृत्ति थी जिसका समानांतर विकास हुआ अर्थात् मार्क्सवादी विचारधारा। इस काल में एक सामूहिक चेतना का विकास होता है जिसका मूल बिंदु राजनीति मे ही अवस्थित है।

१९१७ की रूसी क्रांति का प्रभाव भारतीय राजनीति पर निश्चित ही काफी ज्यादा पड़ा। वर्ग-संघर्ष को आर्थिक ढांचे की मूल भित्ति मानकर, समाज-व्यवस्था की मूल भित्ति, संस्कृति की मूल भित्ति, शासन अवस्था की मूल भित्ति तथा अंततः साहित्य की मूल भित्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह काफी स्पष्ट है। इस दृष्टि से विचार करने पर इतना स्पष्ट हो जाता है कि इस काल तक आते-आते राजनीति का विषय भी काफी कुछ बदल गया। उसकी दृष्टि महलों की ओर न केंद्रित होकर झोंपड़ियो मे सिसकती हुई असंख्य-असंख्य भारतीय आत्माओं पर केंद्रित हुई। निश्चय ही तत्कालीन भारतीय राजनीति की विशेषताओं के संदर्भ में ही प्रगतिवादी साहित्य का स्वरूप निर्धारित होता है।

सन् '३० के असफल आंदोलन ने देश को और भी विपन्न आधारहीन बना दिया था। मध्यवर्ग का सामाजिक आधार ही खो गया और उसकी चेतना विक्षिप्त-सी हो गई। रूस की सामाजिक विजय एवं विधान देश की भूखी-प्यासी जनता के लिए आकर्षण का कारण हो रहे थे। इन सबका फल यह हुआ कि व्यक्ति एवं समाज का संघर्ष तीव्रतम स्थिति में आ पहुंचा जो पूंजीवादी योजना का सहज स्वरूप है। ऐसी भयानक परिस्थिति मे निम्न-मध्यवर्ग की चेतना प्रबुद्ध हुई, अधिकारों के प्रति सजगता की मात्रा काफी बढ गई। इस स्थिति में हमारा समाज ऐतिहासिक विकास-क्रम के अनुसार समाजवादी विचारधारा की तरफ अपेक्षाकृत अधिक झुका।

साहित्यिक पृष्ठभूमि : प्रगतिवादी काव्यधारा की साहित्यिक पृष्ठभूमि की खोज हमें छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों की तरफ ले जाती है। छायावादी काव्य जहा वस्तुमुखी धरातल पर आता है और नयी समाज-व्यवस्था, नवीन बुद्धिवादी आदर्शों और रूढ़ियों के विध्वंस में समष्टि के कल्याण में कार्य करता है, वहां वह समष्टिमूलक हो गया है, परंतु इसके विपरीत कवियों ने जब व्यक्तिगत अनुभूतियों को रचनात्मक स्तर पर उतारने का प्रयास किया है, समाज के कठोर वैषम्य के प्रति वितृष्णा का अनुभव किया है, अतृप्तियों का निरूपण तथा कल्पनात्मक जगत् की भूमिका को प्रस्तुत किया है तब वे स्पष्टतः व्यष्टिमूलक प्रवृत्तियों का ही उद्घाटन करते हैं। छायावादियों की मूल चेतना व्यक्तिवादी ही है। कहीं-कहीं बाह्य जगत् एवं आंतरिक जगत् मे सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की गई है। छायावादी काव्य का यह एक वैशिष्ट्य रहा है कि वह व्यक्तिवाद की मूल धारा मे संपृक्त रहकर भी काव्य में मनुष्य

को, उसकी संपूर्ण चेतना के साथ प्रतिष्ठित करने के लिए संकल्पवत् है।

यदि छायावादी काव्य का सम्यक् मूल्यांकन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि छायावाद के भावजगत् एवं विषयवस्तु का क्रमशः विस्तार होता गया। इस विस्तार के कारण ही छायावाद की भावक्षमता, विचारक्षमता एवं भाषाक्षमता में एक अपूर्व प्रौढ़ता दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः छायावाद की इसी विचार एवं दृष्टि-प्रौढ़ता के कारण आगे प्रगतिवादी काव्य का विकास संभव हो सका। छायावाद अपने परवर्ती विकास में बहुत सारी निरर्थक भंगिमाओं को छांटता गया, यह परिष्कार काव्यशैली की प्रौढ़ता में तो स्पष्ट हुआ ही, किंतु साथ ही साथ विचार के स्तर पर यथार्थवादी रुझान की भी छाया काफी कुछ स्पष्ट हुई। छायावाद के अंतिम दशक में काव्य का विकास शैली की ही दिशा में न होकर अर्थभूमियों के प्रसार की दिशा में भी हुआ। छायावादी कवियों की उत्तरकालीन रचनाओं में विषय से लेकर अभिव्यंजना तक के क्षेत्र में परिवर्तन की आहट मिलने लगी थी।

छायावादी कवि का रचनालोक अतिशय वैयक्तिक एवं कभी-कभी नितांत कृत्रिम अनुभूतियों से भरा रहने लगा, किंतु इतना तो निर्भ्रांत है कि छायावादी कवियों की सामाजिकता की जो परिणति दर्शन के रूप में हुई है, उसका काव्य की दृष्टि से तो अत्यंत महत्त्व है किंतु युगीन यथार्थ से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होने की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है। निश्चय ही छायावाद की अपनी सीमाएं थीं जिनका अतिक्रमण इतना आसान नहीं था।

छायावादी कवि स्वतंत्रता के प्रति बहुत सचेत था। छायावाद का प्रारंभ ही अदम्य स्वतंत्रता की इच्छा के परिणामस्वरूप हुआ था। विद्रोह के प्रति छायावादी कवियों में एक विचित्र उन्मादग्रस्त ललक परिलक्षित होती है। ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि सामाजिक यथार्थ के निकट साक्षात्कार के अभाव में कविता की अर्थवत्ता नष्ट होने लगती है तथा समकालीन जीवन की सम्यक् व्याख्या का दायित्व पूरा नहीं हो पाता। कुछ छायावादी कवियों ने (पंत, निराला) सामाजिक यथार्थवाद के इस दृष्टिकोण को अपनाकर आगामी कविता की संभावनाओं की सूचना दी थी।

शनैः-शनैः निम्न एवं मध्यवर्ग की राजनीतिक चेतना एवं आर्थिक दुरवस्था से प्रोत्साहित आंदोलन शीघ्र ही साहित्य में महत्त्वपूर्ण हो गया। छायावादी आत्माभिव्यंजना के स्थान पर सामाजिक यथार्थ ने स्वरूप ग्रहण किया। सौंदर्यानुभूति का केंद्र अब सामाजिक यथार्थ होता जा रहा था। छायावाद युग के अंतिम चरण में इस यथार्थ की अनुभूति का महत्त्व बढ़ रहा था। प्रेमचंद का साहित्य, प्रसाद के उपन्यास समाज के निम्नवर्ग का शोषण, अत्याचार, धार्मिक रूढ़िवाद एवं तद्जन्य निम्नवर्ग की चेतना को रचना के स्तर पर उद्घाटित करने के लिए प्रयासशील थे। पंत भी अपने काव्य में इन प्रवृत्तियों को प्रश्रय दे रहे थे। छायावादी कवियों का मानववाद अब वास्तविक यथार्थवाद से समन्वित हो रहा था। हालांकि उनकी मूल दृष्टि काफी धीरे-धीरे इसे आत्मसात कर रही थी। इस काल में गांधी, मार्क्स तथा फ्रायड की विचार-पद्धतियों का प्रभाव स्पष्टतः ही दिखलाई पड़ता है।

छायावाद ज्यादा दिनों तक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सका। पंत ने बड़ी ही सतर्क एवं सुचिंतित दृष्टिकोण से इस समस्या पर विचार किया है। छायावाद से इतने दीर्घकाल तक सम्बद्ध रहने के बावजूद पंत जब उन कारणों की खोज करते हैं जिनकी वजह से छायावादी प्रवृत्तियों को आघात पहुंचा तो उनकी भूमिका पूर्वाग्रहरहित, निष्पक्ष एवं तत्त्वदर्शी आलोचक की हो जाती है। पंत ने अपने विचार-क्रम में उन बहुत सारी ऐतिहासिक घटनाओं के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को भी उद्‌घाटित किया है जिनकी व्याप्ति छायावादी काव्य में सम्भव न हो सकी थी। पंत ने इन प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए बहुत सारे इतर संदर्भों की भी चर्चा की है जिनका प्रभाव काफी गंभीर रूप में पंत की रचनात्मकता पर परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक भौतिकवादी विचारधारा की तरफ पंत का झुकाव वस्तुतः पंत की समष्टिगत चेतना का विकास है। प्रशस्त रचना-क्षेत्र की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित होकर ही पंत जीवन के कठोर सत्यों की ओर अभिमुख हुए। पंत का यह दृष्टिकोण आकस्मिक नहीं था। अनेक संघातों के बीच रचना-प्रक्रिया का निर्धारण अनिवार्यता के रूप में उपस्थित हुआ। इस युगीन अनिवार्यता से पंत कहीं भी विचलित नहीं हुए हैं। पंत ने संयत होकर, बिना किसी आग्रह या मोह के जगह-जगह स्पष्ट किया है।

इस समीक्षा से इतना तो स्पष्ट ही हो गया कि पंत का काव्य-व्यक्तित्व जीवंतता और गतिशील शक्तिमत्ता के स्वीकार से जुड़ा हुआ है। पंत कहीं भी अपनी स्वाभाविक एवं सचेत पकड़ से च्युत नहीं होते। उनका काव्य-व्यक्तित्व उन सारे परिवर्तनों को तटस्थ द्रष्टा के रूप में घटित होने के लिए छोड़ देता है, किंतु उनकी आंतरिक अनुशासिका शक्ति इन सारे घटनाक्रमों को एक निश्चित क्रम में, अपने अनुसार व्यवस्थित करती है एवं रचना के स्तर को उद्‌घाटित करती है। पंत की काव्यानुभूति का यह वैशिष्ट्य परवर्ती काल में भी विद्यमान रहता है। इसे हम पंत का सचेत इतिहास-बोध भी कह सकते हैं।

प्रगतिवाद का स्वरूप

इस विवेचन के पश्चात् प्रगतिवाद के स्वरूप, उसका आदर्श, उसकी विशेषताएं, उपलब्धियों, सीमाओं तथा उसमें पंत-दृष्टि की समीक्षा समीचीन होगी।

प्रगतिवाद हिंदी कविता का स्वाभाविक विकास है। प्रगतिवादी काव्यधारा का मूल विचार-तत्त्व तत्कालीन भारतीय जीवन में व्याप्त विधि-परिवर्तनों एवं उसके दूरगामी प्रभावों के विश्लेषण में ही प्राप्त हो सकता है। प्रगतिवाद हिंदी काव्यधारा का ऐतिहासिक एवं स्वाभाविक विकास तो है ही, किंतु इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि जिस प्रकार छायावाद इस सदी के सांस्कृतिक पुनर्जागरण की उपज था तो प्रगतिवाद राजनीतिक जागरण का। आर्थिक मुक्ति के साथ-साथ बौद्धिक उन्नति के लिए संघर्ष करने को प्रस्तुत समाज की सामूहिक चेतना के प्रतीक रूप में प्रगतिवाद की प्रतिष्ठा हुई। प्रगतिवाद के विवेचन में छायावाद की तरह विद्वानों के दो वर्ग हो गए हैं। एक, शाश्वत प्रगतिशील चेतना के उन्नायक के रूप में, दूसरे, एक विशेष राजनीतिक

मतवाद के आग्रह के रूप में।

कुछ विचारकों ने यह मत व्यक्त किया है कि 'प्रगतिशील' की यह अवधारणा प्रगति के क्षेत्र को विचार की स्वतंत्र विकास-परिधि से हटाकर व्यवस्था के सक्रिय वृत्त में ला देती है और मात्र व्यवस्था के आधार पर विचार को अवलंबित सिद्ध कर, प्रगति के अर्थ को सीमित कर, 'प्रगतिशीलता' बना देती है। सामाजिकता के प्रति एक अपूर्व आग्रह प्रगतिवादी काव्य में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। प्रगतिशील विचारकों का ऐसा मत है कि समाज में ही मनुष्य का इति-अथ है। सामाजिकता का विरोध करनेवाली विचारधारायें व्यक्ति को एकांगी बनाने का प्रयास करती हैं, इसलिए उसकी प्रामाणिकता पर सहज ही संदेह किया जा सकता है।

बहुत सारे विचारकों का आग्रह रहा है कि प्रगतिवाद किसी विशिष्ट 'वाद' से संकुचित नहीं है। वस्तुतः प्रगतिवाद की मूल चेतना समष्टिगत सत्यों का आधार लेकर चलती है, समष्टिगत मूल्य उसे मूलतः मार्क्स के दर्शन से ही प्राप्त होते हैं, पर मानवतावादी प्रवृत्ति उसे प्रायः संकुचित एवं संप्रदायवादी दुराग्रहों से बचा ले जाती है। जहां इस अभिवृत्ति का अभाव रहता है वहां काव्य-तत्त्व क्रमशः गौण होता गया है।

प्रगतिवाद ने दर्शन के पक्ष को मार्क्सवाद से ग्रहण किया, इसके अनेक कारण थे। जिस धरातल पर प्रगतिवादी साहित्य अपने काव्य-संदर्भ की खोज कर रहा था उसका बहुत ही सशक्त आधार मार्क्सवादी विचारधारा में सहज ही उपलब्ध था। मार्क्सवाद एक गतिशील जीवन-दर्शन है, साहित्य के मूल्यांकन के लिए उसके पास एक ही कसौटी है—'जीवन'। जो साहित्य जीवन (सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को) की व्याख्या करने में अशक्य है, उसकी उपादेयता निश्चय ही संदेहास्पद है। मार्क्स ने मनुष्य को मात्र यंत्र के रूप में ही नहीं स्वीकार किया है। वह मनुष्य में चेतना की एक विशिष्ट स्थिति को स्वीकार करता है। उसने इस दृष्टि का खंडन किया कि मनुष्य शुद्ध रूप से वातावरण का परिणाम है। उसका विश्वास था कि वह वातावरण को अपने अनुरूप बदल भी सकता है। साहित्य जो कि मनुष्य की प्रतिभा का, जो उसे सामाजिक दाय के रूप में प्राप्त होता है, विस्फोट है अतः स्वभावतः साहित्य समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया का अग्रवाहक हो सकता है। प्रगतिवादी साहित्यकार को इस विचार से निश्चय ही बहुत बल प्राप्त हुआ।

मार्क्स तथा ऐंजिल्स मूलतः दार्शनिक थे, किंतु उन्होंने काव्य तथा कला के संबंध में भी स्वतंत्र रूप से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उनके अनुसार, समाज का विकास दो धरातलों पर होता है—आर्थिक और वैचारिक। वैचारिक धरातल स्वतः अपने-आप में पूर्ण नहीं है। अतः आर्थिक धरातल मूल रूप में कार्य करता है और उस पर भवन रूप में वैचारिक धरातल उपस्थित होता है। इस विचारधारा के अंतर्गत नैतिकता, सदाचार और धर्म सभी सामाजिक परिस्थितियों की उपज हैं।

मार्क्सवादी समीक्षा अपने दार्शनिक धरातल पर भौतिकवादी है अर्थात् वह भौतिक सृष्टि को प्राथमिकता देती है और चेतना को उसका अनुवर्ती मानती है। वह पदार्थ की निरंतर गतिशील प्रकृति और उसके भीतर होनेवाले गुणात्मक परिवर्तन को

स्वीकार करता है इस नाते वह मनुष्य की चेतना या मन की सूक्ष्मतम वृत्तियों को भी अपने भीतर समेटता है। साहित्यिक धरातल पर प्रगतिवादी विचारधारा का पहला विरोध रूपवाद से होता है, जो कि भाववादी दर्शन का ही साहित्यिक प्रतिरूप है। रूपवाद सौंदर्य की स्थिति वस्तु में न मानकर कल्पना या भाव में मानता है। इसलिए बहुधा देखा जाता है कि रूपवादी काव्यप्रवृत्तियां अत्यंत जटिल, दुर्बोध भाव-चित्रों और प्रतीकों का रूप लेती हैं, क्योंकि उनके सामने कोई वास्तविक आधार नहीं होता जिसे रूपायित करना उन्हें इष्ट हो।

प्रगतिवादी काव्य मार्क्सीय-दर्शन को ही आधार मानकर सौंदर्य की स्थिति वस्तु म मानता है। सौंदर्य की, किसी भी गुण-विशेष की मूल स्थिति वस्तु में होती है न कि उसकी कल्पना में।

वस्तुतः प्रगतिवाद पर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अलावा मनोविश्लेषण, विकासवाद, मानवतावाद, आधुनिक विज्ञानवाद, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, उन्मुक्ततावाद और पाश्चात्य लेखकों का भी प्रभाव पड़ा। विभिन्न रचना-प्रवृत्तियों की समकालीन स्थितियों ने जहां एक तरफ उसे मार्क्सवादी समीक्षादर्शों से विचलित किया वहीं दूसरी तरफ उसकी ग्रहणशीलता एवं उदात्तता को भी परिपुष्ट किया। साहित्य में जीवन की तथ्यपरक अनुकृति प्रस्तुत करना प्रगतिशील साहित्य का अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकता, इस विचार का समर्थन स्वयं प्रगतिशील आलोचक भी करते हैं।

पंत की सौंदर्यवादी दृष्टि आलोच्यकाल तक आते-आते एक विशेष परिवर्तन का आभास देती है। उसकी अपार ग्राह्यता के कारण काव्य का स्वरूप भी काफी हद तक प्रभावित हुआ, किंतु पंत के काव्य-व्यक्तित्व की सम्पूर्ण चेतना इस बिन्दु पर भी खंडित नहीं होती। पंत का लोकोन्मुखी दृष्टिकोण 'परिवर्तन' शीर्षक कविता मे ही काफी उभरकर सामने आया है। निश्चय ही उन पर मार्क्स के विचारों का प्रभाव पड़ा, किंतु इसका कारण पंत का सतत् जागरूक कवि-व्यक्तित्व है जो प्रायः अपनी अपार विशादता को ज्ञापित करता है किंतु फिर भी कवि अपनी नियंत्रण वल्गा को कभी ढीला नहीं करता। पंत हमेशा अपनी रचनात्मक भावभूमि के प्रति सचेत रहे हैं, अन्वेषी का भाव ही उनके काव्य की प्राणशक्ति है।

प्रायः पंत के प्रगतिवादी काव्य-व्यक्तित्व को उनके समग्र एवं अखंड काव्य-व्यक्तित्व से पृथक् कर देखने की जो मूल्यांकन परंपरा है उससे उचित न्याय की अपेक्षा नहीं की जा सकती। पंत की प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रति और अनुषंगतः मार्क्सवादी विचार-पद्धति के प्रति अपनी कुछ निश्चित सीमाएं हैं जिनकी अवहेलना न उन्होंने की ह और न उनकी जैसी प्रखर काव्य-प्रतिभा से इसकी अपेक्षा ही की जानी चाहिए। कुछ आलोचकों को पंत के गांधीवाद एवं मार्क्सवाद, भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद आदि मे जो शाश्वत विरोध परिलक्षित होता है वह वस्तुतः कवि के संपूर्ण काव्य-व्यक्तित्व को मूल्यांकन की परिधि में न ले पाने के कारण ही है। पंत मार्क्सवाद के प्रति बौद्धिक ढग से आकर्षित नहीं हुए, वरन् संवेदनात्मक मार्ग से चलकर अर्थात् भावानुभूतियो द्वारा आकर्षित हुए। 'रूपाभ' में पंत का सम्पादकीय बहुत महत्त्वपूर्ण है। पंत का काव्य-

विषयक दृष्टिकोण परिवर्तन की जिस प्रक्रिया से गुजर रहा था, उसका काफी आभास इसमें मिल जाता है, "इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा-आकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आंदोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।" इसके पीछे उनकी वही अन्वेषी प्रकृति क्रियाशील है, नयी भावभूमियों की पहचान की तीव्र लालसा तथा काव्यरूप में उसे समाविष्ट करने की नितांत सहानुभूतिशील इच्छा।

पंत किसी भी एकांगी विचारधारा के प्रति अपनी पक्षधरता स्थिर नहीं करना चाहते। 'युगवाणी' एवं 'ग्राम्या' में उन्होंने मार्क्सवाद का स्वागत करते हुए उसे 'गांधीवाद' से समन्वय की आवश्यकता बताई थी, उसी प्रकार 'आधुनिक कवि भाग २' की भूमिका में वे ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत को उपयोगी मानते हुए भी अपूर्ण मानते हैं, विराट् लोक-कल्याण की दृष्टि से यह आवश्यक समझते हैं कि उसका भारतीय अध्यात्म के साथ समन्वय किया जाय। लेकिन इस समन्वय की आवश्यकता पर जोर देते हुए भी पंत की दृष्टि भविष्य पर ही टिकी थी, सामाजिक कर्तव्य से बचने या भाग जाने की किसी ओछी प्रवृत्ति की आड़ के लिए उन्होंने समन्वय का यह नारा नहीं दिया था, वरन् वे आध्यात्मिक विकास का ध्यान इसी कारण रखते थे कि वे वर्तमान मृतप्राय समाज के संस्कारों के भूतों की घृणास्पद वस्तुस्थिति से अत्यंत विकल थे, प्रगति के लिए आकुल थे। उन्होंने मार्क्सवाद से आध्यात्मिक दर्शन के समन्वय की बात कहकर सामाजिक प्रगति की आवश्यकता से मुंह नहीं मोड़ा था, वरन् वे सामाजिक जीवन के उच्चतर सांस्कृतिक विकास के लिए ही निरंतर आध्यात्मिक विकास पर जोर देते रहे। निरे जड़वाद और यंत्रवाद को ही कहीं हम जीवन की इतिश्री न समझ बैठें, भौतिक सुख एवं वैभव में मानवीय संबंधों की सहज उष्णता को कायम रखने के लिए ही उन्होंने आध्यात्मिक पक्ष पर यथेष्ट बल दिया है।

पंत ने 'आधुनिक कवि भाग २' की भूमिका में स्पष्ट किया है कि वे साहित्य में उपयोगितावाद को ही प्रमुख स्थान देते हैं। प्रगतिशील उपयोगितावादी भी होगा, ऐसा पंत सोचते हैं। उनका स्पष्ट अभिमत है कि प्रगतिवाद उपयोगितावाद का ही दूसरा नाम है। वैसे सभी युगों का लक्ष्य सदैव प्रगति ही की ओर रहा है, पर आधुनिक प्रगतिवाद ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जनसमाज की सामूहिक प्रगति के सिद्धांत का पक्ष-पाती है।

'युगवाणी' की भूमिका में भी वे स्पष्ट करते हैं, "···मैंने मार्क्सवाद के लोक-संगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनों का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया है।···पदार्थ (मैटर) तथा चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारों की तरह माना है, जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एवं विकसित होता है।"

मार्क्स के लिए पंत के मन में एक सहज आग्रह है, किंतु उसके भूतदर्शन की व्याख्या में पंत का अपना दृष्टिकोण है। पंत का मार्क्स के दर्शन पक्ष से स्पष्ट विरोध है, किंतु जैसा कि पहले कहा गया है उन्होंने उसके लोक-संगठन रूप को पूरी आस्था के साथ स्वीकार किया है। 'उत्तरा' की भूमिका में पंत का स्पष्ट कथन है, "मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन पक्ष में नहीं, उसके वैज्ञानिक (लोकतंत्र के रूप में मूर्त) आदर्शवाद में है, जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है, किंतु उसे वर्ग-क्रांति का रूप देना अनिवार्य नहीं है। वर्ग-युद्ध का पहलू फासिज्म की तरह ही निकट भविष्य में पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी युग की प्रतिक्रिया के रूप में विकृत एवं विदीर्ण हो जाएगा।" उत्तरा की ही भूमिका में पंत यह स्वीकार करते हैं, "मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक समतल सिद्धांत की तरह स्वीकार कर चुका हूं, किंतु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्त-क्रांति और वर्ग-युद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएं मानता हूं।" सत्य-अहिंसा के सिद्धांत को मैं अंत:संगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादन मानता हू।" पंत का यह कथन भी उनके उस पूरे 'एप्रोच' को उजागर करता है जो उनके काव्य-प्रणयन का अंतिम संकल्प है। इसी बिंदु (सत्य-अहिंसा) पर उन पर गांधी का भी प्रभाव परिलक्षित होता है किंतु भारतीय अध्यात्म की परंपरा से उन्हें हमेशा बल प्राप्त होता रहा है। गांधी ने सांसारिक मूल्यों की तुलना में चरम आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की। कवि पंत की मानसिकता क्रांति के उस रूप को नहीं स्वीकार कर पाती जिसकी अंतिम परिणति रक्तपात में होती हो, इसीलिए पंत गांधी के प्रति आग्रहशील हैं। पंत जिस परिवर्तन की कामना करते हैं उसमें मनुष्य मात्र के कल्याण की कामना सन्निहित है। इसीलिए उन्होंने गांधी की कल्याणकारी भावधारा तथा मार्क्स की क्रांतिकारी भावधारा का अपूर्व समन्वय प्रस्तुत किया। इस तरह पंत ने एक नवीन क्रांतिधारा की उद्भावना की। इसमें कहीं भी अंतर्विरोध नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रगतिशील या प्रगतिवादी साहित्य के संदर्भ में पंत का एक निजी और व्यापक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के संदर्भ में पंत का काव्य-विकास सही ढंग से मूल्यांकित हो सकता है। पंत का रचनासक्षम, संघर्षशील एवं स्वतंत्रचेता काव्य-व्यक्तित्व किसी बनी-बनाई आलोचना की कसौटी पर नहीं समीक्षित किया जा सकता उसके अपार काव्य-वैभव का स्पर्श नितांत संवेदनशील एवं सतर्क दृष्टि में ही संभव हो सकता है।

पंत का प्रगतिवादी काव्य

आलोच्य काल तक आते-आते कवि पंत की रचना-दृष्टि में कुछ मौलिक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। लोकमंगल की प्रखर इच्छा से अभिप्रेरित होकर कवि अपनी रचनात्मक भूमि का पुन: संस्कार करता है। वह बुरी तरह से उद्वेलित है तथा नवीन सत्यों के अनुसंधान में रत है। उसका निश्चित विश्वास है कि पिछला युग अब समाप्त होने को है तथा नवीन युग का प्रादुर्भाव [illegible] ा है वीणा ग्रंथि पल्लव गुंजन आदि कृतियों के पश्चात कवि की [illegible] भावभूमियों की खोज क

लिए प्रयत्नशील दीखती है। कवि का यह विकास क्रमश: मांसल और अपेक्षाकृत ज्यादा जीवनोन्मुखी है। संवेदना, कथा एवं शिल्प के स्तर पर धीरे-धीरे एक स्पष्ट बदलाव दिखलाई पड़ता है। कवि अपनी मनोभूमियों का क्रमश: विस्तार करता जाता है, उसकी दृष्टि वस्तु-सत्य की तरफ आकर्षित होने लगती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम तीन कृतियों का उल्लेख कर सकते हैं—१. युगांत, २. युगवाणी, ३. ग्राम्या। इन तीनों कृतियों का विशद उल्लेख आवश्यक है। रचना-क्रम की दृष्टि से 'युगांत' पर सबसे पहले विचार किया जाएगा।

युगांत : युगांत का रचना-काल १९३४-३६ है। युगांत में संग्रहीत अधिकांश कविताएं कवि की भाव-चेतना में व्यापक परिवर्तन का संकेत देती हैं। कवि जिस परिवर्तन का आकांक्षी है उसमें उसकी वस्तुन्मुखी चेतना का आग्रह बहुत स्पष्ट है। कवि जीवन-स्थितियों की विकरालता से कहीं भी हतप्रभ नहीं है। उसकी उद्दाम आशावादिता तथा क्रांति के प्रति उसकी अत्यंत सहज ललक स्पष्ट ही काव्य-विकास के इस चरण में परिलक्षित होती है। मनुष्य-कल्याण की चिरंतन इच्छा से अभिप्रेरित होकर पंत अपनी भाषा, संवेदनात्मक स्तरों तथा अपनी कथन-मुद्राओं में स्पष्ट एवं सहज होते जाते हैं। पंत के ही शब्दों में, "इस नवीन भावबोध के सम्मुख मेरा 'पल्लव'-युग का कलात्मक रूप-मोह ('पल्लव' की भूमिका में जिसका निदर्शन है) पीछे हटने लगा। मेरा मन युग के आंदोलनों, विचारों, भावों तथा मूल्यों के नवीन प्रकाश से ऐसा आंदोलित रहा कि 'पल्लव' 'गुंजन' की सूक्ष्म कलारुचि को मैं अपनी रचनाओं में बहुत बाद को परिवर्तित एवं परिणत रूप में, संभवत:, 'अतिमा'-'वाणी' के छंदों में, पुन: प्रतिष्ठित कर सका हूं।"···कवि के इस आत्मस्वीकार से इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि इस ग्रंथ मे भाव-वैभव की विशदता है। कलात्मक रूप-मोह का आग्रह भी धीरे-धीरे कम होने लगा। युगांत' तक आते-आते पंत का सौंदर्य के प्रति जो अतिरिक्त आकर्षण था वह भी काफी संयत होने लगता है। 'अतिरिक्त' शब्द का यहां जानबूझकर प्रयोग हुआ है क्योंकि जैसा कि पहले प्रतिपादित किया जा चुका है कि पंत के काव्य-व्यक्तित्व की समग्रता कहीं भी खंडित नहीं होती अत: उनका परिष्कृत सौंदर्यबोध आलोच्य कृति तक आते-आते समाप्त हो गया हो, ऐसी बात नहीं है। सौंदर्यबोध यहां भी है किंतु उसके आयाम तथा विषय बदल गए हैं। आयाम तथा विषय के इस परिवर्तन के बावजूद पंत की कविताओं म एक मद्धिम अंत:संगीत, झीनी-झीनी पारदर्शी तरलता सदैव विद्यमान रही है जिसके प्रशस्त वैभव में कवि नितांत सहजता से अपने क्षितिजों का विस्तार करता है तथा नये शिखर-बिंदुओं की तलाश भी करता है। 'युगांत' के आवरण लेख में ही उनका कथन है, 'युगांत में मैंने पहली बार प्रकृति के मुख से आंख हटाकर मानव-मुख को पहचानना सीखा है।" पंत की यह नयी पहचान ही 'युगांत' में प्रतिफलित हो सकी है।

'युगांत' में कवि मनुष्यता के जिस महत् विकास का आकांक्षी है उसके लिए उसने किसी विशिष्ट दर्शन की सहायता की अपेक्षा नहीं की है। उसके सामने भारतीय चिंतन-परंपरा की दुग्ध-धवल शांत विचार-सरिताएं हैं तथा पाश्चात्य परंपरा के आलोड़ित नद हैं जिनका अवगाहन कवि ने प्राय: एक ही भाव से किया है। कवि की दृष्टि

केवल मनुष्य के महत्तर कल्याण की तरफ उन्मुख है, शिखरों का वैविध्य उसे कहीं भी हतप्रभ नहीं करता क्योंकि कवि साथ ही साथ सेतुओं की प्रतिष्ठा में भी रत है। इस तरह कवि दुहरी रचनाधर्मिता के दायित्व को वहन कर रहा है, एक तरफ शिखरों की खोज तथा दूसरी तरफ सेतुओं का निर्माण। सामान्य काव्य-प्रतिभा इस दुहरे दायित्व के साक्षात् से ही भयाक्रांत हो जाती, विचलित हो जाती या फिर रचना-प्रक्रिया की एकान्विति से च्युत हो जाती, किंतु पंत ने न केवल अपने को इन असंगतियों से बचाया ही है प्रत्युत अपूर्व कौशल के साथ इसका निर्वाह भी किया है।

'युगांत' का कवि वायवीय कल्पनाओं से मुक्त होने का प्रयत्न करता दीखता है। उसका सौंदर्यबोध यथार्थ के जीवंत स्पर्श के लिए लालायित है। 'युगांत' में कवि की कला एवं विषयों के प्रस्तुतीकरण की शैली में भी एक भारी बदलाव परिलक्षित होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह बदलाव भाषा, संवेदना एवं कथा के सूक्ष्म धरातलों पर अभूतपूर्व ऊर्जा के साथ उद्घाटित हुआ है। युगांत तक आते-आते पंत की कविताओं की कोमल-तनुता, उसका छुईमुई स्वरूप एवं उसकी अत्यंत सुकुमारता, वयस्कता एवं प्रौढ़ता प्राप्त करती है। पंत की आत्मविभोरता इसी निश्चित बिंदु पर टूटती हुई दिखाई देती है तथा कवि के लिए अनंत संभावनाओं के द्वार खुल जाते है। प्रकृति के प्रति अपूर्व रागात्मकता से मुक्ति के प्रयत्न में पंत अपनी नयी रचना-दृष्टि को भी निर्धारित कर लेते हैं। इस अनन्यता के कारण उन बहुत सारी स्थितियों के साथ कवि का आत्मिक संबंध टूट गया था जो उसकी समकालीनता एवं संवेध्यता के लिए आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य भी थीं। कवि युगांत तक आते-आते उनसे पुनः संबंध स्थापन के लिए उत्सुक प्रतीत होता है। प्रकृति के साथ कवि का लगाव आलोच्य कृति में भी है, किंतु उसका परिप्रेक्ष्य बदल गया।

'युगांत' का कवि एक गंभीर दार्शनिक आस्था से जुड़कर ही मनुष्य-कल्याण की महत् कल्पना में लीन है किंतु कहीं भी वह 'दार्शनिकता' के प्रति अतिरिक्त रूप से आग्रहशील नहीं रहा है। आस्था की प्रतिष्ठा के लिए ही उसे दर्शन की सहायता की आवश्यकता पड़ी है। कवि प्रकृति की सत्ता या अन्य काव्य-स्थितियों में किसी अद्भुत रहस्यमयता का आरोप नहीं करता, फलस्वरूप युगांत की कविताओं में भावात्मक प्रेषणीयता सरसता, ओज एवं प्रवाह है। युगांत का कवि अपार्थिव एवं अमूर्त सत्यों को अपना काव्य-विषय नहीं बनाता वरन् अपनी शक्ति सिर्फ एक बिन्दु पर केन्द्रित कर देता है। वह बिंदु है मनुष्य तथा उसका लक्ष्य है मानवता का कल्याण।

पंत ने अपनी पुस्तक 'शिल्प और दर्शन' में स्पष्टतः यह उल्लेख किया है, "पल्लवकालीन जिज्ञासा तथा भावना के कुहासे से निखरकर 'ज्योत्स्ना' का जगत् जीवन के प्रति नवीन विश्वास, आशा तथा उल्लास लेकर प्रकट होता है। 'युगांत' में मेरा वह विश्वास बाहर की दिशा की ओर भी सक्रिय हो उठता है और विकासकामी हृदय क्रांतिकामी भी हो जाता है। क्रांति विकास की ही उत्कृष्ट इच्छा की द्योतक है। युगांत की क्रांति-भावना में आवेश है, और है नवीन मनुष्यत्व के प्रति संकेत। नवीन सत्य के प्रति मेरे मन का आकर्षण अधिक वास्तविक बनकर नवीन मानवता के रूप में प्रस्फुटित होने

लगता है। दूसर शब्दो म बाह्य क्रांति के साथ ही मरा मन अंत क्रांति का नवीन [illegible] की [illegible] उपलब्धि का भी आकांक्षी है।

'युगांत' के कवि की आकांक्षा है कि वह एक ऐसी सृष्टि का निर्माण करे जहा उसका निजत्व पूर्ण आत्मीयता के साथ जगत् के सामूहिक व्यक्तित्व में लीन हो जाय। व्यक्ति और समाज के बीच एक अपूर्व संगति की कल्पना का संकल्प 'युगांत' में प्राय. ही दिखलाई पड़ता है।

'युगांत' में कविताओं के दो स्तर हैं, एक तो प्रारंभिक सौंदर्यवादी गीत मुक्तकों के कालखंड के पश्चात् की काव्य-साधना के विभिन्न आयामों में ध्वनित हुआ है और दूसरे स्तर पर युगांत-पूर्व की सामान्य प्रवृत्तियों को ही जारी रखा गया है, किंतु यहा भी कवि का नया दृष्टिकोण सदैव विद्यमान रहता है। इन स्तरों के अतिरिक्त भी 'युगात' की अधिकांश रचनाओं के दो स्तर स्पष्टत: ही परिलक्षित होते हैं। पहला स्तर क्रांति या पुरातन की परिसमाप्ति या जीर्ण-शीर्ण के अंत की एक तीव्र कामना को अभिव्यक्त करता है, तो दूसरा भाग उस विनाश की पृष्ठभूमि पर नव-निर्माण का संदेश देता है। अध्ययन की सुविधा की ही दृष्टि से इस विभाजन की आवश्यकता पड़ी है।

'युगांत' संग्रह की पहली कविता में ही कवि का तेवर अत्यंत प्रखर एवं उर्जस्वित है। पंत बड़ी आकुलता एवं अभ्यर्थना के भाव से निष्प्राण प्राचीनता के प्रति अपना सहज आक्रोश प्रकट करते हैं :

> ✓ द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र
> हे स्रस्त ध्वस्त हे शुष्कशीर्ण !
> हिम ताप पीत मधुवात-भीत
> तुम वीतराग, जड़ पुराचीन।

पंत का दृष्टिकोण है कि जब तक प्राचीन मूल्यों का रूढ़िगत स्वरूप विनष्ट नहीं होगा तब तक मनुष्यता समकालीन जीवन-मूल्यों का निर्माण नहीं कर सकेगी।

पंत की काव्य-दृष्टि किस तरह एक नये पथ पर आरूढ़ हो रही थी, इसका एक स्पष्ट संकेत 'गा कोकिल' वाली कविता में सहज ही प्राप्त है। कवि कोकिल से भी पुरातन के नाश और नूतन के निर्माण के संदेश को प्रसारित करने का आग्रह करता है

> गा कोकिल, बरसा पावक कण !
> नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
> ध्वंस भ्रंस जग के जड़बंधन
> पावक पगधर आवे नूतन
> हो पल्लवित नवल मानवपन !

कवि कोकिल से अग्निस्फुलिंगों की वर्षा करने को कहता है। पुरातनता के नष्ट हो जाने की कामना के पीछे 'नवल मानवपन' के पल्लव की आकांक्षा स्पष्ट ही है।

कवि ने आलोच्य कृति का नाम 'युगांत' रखकर सामंत एवं पूंजीवादी युग के अंत की घोषणा की है। कवि की स्पष्ट राय है कि सामंत युग और पूंजीवादी युग की

विकृतियां मनुष्य के स्वाभाविक विकास में अवरोध उपस्थित करती हैं। सभ्यता एवं संस्कृति का आवरण मनुष्य को वस्तुस्थिति का साक्षात्कार नहीं करने देता :

इस मिथ्या वाद-विवाद, तर्क
शत रूढ़ नीति, शत धर्म्म द्वार,
शिक्षा, संस्कृति, संस्था, समाज
यह पशु-मानव का अहंकार।

कवि अपने सारे संकीर्ण निजत्व को त्याग देने के लिए तत्पर है क्योंकि जगत् को 'मधु प्रभात' से आलोकित करने की उसकी इच्छा अदम्य है :

झर पड़ता जीवन डाली से
मैं पतझड़ का सा जीर्णपात
केवल जग-कानन में
लाने फिर से मधु प्रभात !

प्रकृति की अपार सौंदर्यश्री अब उसे आत्मविमुग्ध नहीं करती। पहले पंत प्रकृति के भव्य रूप के प्रति अतिरिक्त रूप से उत्साही रहे, किंतु अब प्रकृति में सर्वत्र पूर्णता का सुख और उल्लास देखकर उन्हें मानव की दयनीय स्थिति का ध्यान आ जाता है :

लगता सारा जग सद्यःस्मित ज्यों शतदल।
है पूर्ण प्राकृतिक सत्य !
किंतु मानव जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम, आतप, खग ?

इसमें स्पष्ट ही पंत की मानवतावादी प्रवृत्तियों का स्पष्ट आभास मिलता है।

पहली बार पंत ने श्रमजीवी वर्ग को अपना काव्य-विषय बनाया। श्रमिक वर्ग की अभावग्रस्तता, विपन्नता एवं दुर्दशा का बड़ा आत्मीय चित्रण पंत ने किया है :

है नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग
भारी है जीवन ! भारी पग।

'धर डगमग डग', 'भारी है जीवन ! भारी पग' में पंत ने जैसे मजदूर वर्ग की सारी दयनीयता उजागर कर दी हो। 'डगमग डग' का प्रयोग मजदूर की विवशता एवं दैन्यता का बड़ा ही मर्मान्तिक खाका प्रस्तुत करता है।

'युगांत' में पंत की कविताएं नैतिकता के आग्रह से युक्त नहीं हैं, किंतु इसमें निहित प्रार्थना-भाव मानव-कल्याण की चरमेच्छा से ही अनुप्राणित है :

जग जीवन में जो चिर महान्
सौंदर्यपूर्ण औ' सत्य प्राण,
मैं उसका प्रेमी बनूं, नाथ !
जिसमें मानव हित हो समान !

कवि विश्व के अंधकार को नष्ट करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है :

'पाकर, प्रभु ! तुमसे अमरदान
करते मानव का परित्राण,
ला सकूं विश्व में एक बार
फिर से नव जीवन का विहान!'

कवि का विश्वास है कि नवोदित मानवता और नया समाज सशक्त होगा और साथ-साथ नई मानवता अखंड एवं अविभाज्य होगी। उसमें वर्गगत भेद-भाव नहीं होंगे। मानव शाश्वत एवं अमर ज्योति है और उसका किसी प्रकार विभाजन करना ठीक नहीं है :

'गा कोकिल, संदेश सनातन
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन
वह न देह का नश्वर रज कण
देश-काल है उसे न बंधन
मानव का परिचय मानवपन !'

'युगांत' में चिंतन की प्रधानता मानव के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण के रूप में प्रकट हुई है। कवि ने इसमें एकमात्र सुंदरतम का ही प्रयोग नहीं करना चाहा अपितु वह सत्यम् और शिवम् के प्रति समान रूप से आकर्षित है। कवि मानवता द्वारा जीवन की पूर्णता का शुभेच्छुक है :

'जगती के जन-पथ कानन में
तुम गाओ विहग अनादि गान,
चिर शून्य शिशिर-पीड़ित जग में
निज अमर स्वरों में भरो प्राण !'

कवि को पूरा विश्वास है कि विश्व-प्रकृति की तरह मानव जग में भी एक असीम, अखंड मधुर व्यापकता अवश्य आयेगी। वह वर्तमान मानव-जीवन के दुःख-दैन्य को कातर वाणी देता है और फिर भावी जीवन-मंगल के प्रति उसका विश्वास दृढ़ है :

'ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकास
हंस देगा स्वर्णिम बज्र लौह
छू मानव आत्मा का प्रकाश।'

'युगांत' में कलागत एवं जीवनगत मूल्यों के विगत युग का पतझड़ है और सद्यःप्रस्फुटित युग का नव-पल्लवन है :

'पतझड़ के कृश पीले तन पर
पल्लवित तरुण लावण्य लोक,
शीतल हरीतिमा की ज्वाला
दिशि-दिशि फैली कोमल लोक।

वस्तुतः पंत के सामाजिक आदर्श उस समय तक बहुत स्पष्ट नहीं हुए थे। हां, उनका विश्वास है कि अक्षय दुःख एवं शोक के स्थान पर धरती पर बहुप्रतीक्षित, सुंदर एवं सारपूर्ण जीवन का आगमन अवश्य होगा।

पंत का मंतव्य है कि कवि के शब्द प्रखर अग्निस्फुलिंगों की भांति आकुल जन हृदय को प्रकाशित कर दें। यहां पंत पहली बार रचनाकार के सामाजिक कर्तव्य तथा कवि के उत्तरदायित्व की बात कहते हैं। वह कवि से कहते हैं कि वह उसी प्रकार उच्च स्वर में और आवाहनपूर्वक गा उठे जिस प्रकार कोई मुक्त विहग गाता है :

गा सके खगों-सा मेरा कवि,
व श्री जग के संध्या की छवि !
गा सके खगों-सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात---फिर आवे रवि !

'युगांत' में 'मानव' शीर्षक कविता बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'गुंजन' में संग्रहीत 'मानव' नामक कविता से इसमें स्पष्ट अंतर है। द्रष्टव्य है :

सुंदर हैं विहग, सुमन सुंदर,
मानव ! तुम सबसे सुंदरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरूपम।

जिस मनुष्य की कल्पना इन पंक्तियों में पंत ने की है, वह अनुपम है। प्राकृतिक उपादानो की तुलना में उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन पंत ने मुक्त हृदय से किया है।

कुछ लोगों ने ऐसा अभिमत प्रकट किया है कि 'युगांत' की कुछ कविताओं पर स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण की छाया बहुत स्पष्ट है। ज्यादा संभावना इस बात की है कि पंत पर विवेकानंद का प्रभाव उनके मानवतावाद के क्रमिक विकास में परिलक्षित होता है। विवेकानंद का नव-वेदांतवाद निश्चय ही पंत को आकर्षक लगा होगा। मनुष्य को ऊपर उठाने के प्रयत्न में स्वामी विवेकानंद ने इस बात पर बल दिया था कि स्वयं श्रेष्ठतम दिव्य सत्ता---अर्थात् ब्रह्म---लाखों सामान्य जीवधारी मनुष्यों के रूप में अवतार लेता है और इसलिए मानव-सेवा ईश्वर-पूजा के ही समकक्ष है। पंत की मानवतावादी कविताओं पर निश्चय ही रवीन्द्रनाथ का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा था।

'युगांत' संग्रह की अंतिम कविता 'बापू के प्रति' में पंत ने गांधी जी को संबोधित करके लिखा है। आदर्श मानवतावादी गुणों का सम्पुंजन कवि को महात्मा गांधी के व्यक्तित्व में दिखाई दिया। पंत गांधी को एक महामानव महात्मा के रूप में स्मरण करते हैं। उनकी नि:स्वार्थ, त्यागमय जनसेवा के लिए उनकी प्रशंसा करते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि नयी मानवतावादी संस्कृति के निर्माण में गांधी का अप्रतिम योगदान रहा है। गांधी जी ने जिन परिस्थितियों में सत्य-अहिंसा का प्रयोग किया उसके प्रति पंत के मन में गहरी श्रद्धा है। शोषण और हिंसा के विरुद्ध अहिंसा का सिद्धांत एक अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप में आया। पंत ने ऐसा अनुभव किया कि जीवन के जिस स्वरूप के लिए वे लालायित हैं वे गांधीजी द्वारा निर्धारित किए गए आदर्शों के द्वारा ही संभव हो सकता है। पंत गांधी जी को अपने पोषित आदर्शों में साकार रूप में देखते हैं

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन।

उनका विश्वास है कि गांधी जी का सर्वश्रेष्ठ योगदान मानववाद, 'नवमानव संस्कृति' के विकास में ही निहित है :

जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज।

पाशविक शक्तियों से प्रतिरोध का एक अन्यतम अस्त्र 'प्रेम' का मार्ग बापू ने सारी दुनिया को दिखलाया। कवि ने उसको स्मरण करते हुए कहा है :

पशुबल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की नियुक्ति
विद्वेष घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम मुक्ति।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया, पंत के इस संग्रह में कुछ कविताएं प्रकृति पर भी हैं, जैसे वसंत, तितली, संध्या, शुक्र, छाया आदि; किंतु इसमें प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टि-कोण बदला हुआ है।

'युगांत' में संग्रहीत 'छाया ?' तथा 'छाया' शीर्षक कविताएं निश्चय कवि की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करती हैं। कवि की उक्ति देखिए :

कल्पना मात्र मृदु देहलता,
पा ऊर्ध्व ब्रह्म, माया विनता !
है स्पृश्य, स्पर्श का नहीं पता,
है दृश्य, दृष्टि पर सके बता !

'शुक्र' कविता में कवि की कल्पना अपने उच्चतम शिखरों का स्पर्श कर रही है :

द्वाभा के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगंत क्रेशब्द मौन,
रवि के जाते, स्थल पर आते
कहते तुम तम से चमक—कौन ?

इस विवेचन से इतना स्पष्ट है कि पंत का काव्य-व्यक्तित्व शनैः-शनैः नितांत सतर्क भाव से परिवर्तन की एक सूक्ष्म प्रक्रिया से गुजर रहा था। कवि युग-सापेक्ष होता जा रहा था।

युगवाणी : 'युगवाणी' की रचना पंत के कालाकांकर-प्रवास के दिनों में हुई। इसमें १९३७-३८ की कविताएं संकलित हैं। पंत का यह कालाकांकर रचना खंड निश्चय ही बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि 'ग्राम्या' तथा 'युगवाणी' जैसी सशक्त कृतियों का प्रणयनकाल भी यही है। इस प्रवास के दौरान पंत ने जन सामान्य के जीवन का निकट

से साक्षात्कार किया। इस साक्षात्कार का कवि के मानस पर निर्णायक प्रभाव पड़ा। पंत ने इस संदर्भ में लिखा है, "इस युग में जीवन के वातावरण तथा रहन-सहन का निरीक्षण-परीक्षण मैं अधिक अच्छी तरह कर सका और अपने तथा आर्थिक, राजनीतिक विचारों तथा सांस्कृतिक भावना और कवि-कल्पना की पृष्ठभूमि में उसे ग्रहण कर उसके पुनर्निर्माण की संभावनाओं पर विचार करने लगा। मेरे सौंदर्य-प्रेमी हृदय को गांवों की अत्यंत दयनीय दुरवस्था को देखकर अनेक बार कठोर आघात भी लगे हैं और मेरा विचार-जगत् क्षुब्ध तथा विचलित होता रहा है। अनेक रूप से मैंने अपने व्यक्तिगत तथा लोक-जीवन के अवसाद को उस काल की रचनाओं में वाणी दी है···प्रकृति निरीक्षण, अध्ययन तथ ग्राम-जीवन की विपन्नता का विश्लेषण, कालाकांकर के निवासकाल के ये मेरे प्रमुख जीवन अवलंब रहे हैं। सन् '३६ से '४० तक मैंने अपना अधिकांश समय केवल पठन-पाठन, चिंतन तथा सृजन को ही दिया है। इन वर्षों में मैं एक बौद्धिक यंत्र की तरह रहा हूं। ग्राम-जीवन के इस रूप ने मानो पंत के सामने एक सर्वथा अपरिचित संसार को खोजकर सामने रख दिया, पंत की सारी स्वप्निलता मानो इस बिंदु पर आकर यथार्थ के नये, कठोर धरातल के स्पर्श से हतप्रभ-सी हो गई।

'युगवाणी' में कवि का मंतव्य युग की वाणी को काव्य-स्तर पर उद्घाटित करने का है। कवि ने स्वयं 'युगवाणी' के विज्ञापन में स्वीकार किया है, "मैंने युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है। यदि युग की मनोवृत्ति का किंचित् मात्र भी आभास इनमें मिल सका तो मैं अपने प्रयास को विफल नहीं समझूंगा।" गद्य को वाणी देने का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं, " 'युगवाणी' को मैंने गीत गद्य इसलिए नहीं कहा कि उसमें काव्यात्मकता का अभाव है। प्रत्युत्, उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार-भावनाप्रधान है। युग के खंडहर पर 'युगवाणी' का काव्य-सौंदर्य प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है, जिसे कलाप्रेमी ध्वंस के ढेर से दृष्टि हटाकर सहज ही देख सकते हैं।" कवि का यह कथन कि मैंने 'युग के गद्य को वाणी' दी है, उस सारी परुषता को, कठोरता को तथा जीवन के क्रमशः कठिन होते जाने को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। 'शिल्प और दर्शन' में कवि कहता है, "युगवाणी और ग्राम्या की कलात्मक अभिव्यक्ति वस्तुपरक है। यह हमारे युग की अदम्य कलात्मक न्याय की पुकार थी, जिसने मुझे 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' लिखने को बाध्य किया।"

'युगवाणी' के रचना काल में कवि अनेक संघातों को समान स्तर पर झेल रहा था। इन संघातों का समुच्च-स्वरूप ही उसकी कविताओं में अभिव्यक्ति पा सका। अभिव्यक्ति का यह स्वरूप विविध रचनात्मक स्तरों पर गहनता एवं काव्यानुभूति की प्रखरता का उद्घाटन करता है। कवि अपने इस विश्वास को बल प्रदान करता है कि एकांगी जीवन-दर्शन, चाहे वह भौतिकवादी हो अथवा अध्यात्मवादी, मानवता का कल्याण नहीं कर सकता।

कवि की विचार सरणी से इतना तो स्पष्ट ही है कि वह समकालीन जीवन को प्रभावित करनेवाली अनेक विचारधाराओं से संयुक्त है अपने को किसी एक विचार धारा की संकीर्ण परिधि में स्थापित कर लेने का आग्रह कवि के मन में बिलकुल

ही नहीं है। सौंदर्य एवं अध्यात्म के लिए भूतल का आधार न मिल पाने के कारण, उसके मन में असंतोष था। कुछ लोगों का विचार है कि गांधीवादी विचारधारा के अक्षम एवं ऐंद्रजालिक हो जाने पर पंत का आग्रह मार्क्स के प्रति हुआ। किंतु कुल मिलाकर यह एक अतिवादी तथा एकांगी दृष्टिकोण है। पंत का गांधीवाद से सर्वथा मोह भंग हो गया हो, ऐसी बात नहीं है। जीवन के जिन शाश्वत तत्त्वों की खोज में वे रह रहे हैं उसका लक्ष्य किसी एक संकीर्ण मतवाद के प्रति पूर्णतया प्रतिबद्ध हो जाना कभी नहीं रहा। कवि जीवन-संदर्भों में ही अपनी एक विशिष्ट दृष्टि निर्मित कर रहा था। इस प्रक्रिया में निश्चय ही मार्क्सवादी विचारधारा की एक खास स्थिति है, किंतु साथ ही साथ वह मार्क्सवाद को अपनी दृष्टि से प्रभावित भी करना चाहता था।

'युगवाणी' के संदर्भ में कुछ आलोचकों की ऐसी अवधारणा है कि इसमें काव्यात्मा के मूल रूप को क्षति पहुंची है तथा इसमें कवि अपनी कलात्मकता की चरम उपलब्धि को प्राप्त करने में अक्षम रहा है। किंतु यह आरोप कवि पंत के रचना-संदर्भ को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में न मूल्यांकित कर पाने का ही परिणाम है। पंत की आरंभिक कविताओं में कलात्मकता जिस तरह संपन्न एवं समृद्ध लगती है उसका मूल कारण उस काव्यरूप की शिल्पगत एवं अर्थगत मांग है। 'युगवाणी' आदि रचनाओं में कलात्मक पूर्णता का लक्ष्य निश्चय ही समीचीन नहीं था। 'युगवाणी' या 'ग्राम्या' का काव्य-सौंदर्य उसके यथार्थ की प्रथा में अंकित है।

इस संग्रह में प्रमुख रूप से तीन तरह की कविताएं संग्रहीत हैं। कुछ कविताओं में मार्क्सवाद को परिभाषित किया गया है और इस वाद के प्रभाव को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। पंत के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन परिलक्षित होता है वह वस्तुत ऐसी ही रचनाओं में रेखांकित किया जा सकता है। कुछ कविताएं प्रकृति एवं नारी से संबंधित हैं और कुछ आचार्य द्विवेदी, बापू, निराला आदि विभूतियों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेवाली हैं।

'युगवाणी' संग्रह में संग्रहीत कविताओं के संदर्भ में अध्ययन अपेक्षित है, अतः प्रमुख कविताओं को उद्धृत करते हुए कवि के दृष्टिकोण की मीमांसा समीचीन होगी।

संग्रह की प्रथम कविता का शीर्षक है 'बापू'। कवि बापू के सत्य-अहिंसा के सिद्धांत में चरम आस्थावान होते हुए भी प्रश्नोन्मुख है। आत्मा के उत्थान से ही मनुष्य का कल्याण होगा, ऐसा वह नहीं समझता। कवि ने न तो पूर्ण रूप से आत्मवाद को स्वीकार किया और न ही भौतिकवाद को। वह इन दोनों की अलग-अलग सत्ता में विश्वास नहीं रखता। कवि का विश्वास है कि दोनों अंततः एक-दूसरे के पूरक हैं :

> भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
> जहां आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

कवि इन पंक्तियों को ही 'युगवाणी' की कुंजी कहता है। बाह्य जीवन एवं अंतर्जीवन के सुचिर समन्वय की तरफ ही कवि का संकेत है।

कवि का कथन ही इस संदर्भ में द्रष्टव्य है, "युगवाणी को विश्वमूर्ति कहा है, जिससे वह जातिगत मन से मुक्त होकर विश्व-मन एवं युग के लोक-मन को अपने

स्वरों में मूर्त कर सके, मनुष्य की अंतश्चेतना में जो सत्य अभी अमूर्त है, उसे रूप दे सके, जीवन-सौंदर्य की जो मानसी प्रतिमा आज अंतर्मन में विकसित हो रही है, उसे भौतिक जीवन में साकार कर सके, और हमारा मन:स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आये।

इसी कविता के अंतिम अंशों में कवि सामूहिकता में ही निजत्व की स्थिति को स्वीकार करता है :

सर्व मुक्ति ही मुक्तितत्व अब
सामूहिकता ही निजत्व अब
बने विश्व जीवन की स्वरलिपि
जन-जन मर्म कहानी।
कवि की वाणी।

'युगवाणी' में संग्रहीत 'नवदृष्टि' कविता कवि के इस संकल्प को अभिव्यक्त करती है कि काव्य के लिए अंततः कथ्य ही महत्त्वपूर्ण है। शिल्पगत उत्कर्ष की आकांक्षा कवि-कर्म का अंतिम इष्ट नहीं है :

खुल गए छंद के बंद—
प्राश के रजत पाश
अब गीत मुक्त
औ' युगवाणी बहती अयास।

कवि की वृत्ति जीवन-संघर्षों के चित्रण में अधिक रमती हुई दिखलाई पड़ती है।

'नव संस्कृति' नामक कविता में कवि एक ऐसी दुनिया की कल्पना करता है जहां विचार-कर्म में कोई विरोध न हो, अर्थ के आधार मनुष्य के श्रम का शोषण न हो, वर्गहीन समाज का आदर्श कवि के सामने है :

श्रेणी वर्ग में मानव नहीं विभाजित
धन बल से हो जहां न जन श्रमशोषण।

'युग उपकरण' शीर्षक कविता में कवि ने दर्शन, संस्कृति एवं कला की रूपांतरकारी भूमिका और वास्तविकता के अर्थोद्घाटन एवं परिवर्तन में उनकी भूमिका के विषय में संकेत किया :

ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का
जो रूप करे निर्माण,
वह दर्शन-विज्ञान, मनुजता का हो
जिससे चिर कल्याण।

'पुण्य प्रसू' शीर्षक रचना में कवि निर्जीव नभ की नीलिमा से ध्यान हटाकर इस धरती पर ध्यान केंद्रित करने का निर्देश देता है :

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु नीलिमा-गहन गगन ?
अनिमेष अचितवन काल-नयन ?

× × ×

देखो भू को,
जीव प्रसू को
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुंजित गुंजित
कुसुमित
भू को।

'पतझर' शीर्षक कविता में पंत ने ऋतुओं की मुर्झान से हतप्रभ न होने का संदेश दिया है। भारतीय जनता के अज्ञानपूर्ण जीवन की तुलना कवि पतझर के साथ करता है जिसके पश्चात् वसंत का आगमन सुनिश्चित है :

पतझर यह मानव जीवन में आया पतझर
आज युगों के बाद हो रहा नया युगांतर
बीत गये बहु हिम वर्षातप, विभव, पराभव
जग जीवन में फिर वसंत आने को अभिनव।

'शिल्पी' नामक कविता में कवि की स्पष्ट उद्घोषणा है कि नयी दुनिया का निर्माण श्रमिक जनता ही करेगी, कलाकार किसी स्थायी कृति का निर्माता नहीं हो सकता, क्योंकि वह छायालोकों की ही सृष्टि करता है :

निर्माण कर रहे वे जग का
जो जोड़ ईंट, चूना, पत्थर,
जो चला हथौड़े, घन, क्षण-क्षण
हैं बना रहे जीवन का घर ?

'युगवाणी' में संग्रहीत 'दो लड़के' शीर्षक कविता सपाट भाषा में नितांत यथार्थपरक वर्णन-क्षमता की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। कवि पंत यहां अपनी भाषा के ताम-झाम से मुक्त अत्यंत सहज है। कमरे की खिड़की से दो पासी बालकों को कवि देख रहा है। बिखरे बालों वाले, गदबदे, सांवले, स्वस्थ और अनावृत्त शरीर एवं हंसमुख बालकों को कवि अत्यंत प्रसन्नता से निहारता है। उसका पूरा विश्वास है कि इन्हीं अस्थि-मांस के सजीव पात्रों के लिए यह जग है :

मेरे आंगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लड़के आ जाते हैं अक्सर,
नंगे तन, गदबदे, सांवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले—पर फुर्तीले।

आगे कवि कहता है :

अस्थि-मांस के इन जीवों का ही यह जग घर,
आत्मा का अधिवास न यह—वह सूक्ष्म, अनश्वर।
न्योछावर है आत्मा नश्वर रक्त-मांस पर
जग का अधिकारी है वह, जो है दुर्बलतर।

यह स्पष्ट राय है कि दुनिया का वास्तविक अधिकारी शोषित, दलित एवं दुर्बल

प्रकृति के प्रति पंत के मन में एक विराट् रागात्मकता है। 'युगवाणी' में संग्रहीत 'गंगा की सांझ' कविता इस संदर्भ में द्रष्टव्य है :

अभी गिरा रवि, ताम्र-कलश-सा,
गंगा के उस पार,
क्लांत पांथ, जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ प्रसार।
भूरे जलदों से धूमिल नभ,
विहग - छंदों - से बिखरे—
धेनु - त्वचा - से सिहर रहे
जल में रोओं - से छितरे।

गंगा के किनारे खड़ा-खड़ा कवि अस्ताचलगामी सूर्य को देखकर कल्पना करता है कि जैसे ताम्र-कलश पानी भरने के लिए जल में डुबाया जाता है उसी प्रकार तांबे के घड़े के समान सूर्य जैसे गंगा में गिर पड़ा हो। यहां 'गिरा' क्रिया से अस्त होते हुए सूर्य का चित्र और भी स्पष्ट हो जाता है। कवि ने इस कविता में बादलों के लिए नये-नये उपमान जुटाये हैं। विहग-छंदों-से, धेनु-त्वचा-से तथा रोओं-से बादल के रूप तथा व्यापार से साम्य स्थापित किया गया है।

पंत का विश्वास है कि बाह्य तथा आभ्यंतर, आत्मिक तथा शारीरिक सौंदर्य का अखंड समागम ही सत्य के वास्तविक स्वरूप को निरूपित करता है। धरती पर वास्तविक सुख एवं सौंदर्य की वृष्टि तभी हो सकती है जब मानव-प्रतिमा द्वारा निर्मित आध्यात्मिक मूल्य समग्र जनता की संपत्ति हो जायेंगे। पंत ने 'मन के स्वप्न' शीर्षक कविता में इस विषय में लिखा है :

आज अखिल विज्ञान, ज्ञान को
रूप, गंध, रस में प्रकटाओ।
आत्मा की निःसीम मुक्ति को
भव की सीमा में बंधवाओ।
जन की रक्त-मांस इच्छा को
मधुर अन्न-फल में उपजाओ।
सत्य बताओ, हे
मानव उर के स्वप्नों को
सत्य बनाओ।

मनुष्यता को कल्याणकारी पथ का निदर्शन कराने वाले क्रांतिदर्शी मार्क्स के प्रति कवि के मन में अमित श्रद्धा है। पंत मार्क्स को वर्गविहीन समतावादी समाज के निर्माण का श्रेय देते हैं पंत का विश्वास है कि मार्क्स द्वारा पोषित दुनिया में एक युगांतर उपस्थित कर देगी परि साधना पर श्रमिकों का शासन

ोगा तथा शोषण और अन्याय का क्रम समाप्त हो जायेगा।

पंत का यह भाव इस बात का साक्षी नहीं है कि वे मार्क्सवादी हो गए। मार्क्स ो श्रद्धा-प्रसून अर्पित करते हुए कवि पंत अपनी परंपरागत आध्यात्मिकता एवं प्रतीक द्धति से मुक्त नहीं हो सके हैं। प्राचीन मिथकों के माध्यम से मार्क्स की महानता का उद्‌घोष करते हुए वे कहते हैं :

धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

'भूत दर्शन' कविता कवि के भौतिकवादी दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करती है। कवि मार्क्स से प्रभावित है, मार्क्सवाद के प्रति आग्रही है। उसका विश्वास हो चला है कि 'भौतिक भव' ही एकमात्र आंतरिक दर्पण है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत के अमल से साम्राज्यवाद का सूर्य अस्त हो गया है तथा लघु अर्थसंपन्न वर्ग द्वारा बहुजन पर शासन की अवधि भी समाप्त हो गई है :

कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण :—
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अंतर दर्पण।

× × ×

अस्त आज साम्राज्यवाद, धनपति वर्गों का शासन।

कवि का ऐसा विश्वास है कि साम्यवाद के द्वारा ही दुनिया एक बार पुनः सुनहले युग से साक्षात्कार करेगी जिसमें मनुष्यता का मानदंड अत्यंत उच्च होगा :

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।

'साम्राज्यवाद' शीर्षक कविता में साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के अंत को इतिहास की स्वाभाविक परिणति स्वीकार किया गया है। पूंजीवादी निशा साम्राज्यवाद का रजत स्वप्न नयनों में लेकर अपनी अंतिम घड़ियां गिन रहा है। रूपक के माध्यम से साम्राज्य-वाद तथा पूंजीवाद के समाप्त होने की व्यंजना की गई है :

रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में शोभन
पूंजीवाद निशा भी है होने को आज समापन।

'समाजवाद-गांधीवाद' नामक कविता में कवि साम्यवाद तथा गांधीवाद द्वारा मानव-सभ्यता को दिए गए योगदानों का उल्लेख करता है तथा दोनों दर्शनों के सार-तत्त्व की मीमांसा करता हुआ, उनके समन्वय की कामना करता है। कवि किसी भी एक दर्शन के प्रति अपनी अतिरिक्त आग्रहशीलता का प्रदर्शन नहीं करता :

मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अनिवाद।

भौतिकवादी विचारधारा जो मूलतः समता एवं संपन्नता का दर्शन है, पंत के मन कं आकर्षित करती है किंतु पंत चेतना की महत्ता को हमेशा प्रथम स्थान देते हैं, भूत कं स्थिति उनके दिमाग में हमेशा द्वितीय ही रही है। 'संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति शीर्षक कविता में स्पष्टतः वे भूतवाद को एक अपूर्ण दर्शन मानते हैं। मनुष्य का ऊप

सस्कार, उस अपना वांछित स्थिति का बोध कराने म अशक्य ही रहता है, अत. .

बहिरंतर, आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्त्व
भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।

'धनपति' शीर्षक कविता में कवि ने पूंजीवादी मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उसका तिरस्कार किया है। उनका पूरा विश्वास है कि जो अपने श्रम के आधार पर जीविकोपार्जन नहीं करेगा उसमें उच्च मानवीय नैतिक मूल्यों का संस्कार संभव ही नहीं होगा। उत्पादन के साधनों से वंचित और बेगार के बोझ के नीचे दबे हुए श्रमजीवियों के शोषण के सहारे अपनी जीविका चलाने वाले पूंजीवादी वर्ग की परजीवी प्रकृति को कवि ने स्पष्ट किया है :

वे नृशंस हैं : वे जन के श्रम बल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित।

कवि उनके अंतिम समय का उद्घोष करता है :

जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण।

'मध्यवर्ग' कविता बड़ी सफलतापूर्वक मध्यवर्ग के संस्कारों को प्रस्तुत करती है। कवि ने बड़ी निकटता के साथ तथा पर्याप्त तटस्थता के साथ मध्यवर्ग की क्षयशील प्रवृत्तियों की समीक्षा की है :

संस्कृति का यह दास : विविध विश्वास विधायक,
निखिल ज्ञान, विज्ञान, नीतियों का उन्नायक।
उच्चवर्ग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
प्रभुसेवक, जनवंचक वह, निज वर्ग प्रतारक।

इन कविताओं के अतिरिक्त 'कृषक', 'श्रमजीवी', 'घननाद' आदि महत्त्वपूर्ण कविताए ह, जिनमें कवि ने विभिन्न भाव-स्तरों पर अपने कथ्य को उद्घाटित किया है।

'नारी' नामक कविता में कवि उसकी मुक्ति को आवश्यक मानता है क्योंकि उसका विश्वास है कि सभ्यता एवं संस्कृति का पूर्णोदय तभी संभव है जब नारी युक्ति के वातावरण में स्वच्छंद विचरण कर सके :

मुक्त करो नारी को मानव
चिरबंदिनी नारी को।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'युगवाणी' में कवि ने भारतीय जन-जीवन का अत्यत गहरा और निकट से अध्ययन किया है। कवि का निश्चित विश्वास है कि युग पर छायी हुई जड़ता टूटेगी तथा समता, स्वतंत्रता तथा उच्च नैतिक मूल्यों से संचलित नव सस्कृति का प्रादुर्भाव होगा

ग्राम्या युगवाणी' की ही पृष्ठभूमि पर ग्राम्या की रचना सभव हो सकी है

सन् १९४० में भारती भंडार ने इसे प्रकाशित किया। तीन महीने की अल्पावधि में लिखी गई ४३ कवितायें इस संग्रह में संग्रहीत हैं। 'ग्राम्या' आलोच्यकाल की अंतिम कृति है तथा इसके साथ ही पंत की काव्य-साधना का एक महत्त्वपूर्ण कालखंड समाप्त होता है। 'ग्राम्या' तक आते-आते कवि पूरी तरह से ग्राम्य-जीवन के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता हुआ-सा प्रतीत होता है। ग्राम-जीवन का नंगा और रोमांचक यथार्थ, उसके अंदर प्रवाहित होनेवाली निःसहाय दैन्यता तथा तलवर्ती अकृत्रिम सौंदर्यराशि एवं निश्छल पवित्रता को रूपायित करने में कवि अत्यंत सफल रहा है। 'ग्राम्या' की कविताओं में भावुकता एवं कलात्मकता का चरमोत्कर्ष भले ही न उपलब्ध हो, किंतु यथार्थ का जीवंत एवं प्राणवान उन्मेष वहां सहज ही प्राप्त है। कवि ने संवेदनात्मक स्तर पर ग्रामवासियों के जीवन-संघर्ष को, उसकी निरूपता को तथा उसके अनेक जीवन-संदर्भों को झेला है। स्वयं कवि पंत ने लिखा है: "कला की दृष्टि से 'युगवाणी' की भाषा अधिक सूक्ष्म है जो बुद्धिप्रधान काव्य का एक संस्कार भी है। उसमें विश्लेषण का बारीक सौंदर्य मिलता है। 'ग्राम्या' में वही शैली जैसे अधिक भावात्मक होकर खेतों की हरियाली में लहलहा उठी है। गांवों की दशा का चित्रण करते हुए पंत कहीं भी गलदश्रु भावुकता के शिकार नहीं हुए हैं।

'ग्राम्या' में संग्रहीत कविताओं को मूल्यांकन का आधार बनाना कहीं ज्यादा संगत होगा क्योंकि उससे हम कवि की मूल दृष्टि को रेखांकित करने में सफल होंगे।

पहली कविता है 'स्वप्नपट', कवि के मन में ग्राम-जीवन की भावी कल्पना, बहुत सुस्पष्ट है। कवि ने ग्राम्य-परिदृश्यों की संरचना अपने मनोलोक में बड़ी स्पष्टता के साथ कर रक्खी थी:

> ग्राम नहीं वे ग्राम आज
> औ' नगर न नगर जनाकर
> मानव कर से निखिल प्रकृति जग
> संस्कृत, सार्थक, सुंदर।

कवि का पूरा विश्वास है कि वर्ग, जाति आदि की संकीर्ण परिधि से मानवता बाहर निकलेगी:

> जाति वर्ण की, श्रेणी वर्ग की
> तोड़ भित्तियां दुर्धर
> युग युग के बंदी गृह से
> मानवता निकली बाहर।

कवि की निश्चित धारणा है कि मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों में ही उपलब्ध हो सकते है तथा भविष्य की संस्कृति ग्राम तत्त्वों द्वारा ही अपना पोषण तत्त्व प्राप्त कर सकती है:

> मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों में ही अंतर्हित
> उपादान भावी संस्कृति के भरे यहां हैं अविकृत!

आधुनिक शिक्षा के सत्याभासों की तरफ भी कवि ने संकेत किया है।

कवि सामाजिक-यथार्थ दृष्टि को अपने अंदर विकसित करता हुआ प्रतीत होता है। कवि अमूर्त सत्यों और रहस्यों के अनुसंधान से अपने को विरत कर जीवनगत यथार्थ की तरफ उन्मुख होता है जिसका केंद्र ग्राम है :

देख रहा हूं आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से
सोच रहा हूं जटिल जगत् पर, जीवन पर जन-मन से।

दरिद्रता, अपमान, दुःख एवं अभाव का भयावह साक्षात्कार कवि करता है। इनके सम्मिलित प्रभाव से पंत की रचना-दृष्टि ही बदल जाती है। प्रकृति के उल्लास-भरे चित्रों के स्थान पर कवि जनसाधारण के आनन्दशून्य जीवन के चित्रण को ही अपनी काव्य-संवेदना का लक्ष्य बनाता है। 'ग्राम-चित्र' शीर्षक कविता में कवि जैसे अपने पोषित विचारों का ही प्रत्याख्यान करता कह उठता है :

यहां नहीं है चहल-पहल वैभव-विस्मित जीवन की,
यहां डोलती वायु, म्लान सौरभ मर्मर-ले वन की।
आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी,
यहां घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया-सी।

पंत की प्रारंभिक कृतियों में उषःकाल के प्रति अतीव रागात्मक भाव रहा है, किंतु इस कविता में 'अकेला मौन प्रभात' एवं उदासी-भरी संध्या कृषकों की विभिन्न मन-स्थितियों के संकेत के रूप में चित्रित किए गए हैं।

'ग्राम नारी' शीर्षक कविता कवि की काव्यगत मान्यताओं के परिवर्तन की तरफ स्पष्ट संकेत है। कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

है मांसपेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,
संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज,
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज!

दुखी मानव की शब्दातीत वेदना से भरी हुई दृष्टि कवि की आत्मा को चीर देती है। वह सर्वत्र कवि का पीछा करती है और वह कह उठता है :

अंधकार की अतल गुहा-सी
अह, उन आंखों से डरता मन,
वर्ग सभ्यता के मंदिर के
निचले तल की वे वातायन।

'ग्राम्या' में संग्रहीत 'वह बुड्ढा' रचना निश्चय ही एक उपलब्धि के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए। ऐसा लगता है कि यह कविता एक द्रुत चित्रण-मात्र है—मात्र कुछ ही क्षणों के लिए बुड्ढा कवि के द्वार पर आता है किंतु क्षणिक साक्षात्कार ने ही कवि को न जाने कितनी भाव-संवेदनाओं के नजदीक लाकर खड़ा कर दिया :

खड़ा द्वार पर लाठी टेके
वह जीवन का बूढ़ा पंजर।

चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ा
हिलते हड्डी के ढांचे पर।
उसका लंबा डील-डौल है,
हट्टी-कट्टी काठी चौड़ी
इस खंडहर में बिजली सी
उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।

यह कविता 'युगवाणी', 'ग्राम्या' की काव्य मनोभूमि का अप्रतिम उदाहरण है। अभिधा के अंदर गुंथी हुई सहजता, व्यथा का अपार सौंदर्य और विषयानुकूल शब्द-चयन यहां दर्शनीय है।

'गांव के लड़के' शीर्षक कविता में पंत ने गांव के बच्चों का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। 'युगवाणी' में संकलित 'दो लड़के' शीर्षक रचना की अपेक्षा कवि के यथार्थ भूमि के कहीं ज्यादा निकट है। अब उसे दिखायी देते हैं बरगद की जटाओं के से उनके मलिन, झबरे-बिखरे बाल, सूखकर पतले हुए हाथ-पैर, निकली हुई हड्डी-पसलियां, फूले हुए पेट और झुकी हुई काठियां :

मिट्टी से मटमैले तन
अधफटे, कुचैले, जीर्णवसन
ज्यों मिट्टी के दो बने हुए
ये गंवई लड़के भू के धन।

ग्राम-जीवन की संस्कृति से अंतरंग परिचय के कारण कवि ने लोकनृत्यों को भी शब्द-बद्ध किया है :

उड़ रहा ढोल धाधिन धातिन,
ओ हुड़क धुड़ुकता ढिन-ढिन-ढिन,
मंजीर खनखने खिन-खिन-खिन
मदमस्त रजक, होली का दिन।

'ग्राम्या' में कुछ व्यंग्यात्मक रचनायें भी हैं। बनियों की स्वाभाविक वृत्ति का चित्रण करते हुए कवि अत्यंत पैनी दृष्टि का परिचय देता है :

टूट गया वह स्वप्न वणिक् का
आई जब बुढ़िया बेचारी
आधपाव आटा लेने
लो लाला ने फिर डंडी मारी।

'ग्रामदेवता' शीर्षक रचना में कवि ग्रामीणों के परिवर्तनरहित, रूढ़िवादी संस्कारों के प्रति आक्रोश प्रकट करता है। पत्थर के देवताओं के प्रति अंधविश्वास को कवि व्यंग्य के रंग में अंकित करता है। कवि ने विनोद करते हुए 'राम राम' से प्रारंभ होनेवाली प्रार्थना की निरर्थकता की तरफ संकेत किया है :

राम राम
हे ग्राम्य देवता, यथानाम

शिक्षक हो तुम मैं शिष्य
तुम्हें सविनय प्रणाम

'सूत्रधर' शीर्षक रचना में कवि आधुनिक यंत्रों के प्रति आकर्षित प्रतीत होता है, गांधीवादी दृष्टिकोण से विपरीत स्वर इसमें निहित है :

तकली, चरखे, करघे से अब आधुनिक यंत्र,
तुम बने, यंत्र बल पर ही मानव लोकतंत्र
स्थापित करने को अब : मानवता का विकास
यंत्रों के संग हुआ, सिखलाता नृ-इतिहास।

प्रकृति के रहस्यपूर्ण संकेतों के प्रति 'ग्राम्या' का कवि पूर्णतया विरक्त नहीं है, प्रकृति की मोहकता एवं अतीव सौंदर्यमयता पर कवि मंत्रमुग्ध हो जाता है। 'दिव्य स्वप्न' की ये पंक्तियां देखिए :

वहीं कहीं, जी करता, मैं जाकर छिप जाऊं,
मानव जगत् के क्रंदन से छुटकारा पाऊं।
प्रकृति नीड़ में व्योम खगों के गाने गाऊं।
अपने चिर, स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊं।

'ग्राम्या' संग्रह की रचनाओं में कवि निश्चय ही कठोर वास्तविकताओं का साक्षात्कार अपने संवेदनात्मक स्तर पर करता है किंतु कहीं भी वह निराशावादी नहीं हुआ है। उसका पूरा विश्वास है कि शोषण, दमन एवं अन्याय का यह चक्र एक न एक दिन समाप्त होकर ही रहेगा।

कवि पंत ने आलोच्यकाल पर विचार करते हुए 'कृति' में प्रकाशित अपने लेख 'साठ वर्ष : कुछ स्मृतियां' में लिखा है, "सन् '३६ से '४० तक मैंने अपना अधिकांश समय केवल पठन-पाठन, चिंतन तथा सृजन को ही दिया है। इन वर्षों में मैं एक बौद्धिक यंत्र की तरह रहा हूं। विश्व साहित्य, आधुनिक काव्य तथा पूर्व-पश्चिम की प्राचीन-नवीन विचारधाराओं से मैं जो भी ग्रहण कर सकता था, उसे मैंने आत्मसात् करने का प्रयत्न किया। एकांत अरण्य नीड़ में छिपकर इस युग में मैंने भारतीय संस्कृति में प्रविष्ट अनेकांत विचार-सरणियों का भी गंभीर मनन किया और मानव चेतना के नवीन विकास की दिशा का आभास भी मेरे मन को इसी युग में मिला, जिसके अनेकानेक उदाहरण 'ज्योत्स्ना', 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में मिलते हैं।"

इस विश्लेषण से इतना तो स्पष्ट ही है कि सामंजस्य पंत के काव्य की प्रमुख विशेषता है। पंत के कृतित्व में विविध एवं विरोधी-सी प्रतीत होने वाली विचारधाराओं का अद्भुत समन्वय हुआ। पंत युग-सापेक्ष रहे हैं, किंतु फिर भी उनके काव्य की एक विशिष्ट रेखा रही है जो कभी पूर्णतया तिरोहित नहीं हुई है। उनका परवर्ती रचना-विकास-क्रम भी इसी दृष्टिकोण से मीमांसित होना चाहिए। जीवन-दृष्टि की संपूर्णता मे पंत ने अपनी काव्य-स्थिति तथा वैशिष्ट्य को बड़ी ही सतर्कता एवं गहनता के साथ तलाश किया है। रचना-स्तर पर कभी-कभी जो द्वैध परिलक्षित होता है, वह वस्तुतः पंत की भावधाराओं का अन्तर्गुम्फन है जिसका प्रतिफलन स्वाभाविक रूप से उनकी

रचना-प्रक्रिया में भी दृष्टिगत होता है। समन्वय की ऐसी ही ललक फ्रेंच लेखक आंद्रे में भी रही है। एक बार उनके एक मित्र ने उनसे पूछा था, "साम्यवाद और व्यक्तित्व में समन्वय कैसे संभव है ?" जीद ने उत्तर दिया था, "आग एवं पानी के परिणाम से ही भाप उत्पन्न होती है।" उसका मतलब था कि संपूर्णता की उपलब्धि परस्परविरोधी-सी प्रतीत होने वाली विचारधाराओं के समन्वय से ही संभव है। कवि पंत का जीवन-दर्शन भी बहुत कुछ इसी विचार-पद्धति से परिपुष्ट हुआ है। समन्वय का आधार पंत ने स्वयं बहुत परिश्रम एवं मनन के पश्चात् गढ़ा था तथा उसका प्रयोग वे अपने काव्य में करते रहे। इस समन्वय को 'मिथ' या 'मिथ' के प्रति अतिशय आग्रह मानना संगत नहीं होगा। 'ग्राम्या' आदि कृतियों में काव्य-सौंदर्य के पल्लवकालीन धरातल को खोजना भी कवि की उस साहसिक यात्रा को अस्वीकार करना होगा। निश्चय ही काव्य-बोध के सर्वथा नये स्तर एवं धरातल का उद्घाटन पंत की आलोच्यकाल की कृतियों में संभव हो सका जो अपनी अभिव्यक्ति की सहजता एवं सपाटता के कारण स्मरणीय रहेंगी।

पंत का चेतनावादी काव्य

कवि के रूप में पंत की प्रतिभा सदैव विकासोन्मुख रही है। पंत समय-समय पर युग-सत्यों से प्रभावित होते रहे हैं, किंतु यह प्रभाव-ग्रहण एक निश्चित सीमा के अंदर ही संभव हो सका है। बदलती हुई समय-गति के अनुरूप ही उन्होंने उनसे उचित प्रभाव लिए। उनके सर्वश्रेष्ठ को आत्मसात किया। उनकी विवेकपूर्ण दृष्टि ने शिव तत्त्वों को ही चुना। 'पल्लव' और 'गुंजन', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' तथा पंत की अन्य परवर्ती कृतियों में कालखंड का एक दीर्घ अंतराल है। ऊपर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो इन विभिन्न कालखंडों में कवि का व्यक्तित्व भी विभाजित होता गया है अथवा द्वंद्वग्रस्त होता गया है, किंतु यदि पंत के काव्य-व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि उनकी प्रत्येक कृति सूक्ष्म अंतर्सूत्रों से ग्रंथित है। पंत अपने मौलिक रूप में आस्थाशील कवि हैं, उच्च मानवीय नैतिक मूल्यों में उनका प्रारंभ से ही विश्वास रहा है। 'ग्राम्या' की रचना के पश्चात् पंत काफी दिनों तक मौन रहे। मौन का यह काल बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं दिनों पंत वृहत्तर दृष्टिबोध के विभिन्न आयामों की तलाश बड़ी तल्लीनता के साथ कर रहे थे। यह समय उनकी श्रमसाध्य अंतर्यात्रा का है जिसके दौरान पंत अपने दृष्टिबिंदु को स्थिर कर रहे थे। विचारधारा में परिवर्तन की प्रक्रिया भी इन्हीं दिनों शुरू हुई।

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यह परिवर्तन सर्वथा अप्रत्याशित अथवा आकस्मिक था तथा इसके बीज-रूप का पूर्ववर्ती काव्यग्रंथों में अभाव था। आध्यात्मिकता की चेतना पंत के काव्य-व्यक्तित्व से कभी लुप्त नहीं हुई, यह दूसरी बात है कि अपनी प्रारंभिक तथा मध्यवर्ती कृतियों में वे ज्यादातर सौंदर्य एवं यथार्थ की भूमियों पर संचरण करते रहे हैं। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि पंत अपने पूर्ववर्ती रचना मान-दंडों से पूरी तरह कटकर संवेदना के किसी सर्वथा नये और अपरिचित धरातल पर

आरूढ हुए हो। निश्चय ही पत की काव्य यात्रा मे आतरिक खोज की एक अलक्षित सी एकसूत्रता है जो विभिन्न रचना-खडो मे प्रौढ़ से प्रौढ़तर होती गई है। प्रौढ़ता एव परिपक्वता को ही किसी रचनाकार की उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भले ही पंत की महिमामय काव्य-यात्रा को प्रकृति से मानव, मानव से जनजीवन, जनजीनन से दिव्य जीवन और दिव्य जीवन से नवमानव अथवा इसी से मिलती-जुलती किसी विचार-सरणि के अन्तर्गत समीक्षित किया जाय किंतु पंत जैसे जीवंत, रचना-सक्षम एवं अनुभूति-संपन्न कवि के काव्य विकास-क्रम का इतनी योजनाबद्धता से निर्धारित करना संगत नहीं प्रतीत होता। पंत-काव्य की संपूर्ण अत संगति को समझने के लिए उनकी प्रारंभिक कृतियों से प्राप्त विचारों को भी मूल्याकन का आधार बनाना चाहिए।

आलोच्यकाल तक आते-आते कवि की सूक्ष्म चेतना एक निश्चित दर्शन से सहारा पाकर क्रमश: परिपुष्ट होती गई। इस सूक्ष्म चेतना के उदय के प्रभाव में ही मार्क्स के अध्ययन के बाद सम्पन्न लोकजीवन का स्वप्न उनकी विचारधारा का एक अंग बन गया था। किंतु वह स्वप्न केवल राजनीतिक-आर्थिक मान्यताओं की वृद्धि तथा भौतिक उपकरणों के विकास द्वारा ही पूर्ण होगा, इस पर से उनका विश्वास उठने लगा था। बाह्य रूप से एक सुव्यवस्थित तथा समृद्ध तंत्र में रहने पर भी यदि मानव-जीवन भीतर मे उन्नत न हो सके और यदि उसमें उच्चतम मानवीय गुणों का विकास होने के बदले वह केवल समतल शक्तियों से जूझने के लिए यंत्र-मात्र बन जाए और उसे मनुष्यत्व के मूल्य पर वाह्य अवस्था तथा संतुलन स्थापित करना पड़े तो ऐसा समाज या तंत्र और जिसके भी योग्य हो, मनुष्य के रहने योग्य नहीं कहा जा सकता। स्पष्टत: कवि मनुष्य को 'समतल शक्तियों' से ही जूझता हुआ देखकर खिन्न था, उच्चतर मानवीय गुणों का विकास मानसिक एवं आत्मिक उन्नति से ही सम्भव है। पंत का दृढ़ विश्वास होता जा रहा था कि युग-जीवन को सम्पूर्णता तथा सर्वांगीणता का समुचित आयाम तभी उपलब्ध हो सकता है जब उसे व्यापक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी प्राप्त हो। कवि उस व्यापक सास्कृतिक धरातल की तलाश करते हुए ही अरविंद दर्शन के निकट पहुंचा था। किंतु यहा यह स्मरण रखना आवश्यक है कि कवि का विकास परिस्थितियों के प्रवाह में किसी अनिश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयासशील नहीं था, अपितु उसका विकास उसकी चेतना के अनुरूप ही हो रहा था। कवि ने अपनी जनवादी तथा आध्यात्मिक कविताओ मे अंतर केवल धरातल की भिन्नता के कारण ही स्वीकार किया है। संपूर्ण चेतना तो कभी विभाजित नहीं होती, एक ही चेतना जब शुद्ध बुद्धिवादी स्तर पर उभरकर बहिर्मुख हो गई तो उससे जनवादी काव्य का सृजन हुआ है तथा जब वही चेतना अंतर्मुख होकर अपने क्षितिजों का विस्तार करने लगी तो उससे चेतनावादी काव्य की सृष्टि हुई है। पत के काव्य में 'मानव' की प्रतिष्ठा को कभी क्षति नहीं पहुंची। अत: उनके काव्य के अनेक रूपाकारों में उनकी अध्यात्म चेतना कभी क्षीण धारा में मंथर गति से और कभी अपने समग्र रूप में तीव्र गति से प्रभावित दृष्टिगोचर होती है।

'ग्राम्या' के प्रणयन के पश्चात् काफी दिनों तक पंत अस्वस्थ रहे। शारीरिक तथा

मानसिक रूप से वे क्लांत तथा श्रांत थे। गांधी एवं मार्क्स के एकांगी जीवन-दर्शनों मे वे वृहत्तर मानवीय मूल्यों का अनुसंधान न कर सके। पंत का पूरा विश्वास है कि लोक-संगठन और मन:संगठन एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि वे एक ही युग-चेतना के बाह्य तथा आंतरिक रूप हैं। यदि इनका ऊर्ध्व मानवीय चेतना के साथ संयोग किया जाय तो निश्चय ही मनुष्यता अपना नवीन अर्थ-गौरव प्राप्त कर सकेगी। मनुष्यता के इस नवीन अर्थ-गौरव की प्राप्ति के हेतु ही पंत अपनी विचारधारा को एक विशेष दिशा की तरफ प्रवाहित करते हैं।

१९४४ में पंत जी कई बार पांडिचेरी गए तथा असाधारण महापुरुष अरविंद के साक्षात्कार से उनके मन की बहुत सारी शंकाएं नष्ट हो गईं। पंत ने ऐसा अनुभव किया कि अब उनके सामने का धुंधलका कम हो रहा है तथा परिदृश्य क्रमशः साफ होता जा रहा है। अरविंद की पुस्तक 'दि डिवाइन लाइफ' पढ़कर उनकी अन्तश्चेतना में एक अप्रत्याशित स्फुरण हुआ और उन्हें लगा कि वे उन शिखरों के नजदीक पहुंच गए हैं जिनकी तलाश वे पिछले कई वर्षों से कर रहे थे। पंत ने अब सुस्पष्ट दर्शन संदर्भ में परि-स्थितियों का मूल्यांकन प्रारंभ किया तथा इसे 'अन्तश्चेतनावाद' अथवा 'नवमानवता-वाद' नामकरण प्रदान किया। पंत के जीवन पर अरविंद की तर्क पद्धति का प्रभाव काफी मात्रा में पड़ा। ये दृष्टिकोण उनकी रचनाओं एवं विचारों में प्रतिबिंबित हुए। पंत ने लिखा है—"गांधी जी के संसर्ग में मुझे सदैव आत्मबल तथा आत्मविश्वास मिला है और श्री अरविंद के संपर्क से मेरा मानसिक क्षितिज व्यापक, गहन तथा सूक्ष्म बन सका, ऐसा मेरा अनुभव है।"

पंत जी के इस दर्शन-आकर्षण का एक और अर्थपूर्ण कारण संभव हो सकता है। वह यह है कि हर उच्चकोटि की प्रतिभा अंततः एक ऐसे सर्वगामी दर्शन की तलाश करती है जहां उसके अपार क्षितिजों का विस्तार एक निश्चित आकाश प्राप्त कर सके। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने उपनिषदीय सार्वभौम मानवतावाद की शरण ली। रचनात्मकता के एक खास बिंदु पर कवि-मनीषी महत् आधारभूमि की तलाश में रहता है क्योंकि जीवन का स्नायवीय संगठन उसे प्रभावित नहीं कर पाता। किंतु ऐसा मान लेना भी संगत नहीं होगा कि पंत का अरविंद दर्शन-ग्रहण उनकी विश्राम-इच्छा और एक पूर्णता से प्राप्त तृप्ति की ओर संकेत करता है। पंत की जीवंतता तथा एक अपेक्षाकृत ज्यादा कल्याण-कारी विश्व की कल्पना उनकी परवर्ती कृतियों में कहीं अधिक प्रौढ़ता के साथ अभिव्यक्त हुई है।

अरविंद दर्शन : भारतीय दार्शनिकों की परम्परा में अरविंद का स्थान अप्रतिम है। अरविंद दर्शन मूलतः एक समन्वयवादी दर्शन है किंतु यह समन्वय योगसभूत अंतश्चेतनामूलक पृष्ठभूमि पर खोजा गया है। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का भंडार अर्जित कर लेने पर भी साधना के बाद अरविंद की धारणा बनी कि अखिल विश्व के ज्ञान का मानव-जीवन में समायोजन भारतीय अध्यात्म दृष्टि से ही हो सकता है। भारतीय ईश-साधना, जिसमें यौगिक साधना का स्थान सर्वोपरि है, के अन्तर्गत ही अन्य साधनाओं का या तो अंतर्भाव कर दिया गया है या उसे सहायक के रूप में स्वीकार किया गया है।

अरविंद विश्व के विविध ज्ञान को विविध चेतना-स्तरों की उपज मानकर स्वीकार करते हैं किंतु अंतिम और उच्चतम स्थान वे भारतीय साधना-पद्धति को ही देते हैं। अरविंद ने भी अन्य दार्शनिकों की भांति ब्रह्म, जीव एवं जगत् के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस क्षेत्र में उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन अतिमानस की खोज, सामूहिक मुक्ति, पृथ्वी और स्वर्ग का समन्वय और दिव्य जीवन का दर्शन या स्थापना है।

अरविंद ने अपनी तर्कपूर्ण शैली में यह सिद्ध किया कि चेतना और पदार्थ म कोई शाश्वत विरोध नहीं है। विरोध तभी परिलक्षित होता है जब मानव चेतना म उलझने हों, जब वह आंतरिक सामरस्य के दर्शन में अक्षम हो। प्रश्न उठता है कि चेतना और पदार्थ में सामरस्य कैसे सम्भव है ? अरविंद ने इसके समाधान के लिए दो बातों को ध्यान में रखने का निर्देश दिया है—प्रथम, हमें एक सर्वव्यापी सत्ता को पहचानना है जो इन दोनों तत्त्वों को उचित महत्त्व एवं गरिमा प्रदान करती है। द्वितीय, जब हम उस सर्वव्यापी सत्ता और चेतना तथा पदार्थ के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करेंगे तो विकासवाद का सिद्धान्त ही सारी गुत्थियों को सुलझाता है। अरविंद के दर्शन का मूल है उपनिषद्-ज्ञान और विकासवाद का समन्वय। अरविंद का विचार था कि प्राचीन पौर्वात्य ज्ञान एवं आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के समन्वय की ओर ही आज का युग बढ़ रहा है।

श्री अरविंद के अनुसार ब्रह्म गम्भीर आत्मानुभूति से प्राप्त वह अद्वितीय सत्ता है जो अनिर्वचनीय है और असंभव संभावनाओं से युक्त है।

अरविंद जीव को चेतन सत्ता के रूप में ही स्वीकार करते हैं। ब्रह्म एवं जगत् के साथ इसका अद्वैत संबंध है। जो स्थिर है वह ही ब्रह्म है और जो विकासशील है वह ही चेतन है। समग्र जगत् अपने मूलरूप में शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस तरह दो सत्यों की उद्भावना हुई—स्थिर सत्ता और चेतन शक्ति। तंत्रशास्त्र में जो शिव और शक्ति का अभेद स्वीकार किया गया है उसी प्रकार श्री अरविंद स्थिर सत्ता और चेतन शक्ति को एक मानते हैं।

समन्वय अरविंद दर्शन की सबसे प्रमुख विशेषता है। उनका अभिमत है कि जड़ और चेतन में आकाश-पाताल का अंतर होते हुए भी उनमें समन्वय की रेखा अस्तित्वरूप में विद्यमान रहती है। इसके अलावा अरविंद जड़ और चेतन में कोई तात्त्विक भेद स्वीकार नहीं करते। दोनों एक ही परमसत्ता के दो छोर हैं, अतः परमार्थतः दोनों एक ही हैं।

श्री अरविंद माया के तत्त्व को भी (ईश्वर की सक्रिय शक्ति माया) स्वीकार करते हैं। वे उसके दो रूप मानते हैं—निम्न माया (प्रकृति) और उच्च माया (उच्चतर प्रकृति या चित्शक्ति)। जड़त्व से बिद्ध होकर वह चित्शक्ति अपराप्रकृति बन जाती है, जड़ता से मुक्त होकर चिन्मय पराप्रकृति। निम्न माया के प्रभाव के कारण ही हम ब्रह्म की तरफ उन्मुख नहीं हो पाते। उच्च माया ऊर्ध्व चेतना की स्थिति में रहती है अतएव जीव, जगत् तथा ब्रह्म में भेद अथवा द्वैत का दर्शन नहीं होता। उपर्युक्त निम्न माया से जब मन ऊपर उठ जाता है तो वह उच्च माया के साम्राज्य में

प्रवेश करता है, जिसे अरविंद ऊर्ध्व चेतना की अनुभूति की अवस्था कहते हैं। अरविंद दर्शन के सृष्टि-क्रम को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि चेतन शक्ति किस प्रकार अपने-आपको अभिव्यक्त करती है। भौतिक विकासवादी यह मानते हैं कि पदार्थ से चेतना उत्पन्न होती है। उनके अनुसार विकास की शक्ति सजग नहीं है, चेतन नहीं है, जड़ है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है अरविंद शक्ति को चेतन-स्वरूप ही मानते हैं। कारण, संसार में सर्वत्र हमें उपयोगिता और उपादेयता लक्षित होती है। प्रकृति का क्षुद्र से क्षुद्र अवयव भी कुछ उपयोगिता रखता है। यदि विकास-कामी शक्ति जड़ है, तो यह उपयोगिता कैसे संभव हो सकती थी ? श्री अरविंद सत्ता के दो किनारे मानते हैं—एक पर आत्मा अथवा ब्रह्म संस्थित है और दूसरे पर जड़ पदार्थ। उनका मत है कि जड़ पदार्थ में जो विकास होता है, वह प्रारंभिक है; अज्ञान में जो विकास होता है, वह मध्य है; किन्तु विकास का अंत आत्मा की मुक्ति में होता है जो कि चेतना का वास्तविकरूप है। इस तरह अरविंद ने सच्चिदानन्द और चेतनशक्ति मे अभेदता की स्थापना की है। संसार में सच्चिदानन्द की अभिव्यक्ति के दो रूप हैं। एक अवरोहण, दूसरा आरोहण। अवरोहण की क्रिया आरोहण की क्रिया के ठीक विपरीत है। अवरोहण की दिशा में सच्चिदानन्द से अतिमन (सुपर माइंड) का उदय होता है, अतिमन से मन का, मन से प्राण का और प्राण से पदार्थ का। आरोहण की क्रिया मे पदार्थ के भीतर बद्ध यह चेतनशक्ति जब जीवन के रूप में उच्छ्वसित हो उठती है तब प्राण को जन्म देती है, जब बुद्धि के रूप में तब प्राण में मन को, जब आत्मा के रूप मे तब मन में अतिमन को। जिस तरह प्राणतत्त्व देह को अपने में (कुछ रूपान्तरित कर) समाहित किये रहता है, मन प्राण और देह दोनों को (उनकी प्राथमिक अभिव्यक्तियो को भिन्न रूप देकर) अपने में समाहित किये रहता है, उस तरह आत्मा (स्प्रिट) अपने पूर्ववर्ती अवयवों—देह, प्राण, मन—को अपने द्वारा रूपान्तरित कर अपने में समाहित किये रहती है। अतएव विकास-प्रक्रिया में अध्यात्म का स्फुरण देह, मन, प्राण में अभि-व्यक्त जीवन का स्थगन या तिरस्कार नहीं उसका रूपान्तरण है। पदार्थ, प्राण और मन तक की अवस्थायें निम्न माया के साम्राज्य में अवस्थित रहती हैं। उच्च माया का क्षेत्र अतिमन का है जहां देह, प्राण, मनके सत्य प्रकाशित हो उठते हैं, जड़ चेतन हो जाता है।

अरविंद जड़ विकासवाद के सिद्धान्त का बहुत ही तर्कपूर्ण ढंग से प्रत्याख्यान करते हैं। उनका मत है कि किसी अभाव पदार्थ से चेतन तत्त्व की निष्पत्ति हो ही नहीं सकती। अरविंद के विकास सिद्धांत का मूल मंत्र है, जो कुछ पदार्थ में अव्यक्त रूप से विद्यमान नहीं है, वह उससे उद्भूत नहीं हो सकता। पदार्थ में प्राण अव्यक्त रूप से वर्तमान है, प्राण में मन और मन में अतिमानस अव्यक्त रूप से विद्यमान है। सच्चिदा-नद सर्वत्र विद्यमान है। भेद केवल यह है कि निचले स्तर पर (जड़ तत्त्व में) वह सोया हुआ है, अचेतन तथा अवचेतन का आवरण लिए हुए है। किन्तु उसकी अवज्ञा भी सच्चिदानंद की ही अवज्ञा है। निम्न मूल्यों से उच्च मूल्यों के आविर्भाव के मूल में वही चेतन शक्ति है किन्तु उच्च मूल्यो के उदय होने पर निम्न मे व्यक्त मूल्यो की असलियत न मूल है मन या के उदय पर जगत को मिथ्या या

ववत समझ लेना विकृति है मनुष्य का स्थान ससार म महत्त्वपूण है क्योंकि केवल उसे ही मन की—बौद्धिक चेतना की प्राप्ति हुई है और फिर स्वभावतः उसी में ही अतिमन का उदय होगा। अभाव-पीड़ा आदि का कारण है मन का संकुचित और अविद्याग्रस्त होना। निम्न माया ही अविद्या है जिसके कारण मनुष्य अपने-आपको सर्वथा अलग एक इकाई के रूप में देखने लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संपूर्ण मानव जाति का विकास अति चेतना की ओर हो रहा है। अरविंद ने लिखा है कि अतिमन के उदय हो जाने पर जीवन एवं संसार का सारा परिदृश्य ही बदल जाएगा। अतिमन से युक्त मानव को श्री अरविंद ने विज्ञानपुरुष या अतिमानव कहा है।

अरविंद स्वर्ग का भूमिकरण करना चाहते हैं। वे यह मानते हैं कि मानवता के सारे संस्कार समाप्त हो चुके हैं तथा यह आवश्यक है कि उनका पुनः संस्कार किया जाय। अतिमानस की अवतारणा और अतिमानव का विकास उनकी इसी चिंतन-पद्धति की उपज है। उनकी धारणा है कि बुद्धि मनुष्य के सारे ध्यान को आर्थिक एवं भौतिक जीवन पर केंद्रित किए हुए है। परिणामतः मनुष्य एक प्रकार की 'सुसभ्य बर्बरता के गर्त के कगार' पर आ बैठा है। भविष्य की कोई कल्पना मनुष्य में संरक्षित नहीं रह गई है। अध्यात्म के प्रसार का व्यापक परिप्रेक्ष्य भी अस्तप्राय है। विज्ञान ने मनुष्य को अपार शक्ति का स्वामी तो अवश्य बनाया किन्तु मनुष्य के आभ्यंतर जीवन की एकसूत्रता का कोई समाधान उसके पास नहीं है। आदर्श और विचारों की इस अराजकता से विश्व को ऊपर ले जाने का जो मार्ग अरविंद को दिखायी पड़ा है, वह विकास (इवोल्यूशन) की महान् प्रक्रिया का मार्ग है। अरविंद यह नहीं मानते कि छोटे-छोटे उपदेशों अथवा आचरण के सामान्य नियमों पर जोर देने से मनुष्य सुधर सकता है। अरविंद का विश्वास है कि बुद्धि के चक्र में ही पड़कर मनुष्य अनेक अपावन कर्मों में शरीक होता है।

अरविंद ने जीवन के चरम लक्ष्य के रूप में अतिमानव (सुपरमैन) की कल्पना की है। उनका अभिमत है कि सृष्टि का विकास अतिमानवत्व की ओर रहा है। निश्चय ही यह एक महत् उपलब्धि है, इसकी संप्राप्ति के पश्चात् मानव परमानंद का अनुभव करता है। परमतत्त्व के प्रति पूर्ण समर्पण भाव के उदय हो जाने के पश्चात् ही अतिमानव की स्थिति प्राप्त होती है। मानव समर्पण के पश्चात् परम दिव्य ज्योति से साक्षात्कार करता है। वह दिव्य शक्ति स्वयमेव हमारा मार्गदर्शन करने लगती है। इसी अवस्था में अन्तश्चेतना का जागरण होता है। अतिमानव की स्थिति का प्रथम सोपान यही है। दूसरे सोपान में समर्पण के फल की प्राप्ति होती है। इसी स्थिति में दिव्य परमसत्ता के साथ निर्विशेष संबंध स्थापित हो जाता है। अरविंद यह नहीं स्वीकार करते कि अतिमानवत्व केवल एक व्यक्ति को प्राप्त होगा तथा शेष लोग उसके प्रत्यक्ष आधिपत्य में रहेंगे, प्रत्युत उनकी धारणा है कि अतिमानवत्व से युक्त सभी मनुष्य चिर अभिलाषित अतिमनुष्यत्व को प्राप्त कर लेंगे। संभव है कि अतिमानस का उदय पहले किसी समूह या व्यक्ति में हो किंतु उसके बाद वह फैलता ही जाएगा।

पंत और अरविंद दर्शन : पंत की विचारधारा में परिवर्तन को रेखांकित करने की प्रक्रिया में हमने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया था कि पंत प्रारंभ से ही एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि, जो उनकी भावदृष्टि से संवलित होकर रूप ग्रहण कर रही थी, को एक खास रचनात्मक एवं विचारात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील दीखते हैं। आलोच्य काल की कृतियों में पंत करीब-करीब अपनी मूल्यगत आस्थाओं को स्थिर कर चुके थे। युगवाणी, ग्राम्या तथा ज्योत्स्ना में कवि अपनी आध्यात्मिक अभिवृत्ति का स्पष्ट संकेत दे चुका था। कवि की मानसिकता का विकास काफी पहले से एक विशेष विचार बिंदु की तरफ हो रहा था। ऐसा नहीं था कि पंत अकस्मात्, बिना किसीपूर्वाधार अरविंद दर्शन के संपर्क में आए हों। निश्चय ही पंत का वैचारिक धरातल बहुत कुछ उसी प्रकार से निर्मित हो रहा था जिस प्रकार अरविंद का दार्शनिक चिंतन। पंत इन दिनों मूल्यों के विकट संघर्ष के बीच अपनी दृष्टि की इयत्ता को रेखांकित करने के लिए प्रयत्नशील थे। गांधीवाद एवं मार्क्सवाद से क्रमशः उनका मोह भंग होता जा रहा था। उनका यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि लोक-संगठन एवं मनःसंगठन एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि वे एक ही युग चेतना के बाहरी तथा भीतरी रूप हैं। इन दोनों विचारधाराओं मे एकपक्षीय प्रतिपादन की ही बहुलता है। भौतिक उन्नति किसी विश्वव्यापी एवं स्थायी मूल्य की सृष्टि नहीं कर सकती क्योंकि उसमें 'संस्कृति' के मूलभूत उच्चादर्शों का विकास सभव नहीं हो पाता। पंत की विचारधारा के सनातन प्रवाह को विश्लेषित करने की प्रक्रिया में इतना तो स्पष्ट ही है कि ज्योत्स्नाकाल से ही भौतिकवाद की तरफ उनकी अनास्था रूप-ग्रहण कर रही थी। 'ग्राम्या' में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को विशेष प्रश्रय देने के बावजूद उनके अंतर्मन में यह धारणा बद्धमूल हो रही थी कि आध्यात्मिक विकास मे ही व्यक्ति की पूर्ण सांस्कृतिक चेतना का प्रतिफलन हो सकता है। कवि का जिज्ञासु मन जड़वाद व चेतनवाद में सामंजस्य के सूत्रों की खोज कर रहा था। अरविंद ने चूंकि ऐसा सामंजस्य खोज निकाला था और इस सामंजस्य का आधार प्राचीन अद्वैतवाद को बताया था, वेद, गीता आदि में भी उसी अपनी अभीष्ट व्याख्या को खोज निकाला था अतः पंत का स्वाभाविक रूप से अरविंद दर्शन की तरफ आकर्षण हुआ। उन्होंने महसूस किया कि मार्क्सवाद केवल आर्थिक समता के ऊपरी सिद्धांत का पोषक है। १९वीं शताब्दी की विषम परिस्थितियों ने ही मार्क्स की इस चिंतन पद्धति को विकसित किया था अतः उनकी दृष्टि विभाजन व विश्लेषण-प्रधान थी। संश्लेषण तथा सामंजस्य की उच्च सांस्कृतिक कल्पना उनके लिए विरल ही थी। परिणामतः वह एक जड़वादी दर्शन होकर ही रह गया। इसके विपरीत सूक्ष्मदर्शी,तत्त्वज्ञ भारतीय मनीषियों ने समन्वित दृष्टि से पदार्थ व चेतना दोनों को देखा था और जड़ तथा चेतन की अद्भुत समरसता का प्रतिपादन किया था अतः पंत को अपना दृष्टिकोण आदि परंपरा के अधिक निकट लगा। पंत अरविंद के व्यक्तित्त्व एवं उनकी चिंतन पद्धति को विश्व की महानतम उपलब्धि मानते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अरविंद दर्शन समन्वय के व्यापक सिद्धांत पर आधारित है। वे जगत् और ब्रह्म में से किसी का भी निषेध नहीं करते। उनके अनुसार जीवन में भौतिकता तथा आध्यात्मिकता- दोनों की आवश्यकता है। कवि पंत पर अरविंद

के मत का व्यापक प्रभाव पड़ा। आलोच्य काल की कृतियां अन्तश्चेतना और मानवता को पर्याप्त प्रकर्ष देती हैं। पंत ने अपनी इन रचनाओं में दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया है कि अविकसित चेतना एकांगी होती है, इसीलिए उन्होंने भूत और चेतना, अध्यात्म और भौतिकता तथा हृदय और मस्तिष्क के पूर्ण समन्वय का उद्घोष किया है। 'स्वर्ण' शब्द को व्याख्यापित करते हुए पंत ने उसे चेतना के प्रतीक के रूप में व्याख्यापित किया है। पंत जब स्वर्णकिरण में कहते हैं :

जन मन के विकास पर निर्भर
सामाजिक जीवन निश्चित
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर
आत्मिक विकास पर अवलंबित।

तो निश्चय ही अरविंद दर्शन की समन्वयवादी प्रवृत्ति का स्पष्ट दर्शन हो जाता है।

कवि यह विश्वास करने लगा कि केवल आर्थिक समता व्यापक समता नहीं है। व्यापक समता के लिए तप, श्रद्धा, संयम आदि की अत्यधिक आवश्यकता है। जब तक बाह्य तथा आभ्यंतरिक वृत्तियों में समत्व भाव का उदय नहीं होगा तब तक मनुजता अपना चरमोत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सकेगी। स्वर्णकिरण में पंत ने लिखा है :

व्यक्ति विश्व में व्यापक समता
हो जन के भीतर से स्थापित
करें आत्मनिर्माण लोक गण
आत्मोज्वल भू मंगल के हित
बहिरंतर जड़ चेतन वैभव
संस्कृति में कर निखिल समन्वित।

कवि का विश्वास है कि मानवता का पूर्ण विकास किए बिना सभ्यता के बाह्य उपकरणों का संहारक प्रभाव ही पड़ेगा। पूर्ण विकास की कल्पना का स्रोत अरविंद दर्शन में खोजा जा सकता है।

'स्वर्णकिरण' की प्रथम रचना में ही कवि का अरविंद दर्शन के प्रति आकर्षण व्यक्त हो गया है। इस रचना में किरण के प्रतीक के माध्यम से ब्रह्म की शक्ति के रूप में चेतना के अवरोहण का चित्र उपस्थित किया गया है। उस दिव्य ज्योति के संस्पर्श मात्र से भूत जीवन किस तरह चेतनमय हो जाता है, इसका एक उदाहरण देखिए :

हंसी, तो स्वर्णकिरण,
शिखर आलोक वरण।
विचरती स्वर्णकिरण,
धरा पर ज्योति चरण।

अरविंद के जड़-चेतन में एक ही चैतन्य तत्त्व की व्याप्ति की मान्यता को व्यक्त करते हुए पंत कहते हैं :

"यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल

इसमें चिर आनंद भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल।
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रंग-बादल,
मेरी आकांक्षा की विद्युत्,
बहती इनमें प्रतिपल।"

पंत ने अरविंद की ही भांति भौतिक संगठन को एकांगी तथा बाह्य माना है। उनका विश्वास है कि आध्यात्मिकता से समन्वित होकर ही वह श्रेयस को प्राप्त कर सकती है। मनुष्य को भूदेवतर बनाने में मुख्य बाधा बुद्धि है, जो तर्कों एवं सिद्धांतों के व्यर्थ ऊहापोह में उलझी रहती है। संभवतः वे यह मानते हैं कि हमें मानव शिक्षा का नूतन शिलान्यास करना होगा :

शिलान्यास मानव शिक्षा का हमको करना नूतन,
आत्म ऐक्य औ व्यक्ति मुक्ति का स्वर्ग सौध रच शोभन।

आज केवल बहिर्चेतना जागृत है और अंतर्चेतना निद्रित अवस्था में है। भौतिक वैभव और आत्मिक ऐश्वर्य का संयोजन नहीं हो सका है। दर्शन और विज्ञान में भी समुचित संयोजन का अभाव है। पंत ने अरविंद की ही पद्धति पर सृष्टि का विकास भी निरूपित किया है। ब्रह्म की चिद्शक्ति से ही आकाशतत्त्व की उत्पत्ति होती है और आकाश से पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति होती है। एक ही चेतना भौतिक तत्त्वों के रूप में बदल जाती है और साथ ही साथ इस भौतिक जगत् पर शासन भी करती है :

नभ से पवन, पवन से जल
लालायित यह चेतन अमर।
सोई धरती से लिपट जगाने
उसे युगों की जड़ता हर।

स्वर्णकिरण की 'चंद्रोदय' शीर्षक रचना में कवि ने अरविंद द्वारा प्रतिपादित 'अधिमानस' स्थिति का और 'द्वासुपर्णा' शीर्षक में कवि ने अरविंद दर्शन में 'अतिमानव' के सिद्धांत को स्थिर किया है।

ऊर्ध्व स्तर से चेतना के निम्न स्तर पर अवरोहण करने से जो परिवर्तन निम्न स्तर में होते हैं, उनको चित्रित करते हुए कवि कहता है :

जलता मन मेघों का सा घर
स्वप्नों की ज्वाला लिपटा कर
दूर, क्षितिज के पार दीखती
रेखा क्षितिज की नूतन।

इसी प्रकार पंत ने अरविंद से प्रभावित होकर जड़-चेतन का समन्वय भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है—उदाहरणार्थ तम प्रकाश, मर्त्य अमर, शरीर आत्मा आदि का समन्वय इस प्रकार व्यक्त किया है :

तम प्रकाश हो, जड़ चेतन हो, इंद्रिय हो,
आत्मा तन मन हो मर्त्य अमर को
एक पंक्ति में पूरक मान बिठाओ।

इसी प्रकार अरविंद ने जैसे 'स्थूल-सूक्ष्म', 'श्रेय-प्रेम' एवं 'अधः-ऊर्ध्व' का समन्वय किया है उसी प्रकार पंत ने भी किया है। इस अध्ययन के क्रम में यह भी विचारणीय है कि किस सीमा तक पंत जी ने अरविंद दर्शन के प्रभाव को अपने काव्य में आत्मसात किया। पंत के जीवन-दर्शन तथा अरविंद के जीवन-दर्शन में बहुत बड़ा अंतर भी है जिसको प्रायः विचार का केन्द्र नहीं बनाया जाता। कुछ आलोचकों ने यह प्रतिपादित किया है कि पंत का नवीन जीवन-दर्शन अरविंद दर्शन की कार्बन कापी मात्र है। यह मानना नितांत अवैज्ञानिक एवं पक्षपातपूर्ण है।

अरविंद दर्शन से पंत के जीवन-दर्शन का जो पार्थक्य है उसका सारांश इस प्रकार है :

अरविंद दर्शन तो केवल भारतीय औपनिषदिक चैतन्य का युगानुरूप दार्शनिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है और उसकी इतनी ही विशेषता है कि उसने मध्ययुगीन द्रष्टाओं की तरह जीवन की उपेक्षा अथवा बहिष्कार नहीं किया है। अरविंद दर्शन अंतश्चैतन्य तथा अंतर्बोध को सर्वोपरि मूल्य देते हैं, किंतु पंत मन या चैतन्य को जीवन का एक प्रबुद्ध अंश भर मानते हैं। इस तरह पंत जीवनतत्त्व को ऋतचित् से भी अधिक मूल्यवान मानते हैं और जीवन के सहज बोध को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं।

अरविंद दर्शन की वैयक्तिक-सामुदायिक मुक्ति और पंत की सामूहिक मुक्ति में एक ध्यातव्य अंतर है—वह है 'एरिया' का अंतर। अरविंद ने जिस मुक्ति की कल्पना की है, वह एक 'एरिया' या सीमित क्षेत्र में अतिमानस के कुछ साधकों के बीच अवतरित होगी और फिर वे विशिष्ट चैतन्य से युक्त व्यक्ति उस मुक्ति को नयी सम्बोधि के रूप में समग्र विश्व में प्रसारित करेंगे। किंतु पंत इस व्यक्ति-विशिष्ट 'एरिया' को स्वीकार नहीं करते। इनकी धारणा में जो मुक्ति है, वह सही माने में सामूहिक मुक्ति होगी। वह कुछ चुने हुए व्यक्तियों के माध्यम से समाज में नहीं फैलेगी। संक्षेप में यही अंतर है।

अध्ययन के प्रारंभ में ही हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था कि पंत जैसे असाधारण प्रतिभा-संपन्न कवि से यह अपेक्षा करना या उन पर यह आरोप लगाना कि उन्होंने आलोच्यकाल की कृतियों में मात्र अरविंद दर्शन का पिष्टपेषण किया है न तो यथार्थ ही है और न संगत ही। जीवन को परिभाषित करने का दृष्टिकोण तथा उसके लिए समरसतापूर्ण उच्चाकाश की खोज के लिए कवि ठीक निजी तरीके से संवेदित होता रहा। अरविंद दर्शन में कवि को अपनी ही चिंतन रेखा का विकास मिला जिसे उसने अत्यंत उपकृत भाव से स्वीकार एवं आत्मसात किया। समन्वय पंत काव्य का वादी स्वर है जो कि दर्शन से लेकर राजनीति, प्रकृति से लेकर विज्ञान, गीततत्त्व से लेकर लयात्मकता सबमें लक्षित है। उनमें एक स्तर मान पूरी काव्ययात्रा में अपनी अतलस्पर्शी तरलता के साथ विद्यमान रहता है। अरविंद के दार्शनिक अध्यात्मवाद

से प्रभावित होने के बावजूद भी काव्य के अदरूनी सौंदय को कोई क्षति नहा पहुची है। उनका गहन व्यक्तित्व अनेक संग्रहों में खुलता, बढ़ता और उठता हुआ 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'वाणी', 'अतिमा', 'लोकायतन' आदि में अधिक समृद्ध होकर अधिक अनुभवी, पुष्ट और गंभीर होकर फिर अपने उज्ज्वल, सहज, स्निग्ध और नैसर्गिक रूप मे सामने आता है।

पंत का चेतनावादी काव्य : 'ग्राम्या' के पश्चात् की रचना-प्रवृत्ति को स्वयं पंत ने चेतनावादी काव्यधारा के नाम से अभिहित किया है। पंत स्वर्णकिरण से लेकर लोकायतन तक की कृतियों को चेतनावादी काव्य के विभिन्न सोपानों के रूप में स्वीकार करते हैं। लोकायतन के पश्चात् प्रणीत हुई कृतियों को वे विकासवादी काव्य की संज्ञा देना पसंद करते हैं। अतः इस उपशीर्षक के अंतर्गत हम पंत की इन कृतियों का अध्ययन करेंगे :

स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, अतिमा, सौवर्ण, वाणी, कला और बूढ़ा चांद, लोकायतन।

स्वर्णकिरण : 'स्वर्णकिरण' काव्य-संग्रह १९४७ में प्रकाशित हुआ। मानसिक एव शारीरिक रुग्णता के पश्चात् कवि के निजी जीवन में आस्था का नये सिरे से संचार होता है। एक अद्भुत, अनुपम दिव्य जीवन की अनुभूति से कवि आप्लावित हो उठता है जिसे वह 'स्वर्णकिरण' की संज्ञा देता है। प्रतिकार्थ में इसे ऊर्ध्व चेतना का अभ्युदय समझा जा सकता है। स्वर्णकिरण की भूमिका में पंत लिखते हैं, "अपनी दीर्घ अस्वस्थता के पश्चात् स्नेही पाठकों का स्वर्णकिरणों से अभिनंदन करने में मुझे हर्ष हो रहा है। उनके वातायनों में यदि स्वर्णकिरण प्रवेश पा सकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।" कवि की आकांक्षा है कि उसके पाठक भी स्वर्णकिरण की ऊर्ध्व चेतनात्मक स्थिति का साक्षात्कार कर सकें। स्वर्णकिरण में कवि अंतश्चेतना तथा अंतर्जीवन के संगठन को अत्यन्त महत्त्व प्रदान करता है क्योंकि उसका विश्वास है कि इस युग में भौतिक दर्शन का प्रभाव-क्षेत्र तो बढ़ता जा रहा है किंतु इनके महत्त्व की उपेक्षा हो रही है।

स्वर्णकिरण में आध्यात्मिक तथा प्रकृति संबंधी कविताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कविताएं हैं जिन्हें कवि 'दीप्त लावण्य के स्थल' की संज्ञा देता है। भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही साथ कवि रागात्मक मूल्यों का भी तिरस्कार नहीं करता। सौंदर्यबोध के परिष्कार के अभाव में उच्च सांस्कारिक मूल्यों की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

स्वर्णकिरण की अधिकांश कविताओं में अरविंद दर्शन की उच्चाशयता को सुष्ठु काव्य-रूप में अभिव्यक्त करने की कोशिश की गई है। भौतिक जीवन-दर्शन के प्रभाव के कारण इस युग का मनुष्य जीवन के कुरूप पक्षों को ही चरम सत्य मान बैठा है। इस एकांगी तथा बौद्धिक-भौतिक विकास के कारण वह अहमन्यता एवं स्पर्धा में प्रलिप्त हो गया है। इसीलिए कवि ने अंतर्बाह्य के विकास के आधार पर जीवन के सुखद, सुंदर तथा समग्र रूप की परिकल्पना की है जो इस प्रकार है :

कब विश्वास प्रम आशा
पुरुषाथ उच्च अभिलाषा,
कला सृष्टि, सौंदर्य दृष्टि
होगी जीवन परिभाषा ।

कवि की स्पष्ट धारणा है कि बिना बहिर्दृष्टि को विज्ञान तथा अंतर्दृष्टि को ज्ञान से समन्वित किए जीवन में सुख-शांति नहीं प्राप्त हो सकती। कवि ने इसी ज्ञान को स्वर्ण-किरण के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। कवि इस प्रकार के संयोग को अनिवार्य मानता है। 'ज्वार' के रूपक में बांधकर कवि इस तथ्य की अभिव्यक्ति करता है :

इस धरती के उर में है,
उस शशि मुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट
जीवन वारिधि का उद्यतन ।

कवि का मंतव्य संभवतः यह है कि यद्यपि चेतन मानव भू-जीवन की जड़ताओं से सीमित और आबद्ध है किंतु जब उसे आंतरिक चैतन्य के सौंदर्य और आह्लाद (शशिमुख) की अनुभूति होगी तब वह इन सारे बंधनों की कारा को तोड़कर उसके साक्षात्कार के लिए व्यग्र हो उठेगा।

'तमस' के प्रभाव के कारण जीवन के विराट् सौंदर्य की प्रतीति मनुष्य को नहीं हो पाती। आत्मा ही वह चिरंतन तत्त्व है जिसके ज्ञान से सत् एवं सुख-शांति की उपलब्धि हो सकती है। उपनिषदों में उल्लिखित आत्मतत्त्व की महनीयता का उल्लेख करते हुए कवि कह उठता है :

मृत्युहीन रे यह पुकार मानव आत्मा की निश्चय
सत्य ज्योति अमरत्व और वह बढ़े अनागत निर्भय।
वैदिक ऋषि के अमृत नित्य बचनों की जग में हो जय,
वे उपनिषद्, समीप बैठ रे, ग्रहण करें हम आशय।

पंत के लिए प्रकृति एक अद्भुत आकर्षण से युक्त सत्ता रही है। इस काल तक आते-आते उनका जीवन के साथ ही साथ प्रकृति के प्रति भी दृष्टिकोण बदल गया है। अब उनकी प्रौढ़ कल्पना ने प्रकृति के रंग-रूप और भावाकुल सौंदर्य को प्रगाढ़ सात्त्विक रूप दे दिया है। 'हिमाद्रि', 'स्वर्ण निर्झर', 'उषा' आदि कविताओं में कवि ने गाढ़े और तरल रंगों से प्रकृति के सौंदर्य को चित्रित और सूक्ष्म भावों से संवेदित किया है। प्रकृति के इस रूप में मधु-क्रीड़ाओं का जो आरोप है उसमें विलासपूर्ण उद्वेग के स्थान पर चेतन आकुलता आध्यात्मिक प्रयोजन सिद्ध करती है। मध्ययुग के संतों और भक्तों ने अपने परम सत्य (भगवान) की रूप-कल्पना को प्रस्तुत और अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए इसी प्रकार प्रकृति का आश्रय लिया है। परंतु पंत प्रकृति के सौंदर्य से इस ओर बढ़े हैं, इस कारण उनका प्रकृति-सौंदर्य सजीव है जो अपनी गंभीरता में विराट् हो गया है। विराट् की इस भावना में पंत ने प्रकृति का भीषण रूप स्वीकार नहीं किया, उन्होंने सौंदर्य के व्यापक महत् में उसे व्यक्त किया है। कवि अब प्रकृति को संस्कारवादी कल्प-

नाओं और प्रसगों से अलकृत करके उसमे गभीर प्रभाव का समावेश करता है

नील पक घसा अश जिसका
उस श्वेत कमल-सा शोभन
नभो नीलिमा में प्रभात सा
चांद उनींदा हरता लोचन ।

(प्रभात का चांद)

'हिमाद्रि' शीर्षक कविता निश्चय ही संग्रह की एक उत्कृष्ट कविता है। कवि विस्मय-विमुग्ध होकर उसका चित्रण करता है :

कब से शब्दों के शिखरों में
तुम्हें चाहता करना चित्रित
शुभ्र शांति में समाधिस्थ हे
शाश्वत सुंदरता के भूभृत् ।

स्वर्णकिरण की चित्रगरिमा अद्भुत है । इस संदर्भ में एक चित्र अपनी भावमयता एवं प्रांजलता के कारण दर्शनीय है :

सुप्त स्वर्ण-चक्रांगों से सुकुमार उरोजों पर स्थित
शुभ्र सुधा के मेघों की जाली उठती, गिरती नित ।

० ० ०

ज्योति-भंवर-सी सुधर नाभि प्रिय रजत फुहार उदर में
स्वर्ण वाष्प का घन लटका जघनों के माणिक सर में ।

० ० ०

स्वर्णिम निर्झर सी रति सुख की जंघाओं पर पेशल
लिपटी जीवन की ज्वाला निज दीपन करती शीतल ।

'अशोक वन' में कवि ने अपने दार्शनिक चिंतन को पौराणिक रूपक द्वारा व्यक्त किया है। कवि ने इसके माध्यम से एक प्रतीक को भी उभारने का प्रयत्न किया है। जड़ में जीवन, जीवन में मन, मन में चेतना का किस प्रकार संचरण हुआ, कवि ने इसका स्पष्टीकरण 'उपक्रम' में और चरित्र-चित्रण 'अशोक वन' में किया है। स्वर्णकिरण में अन्य श्रेष्ठ कविताएं भी हैं, जैसे इन्द्रधनुष, मत्स्यगंधायें, पूषण, ऊषा, अगुंठिता आदि। इन कविताओं को समन्वयवादी कह देने भर से समीक्षा का दायित्व पूरा नहीं होता। इन कविताओं में कवि ने अपनी समस्त जीवन अनुभूतियों को संगठित किया तथा संवेदना के एक विशिष्ट धरातल पर उन्हें उद्घाटित किया है।

स्वर्णधूलि : 'स्वर्णधूलि' के विज्ञापन में कवि कहता है, "स्वर्णधूलि का धरातल सामाजिक है, इस संग्रह में कुछ सन् १९४१ के गीत भी सम्मिलित हैं। 'संन्यासी का गीत' श्री स्वामी विवेकानंद कृत 'सांग आफ द संन्यासिन्' का रूपांतर है, जो १९३५ की रचना है। अंत में वैदिक मंत्रों तथा तत्संबंधी अध्ययन से प्रभावित होकर कुछ छंद जोड़ दिए हैं, आशा है, पाठकों को वे रुचिकर प्रतीत होंगे। मानसी स्वतंत्र रूपक है।" इस विज्ञापन से इतना स्पष्ट है कि स्वर्णधूलि में संग्रहीत रचनाओं का मूल स्वर सामाजिक

है पत लिखते है स्वणधूलि का धरातल अधिकतर सामाजिक है जैसे वही चेतना धरती की धूलि मे मिलकर एक नवीन सामाजिक जीवन के रूप म अकुरित हो उठी है कवि यह जांच करना चाहता है कि दर्शन ने जो दृष्टि उसे प्रदान की है उसका व्यावहारिक जीवन में किस सीमा तक उपयोग किया जा सकता है। लोक-मंगलाशा से प्रेरित ये कविताएं भिन्न-भिन्न रचनाभूमियों का स्पर्श करती हैं। लोक-जीवन में वस्तुवाद तथा अध्यात्मवाद के समन्वय की चिरअभिलाषा भी पूर्णत: ध्वनित होती है।

'स्वर्णधूलि' में आर्षवाणी के अंतर्गत वैदिक साहित्य के अध्ययन से प्रभावित जो रचनाएं हैं वे अक्षरश: वैदिक छंदों के अनुवाद नहीं हैं। पंत के भावबोध ने मंत्रों को जिस प्रकार ग्रहण किया वह उनका मुख्य तत्त्व या स्वर है। इसके अतिरिक्त स्वर्णधूलि मे सामाजिक, सैद्धांतिक, राष्ट्रीय प्रतीकात्मक, आलोचनात्मक, विनयपरक, मानसिक तथा काव्यरूपक आदि कविताएं हैं।

सामाजिक कविताओं में पतिता, परकीया, ग्रामीण इत्यादि हैं। पंत जी नर-नारी मिलन को आत्मा की प्रगति में बाधक नहीं मानते। हमारे समाज में यह धारणा बद्धमूल हो गयी है कि स्पर्श-मात्र से नारी की पवित्रता का अंत हो जाता है। पंत का इन गलित आदर्शों में कोई विश्वास नहीं है। 'पतिता' शीर्षक कविता में कवि स्पष्टत: नवीन मूल्यों के प्रति प्रतिश्रुत प्रतीत होता है :

मन से होते मनुज कलंकित
रज की देह सदा से कलुषित
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूंगा मैं न कलंकित।

सैद्धांतिक कविताओं में 'सामंजस्य', 'लोकसप्त', 'स्वप्न निर्बल' की गणना की जा सकती है। 'सामंजस्य' शीर्षक रचना में कवि ने भाव-सत्य और वस्तु-सत्य के समन्वय मे पूर्ण मानवता को देखा है। जीवन में पूर्ण संतुलन की स्थापना इन दोनों के अनिवार्य समन्वय से ही संभव है। कवि को यह प्रेरणा संभवत: श्री अरविंद के 'अंतर्बाह्य' अथवा भौतिक आध्यामिक संगठन के सिद्धांत से मिली है :

पंख खोल सपने उड़ जाते,
सत्य न बढ़ पाता गिन-गिन पग,
सामंजस्य न यदि दोनों में
रखती मैं, क्या चल सकता जग?

'लोकसत्य' शीर्षक कविता में कवि ने समकालीन मनुष्य के संकट की तरफ संकेत किया है। आज का मनुष्य संकीर्ण जीवन स्थितियों को ही सत्य मान बैठा है, परिणामत: उच्च मानवीय मूल्यों का संस्कार संभव नहीं हो सका है :

मुझको लगता आज वृत्त में घूम रहा मानव मन,
भौतिकता के आकर्षण से रण जर्जर जग जीवन!
समतल व्यापी दृष्टि मनुज की देख न पाती ऊपर
देख न पाती भीतर अपने, युग स्थितियों से बाहर।

'चौथी भूख' कविता में कवि ने विभिन्न भूखों का उल्लेख किया है किंतु इनमें से कोई भी हितकर नहीं है, क्योंकि ये सभी एकांगी हैं। मन की चौथी भूख का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है :

मन गोचर या अगोचर
क्या नहीं कोई ऐसा अमृत धन
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन ?
जाति वर्गों से निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति में बंध
पुण्य जीवन करें यापन
धरा हो ज्योति पावन !

'नरक में स्वर्ग' संग्रह की एक लंबी कविता है। रूपक तत्त्वों की व्यंजना से कवि ने कथा-काव्य की सृष्टि का प्रयत्न किया है। कवि 'क्षुधा' और 'सुधा' नारियों के प्रतीक से कथ्य की संयोजना के लिए प्रयत्नशील दीखता है। 'क्षुधा' एवं 'सुधा' की मानसिक स्थिति का चित्रण कवि उतनी सूक्ष्मता एवं गहराई से नहीं करता क्योंकि इन पात्रों की कल्पना एक निश्चित उद्देश्य से की गई है। प्रतीकों की सटीक कल्पना ही इस कविता में काव्यगुण का अभिधान करती है तथा कवि का मंतव्य भी संप्रेषित हो जाता है। 'क्षुधा' एवं 'सुधा' आतरिक वृत्तियों की प्रतीक हैं। राजकुमारी सुधा में ऊर्ध्व स्वर्गीय चेतना है तथा 'दैन्य मे खिली' 'क्षुधा' में स्वर्णधूलि की समतल, पार्थिव चेतना है। इन दोनों के प्राणो का परिणय ही हितकर है :

पंकजिनी की क्षुधा, पंक में खिली दैन्य के निश्चय,
स्वर्णकिरण थी सुधा धरा की रज पर उतरी सुहृदय।
दोनों के प्राणों का परिणय था जन के हित सुखमय
स्वर्ग धरा का मधुर मिलन हो ज्यों स्रष्टा का आशय।

स्वर्णधूलि में संग्रहीत 'मर्मकथा' शीर्षक कविता अपनी अद्‌भुत गीतात्मकता तथा रसप्रवणता के कारण उल्लेखनीय है। भाषा का अत्यंत सतर्क एवं संगीतात्मक प्रयोग इस कविता में हुआ है। कवि शब्द की अंतरात्मा से परिचित है और उसे वह अत्यंत सहजता तथा कौशल के साथ गीत की आंतरिकता में उद्‌घाटित कर देता है :

बांध दिये क्यों प्राण-प्राणों से
तुमने चिर अनजान-प्राणों से
गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा
प्राणों की न रुकेगी
बढ़ती विरह व्यथा

'प्राणाकांक्षा' की शब्द-योजना भी दर्शनीय है :

बज पायल छम,
छम छम।

उर की कपन मे निमम
बज पायल छम
छम छम।

इस कविता में ऐसा प्रतीत होता है मानो समग्र भावमयता भाषा के संस्कार से मूर्त हो उठी हो। इस संग्रह में 'ज्योतिझर' निर्झर, मुक्तिबंधन, प्रतीति जैसी सुंदर कविताएं सकलित हैं जिनमें कवि अत्यंत तन्मय होकर भावस्थितियों का उद्घाटन करता है।

इस संग्रह में 'मानसी' नाम का एक संगीत रूपक भी संकलित है। इसका प्रणयन सन् १९४६ में कवि के दक्षिण-प्रवास के दौरान हुआ था।

मानसी में कुल सात दृश्य हैं। इस संगीत रूपक में कवि ने नर-नारी के पारस्परिक संबंध की अत्यंत संवेदनशील एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। कवि की स्पष्ट अवधारणा है कि समकालीन जीवन-संदर्भों में नर-नारी संबंधी सामंतीय मूल्य चुक गए हैं। विकल्प के रूप में कवि विकसित राग चेतना को प्रस्तुत करता है। उसका विश्वास है कि राग चेतना ही वर्तमान मानव-संस्कृति को सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकती है।

इस संगीत रूपक में पात्रों की परिकल्पना नवयुवक और नवयुवतियों के रूप में की गई है। प्रथम दृश्य में नवयुवक कोकिल से नव प्रणयगान गाने की याचना करता है। उन्मुक्त एवं निर्बंध-प्रेम की आकांक्षा व्यक्त करता है :

पिक, गाओ !
प्रीति मुक्त हो, बने न बंधन
विरह मिलन देवें आलिंगन
हों प्रतीति-मन नर-नारी जन।
दिशि दिशि ज्वाल जलाओ।

कोकिल प्रेम की शापग्रस्तता का उल्लेख करती है। इस कथन पर युवक कहता है कि प्रियतमे ! तुम ताप-शाप से सुरक्षित रहो तथा प्रणय के विष का स्वेच्छा से पान मत करो। कोई ऐसी राह पकड़ो जहां दुःख, मनस्ताप की काली छाया तुम्हारा स्पर्श न कर सके। युवती इसे सहज संभाव्य नहीं समझती क्योंकि प्रेम मन की अत्यंत स्वाभाविक प्रवृत्ति को द्योतित करता है। दूसरे दृश्य में पपीहे के माध्यम से कवि ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। जीवन की सर्वांग पूर्णता के लिए प्रेम का तत्त्व न केवल आवश्यक है वरन् अपरिहार्य है। कवि के शब्दों में :

प्रेम मुक्ति है, प्रेम ही सृजन,
सुख-दुःख में आनंद जहां।

तीसरे दृश्य में नारी को कई वर्गों में विभाजित किया गया है। एक वर्ग है गृहिणी नारियों का जिनका संसार बहुत छोटा है। सहज नारीत्व की स्थिति से भी वे वंचित हैं। दूसरा रूप है ब्रज की गोपियों का :

राधेश्याम, राधेश्याम।
विश्व रख है ललाम।

आई थी एक बार
हम तन मन प्राण वार।
सुत मधु मुरली पुकार।
छोड़ नेह गेह द्वार।

तीसरा वर्ग भिक्षुणियों का। इस वर्ग ने तृष्णा को दुःख का कारण माना। बुद्ध-मार्ग का अनुसरण कर इन्होंने तृष्णा और ईहा की विभिन्न स्थितियों पर विजय प्राप्त की तथा 'निर्वाण' की आनंदमय स्थिति से साक्षात्कार किया। किंतु नारी-जीवन की पूर्णता इस मार्ग में भी सिद्ध न हो सकी।

चौथे दृश्य में नेपथ्य गीत के माध्यम से कवि अत्यधिक भोग एवं त्याग मार्ग को आत्यंतिक घोषित करता है। प्रकारांतर से कवि गोपियों के घोर आसक्ति तथा भिक्षुणियों की चरम विरक्ति को अपूर्ण सिद्ध करना चाहता है। इसी क्रम में कवि आधुनिका की चर्चा करता है। आधुनिका में शरीर का सौंदर्य भले ही उपलब्ध हो जाय किंतु हृदय की गरिमा का उसमें सर्वथा अभाव है। मात्र 'तन की लघिमा' से नारीत्व को पूर्णता नहीं प्राप्त हो सकती, ऐसी कवि की अवधारणा है।

पांचवें दृश्य में दो नेपथ्य गीत हैं। पहले नेपथ्य गीत में शारदा से अभ्यर्थना की गई है:

आओ, नव नारी बन आओ,
जग की शोभा में लिपटाओ
नव जीवन में सुधा पिलाओ,
श्री विलासिनी!

दूसरे गीत में शारदा कवि की प्रार्थना को स्वीकार कर लेती हैं तथा आश्वासन देती हैं:

लो, आज तुम्हें छूती हूं मैं अपने आभा के अंचल से,
मानव के स्वर्गीय स्वप्नों को मैं जीवन की देही दूंगी।

छठे दृश्य में कवि की कल्पना की साकार प्रतिमा 'नवनारी' का अवतरण होता है। अखिल सृष्टि की आशय, जीवन के असंदिग्ध संकल्प तथा सृजन बिंदु के मूलाधार के रूप में कवि उसका अभिनंदन करता है। अब नारी मात्र हृदय सत्ता का असीम विस्तार है:

नारी अब न देह अवगुंठन,
केवल हृदय, हृदय वह मोहन।

सातवें दृश्य में 'भू के श्रमिक' के आदर्श की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी है। कवि की ऐसी धारणा है कि स्त्री-पुरुष के प्रेम की सार्थकता इस बात में है कि वह लोकोत्तर जीवन की चिंता छोड़कर धरती से अनुराग रखना सीखें तथा युग-युग से जमी हुई काई को साफ करने के लिए कृतसंकल्प हों।

संक्षेप में इस काव्य-रूपक के माध्यम से पंत ने 'पूर्ण नारी' की अपनी चिर परिकल्पना को एक सार्थक रूप प्रदान किया है। मानसी एक काव्यात्मक नाट्य-रूपक है। इस रूपक में युग-युग से अज्ञान और दासता की शृंखला में जकड़ी हुई नारी को नव-

जागरण की पटभूमि पर स्थापित करके और उसकी अगम असख्य मांगलिक रूपा और शक्ति प्रतीको को बंधनमुक्त कर नये प्रकाश मे रखा गया है युवक-युवती का पारस्परिक प्रम दो प्राणों का बधन नहीं है, वह अस्थिर विरह मिलन क्षण भी नहीं है। वह जीवन के अनंत सृजन की असीम मुक्ति है।

उत्तरा : उत्तरा सौंदर्य-बोध तथा भाव-ऐश्वर्य की दृष्टि से पंत की अब तक की रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट कृति है। उत्तरा के पद नवमानवता के मानसिक आरोहण की सक्रिय चेतन आकांक्षाओं से झंकृत हैं। चेतना की ऐसी क्रियाशीलता उनकी अन्य रचनाओं में नहीं मिलती है। उत्तरा का प्रकाशनकाल १९४९ है। कवि ने इस संग्रह का नाम 'उत्तरा' इसलिए दिया है क्योंकि इसमें उसकी उत्तरकालीन रचनाएं संग्रहीत हैं। इस सग्रह में कुल ७५ कविताएं संकलित हैं जो विभिन्न भावभूमियों पर प्रणीत हुई हैं। उत्तरा की कविताओं के वर्गीकरण का आधार उनके वक्तव्य में ही प्राप्त हो जाता है, "उत्तरा में मेरी इधर की कुछ प्रतीकात्मक, कुछ धरती तथा युगजीवन संबंधी, कुछ प्रकृति तथा वियोग-शृंगार-विषयक कविताएं तथा कुछ प्रार्थनागीत संग्रहीत्त हैं।"

पंत जी की मान्यता है कि नवीन युग का आगमन अवश्यंभावी है। उसमें सभी क्षेत्रों में सामरस्य तथा परिष्कार होगा। कवि का विश्वास है कि 'युगों के नीरव विचरण' से ही नवयुग का सहज पदार्पण होगा :

> विचरो प्रिय, उत्तरा गीत पथ
> बढ़ते अगणित ध्वनित चरण,
> विचरण करते नीरव युग शत शत !

कवि ऊर्ध्व मनोभूमि से न केवल साक्षात् कर चुका है प्रत्युत उसी पर स्थित होकर घोषणा करता है :

> बदल रहा अब स्थूल धरातल
> परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल
> विस्तृत होता बहिर्जगत अब
> विकसित अंतर्जीवन अभिमत !

इस ऊर्ध्वचेतनात्मक स्तर से कवि जब अधोचेतनात्मक स्तर की तरफ दृष्टिपात करता है तो उसका मन करुणाप्लावित हो उठता है :

> गरज रहा उस व्यथा भार से।
> गीत बन रहा रोदन
> आज तुम्हारी करुणा के हित।
> कातर धरती का मन।

ऊर्ध्वचेतना के निम्न स्तर पर संचरण करने से व्यापक परिवर्तन होगा, इस संभावना की तरफ संकेत करता हुआ कवि कहता है :

> नाचेगा जब शोणित चेतन
> बदलेगा तब निरुद्ध मन

कट मर जाएंगे युग दानव
सुर नर होंगे भाई।

ऊर्ध्वचेतना के अभ्युदय के पश्चात् मानस पर जो बहुआयामी प्रभाव पड़ता है उसका भी वर्णन कवि ने अत्यंत संयत एवं सुष्ठु भाव से किया है। इस दिव्य स्थिति से साक्षात्कार के पश्चात् मानव-मन तटस्थ होकर मन में होनेवाले परिवर्तनों का द्रष्टा होता है :

उमड़ रहीं लहरों पर लहरें
घिरते घन फिर घन
रजत-स्वर्ण बालुका पुलिन से
टूट रहे मन के प्रण।

'गीत विहग' शीर्षक कविता में कवि नवमानवता की उस मान्यता की ओर संकेत करता है जो चेतना के विकसित होने पर संभव होगी :

मैं नवमानवता का संदेश सुनाता
स्वाधीन देश की गौरव गाथा गाता,
मैं मनःक्षितिज के पार मौन शाश्वत की
प्रज्वलित भूमि पर ज्योतिदाह बन जाता।

समकालीन युग संदर्भ हृदय और बुद्धि के द्वंद्व से पीड़ित है। हृदय में जिन अभिप्रेरकों का अभ्युदय होता है, बुद्धि उनकी आलोचना कर उनको काट देती है। कवि इस द्वंद्व की कामना करते हुए गा उठता है :

फिर स्वर्ग बजाये
भू की हृन्तंत्री निश्चय,
जो ज्ञान भावना
बुद्धि हृदय का हो परिणय।

उत्तरा की कविताओं में प्रकृति के प्रति कवि के मन में एक महान परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। प्रकृति पुरुषोत्तम का निवासस्थान भी है। ऐसा नहीं कि 'उत्तरा' में संग्रहीत रचनाओं में कवि प्रकृति की बाह्य मनोरमता का चित्रण न करता हो किंतु उसकी दृष्टि प्रकृति के आंतरिक सत्य को भी समानांतर धरातल पर उद्घाटित करने के लिए प्रयत्नशील दीखती है। कवि प्रतीकों और उपमानों के माध्यम से अपने मंतव्य को संप्रेष्य बनाता है। संकलित कविताओं में 'फूल ज्वाल' एक विशिष्ट कविता है। कवि प्रतीति के विभिन्न सोपानों में अपनी दृष्टि का प्रसार करता है। अंतश्चेतना के गवाक्ष से जब कवि प्रकृति का पर्यावलोकन करता है तो उसकी नैसर्गिक सुषमा के साथ ही साथ आध्यात्मिक सौंदर्य भी उद्घाटित होने लगता है :

फूलों की ज्वालाएं भरतीं
मेरे अंतर में उद्दीपन
जीवन की शोभा तम के प्रति
मेरे मन में चिर आकर्षण।

० ० ०

ये नि स्वर सहज मधुरिमा स
अंतरतम कर देते झंकृत
मैं वाणी का सुत, विदित मुझ
रमणीय अर्थ व्यंजित, अकथित ।

काव्य के बहिरंग में प्रकृति का प्रयोग अलंकार रूप में भी हुआ है तथा प्रतीक रूप में भी। किंतु, पंत ने प्रतीक विधान तथा अलंकार योजना के लिए प्रकृति के नियत रूपों तथा व्यापारों को ही ग्रहण किया है। 'युगछाया' शीर्षक कविता में कवि ने मेघों के अंधकार के द्वारा वर्तमान जीवन के नैराश्य को अभिव्यक्त किया है, वहीं संध्या द्वारा संक्रांतिकालीन विषम परिस्थितियों को व्यंजित किया गया है :

दारुण मेघ घटा गहराई,
युग संध्या गहराई
आज धरा प्रांगण पर भीषण
झूल रही परछाई ।

'जीवन उत्सव' शीर्षक कविता में कवि नवीन चेतना के अभ्युदय को प्रकृति के पर्यावरण में रूपायित करने के लिए सचेष्ट प्रतीत होता है :

अरुणोदय नव, लोकोदय नव !
मंगल ध्वनि हर्षित जन मंदिर !
गूंज रहा अंबर में मधुरव !
स्वर्णोदय नव, सर्वोदय नव !

शरदागम, शरदचेतना, शरदश्री, चन्द्रमुखी आदि कविताओं में पंत अपनी काव्य-प्रतिभा को नवीन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों में उद्‌घाटित करते हैं :

तुम फिर स्वप्नों का पट बुनती
ले जीवन से छाया प्रकाश
फिर गीत स्वरों का जाल गूंथ
उलझाती सुख-दुःख अश्रु हास !

o o o

ऋतु आर्द्र जलद के वस्त्र फेंक
अलसायी अंगों में कोमल
फिर गूढ़ प्रकृति का मौन स्पर्श
अंतर को छू करता शीतल !

'चन्द्रमुखी' शीर्षक कविता में कवि अपने मंतव्य ज्ञापन प्राकृतिक छवि-वर्णन के संदर्भ में ही कर देता है :

उठा इंद्रप्रभ घन अवगुंठन
चन्द्रमुखी ऋतु, वारिज लोचनि
सरित पुलिन पर करती विचरण !

o o o

शीतल शोभा-पावक का तन
स्वप्न प्रज्वलित तारापथ मन,
स्वर्ग ज्वार चेतना चंद्रिका,
डूब रे मोहित जड़ मन।

'शरदागम' शीर्षक रचना में कवि अपने व्यापक सौंदर्यबोध तथा विराट् चेतनाबोध को कभी एक ही और कभी समानांतर भावभूमियों पर अवस्थित करता है। इस कविता में कवि शब्दों को अपूर्व चित्रमयता प्रदान करता है :

आज प्राण चिर चंचल
नवल शरद ऋतु, ओस धुला मुख
धूप हंसी सी निश्छल।

उत्तरा की अन्य कविताओं में कवि नये मूल्यों के आगमन के लिए युग जीवन में अमूल परिवर्तन का विश्वासी है। 'रूपांतर' शीर्षक कविता में वह अपनी इस भावना को स्वर देते हुए कह उठता है :

छिन्न करो जड़पाश पुरातन
भग्न रूद्ध प्राणों का बंधन
गत आदर्शों की बांहों से
मुक्त करो जन जीवन।

'प्रगति' शीर्षक कविता में भी यही स्वर है :

पंत विश्व-संस्कृति के कवि हैं। राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता का कोई विरोध उन्हें मान्य नहीं। 'उद्‌बोधन' शीर्षक कविता में यह स्वर स्पष्ट है :

मानव भारत हो नव भारत
जन मन धरणी सुंदर
नवल विश्व हो आ भारत
सकल मानवों का घर।

स्तवन एवं आराधना संबंधी कविताओं में 'अभिलाषा' शीर्षक कविता सर्वश्रेष्ठ मानी जा सकती है :

एक कली यह मेरे पास।
तुम चाहो इसको अपना लो
कर दो इसका पूर्ण विकास।

संक्षेप में 'उत्तरा' की कविताओं पर विचार किया गया है। निश्चय ही इन कविताओं में पंत का काव्य-व्यक्तित्व अपनी पूरी प्रौढ़ता एवं गम्भीरता के साथ उभरकर सामने आया है।

रजतशिखर : 'रजतशिखर' पंत जी के छह काव्य-रूपकों का संकलन है। काव्यरूपक एक नवीन विधा है। समकालीन जीवन-संदर्भों को रूपायित करने के लिए विश्व के वरेण्य साहित्यकारों ने इस विधा का उपयोग किया है। रजतशिखर में उप-चेतन की समस्याओं तथा जीवन-मान्यताओं के संघर्ष का समाधान प्रस्तुत करने का

प्रयत्न किया गया है। कवि अपने इन काव्य-रूपकों को नाटक न कहकर कथोपकथन-प्रधान श्रव्य काव्य ही की संज्ञा देता है। पंत जिन दिनों आकाशवाणी में परामर्शदाता थे उन्होंने ग्यारह काव्य-रूपक लिखे, जिनमें से छह आलोच्य कृति में संग्रहीत हैं। ये है १. रजतशिखर, २. फूलों का देश, ३. उत्तरशती, ४. शुभ्र पुरुष, ५. विद्युत्-वसना, ६. शरदचेतना।

रजतशिखर काव्य-रूपक का प्रणयन २५ जून, १६५१ को हुआ था। रजत-शिखर मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ प्रतीक है। इस काव्य-रूपक में जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों का द्वन्द्व प्रस्तुत किया गया है। मानव-मन के विकास की वर्तमान स्थिति में ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। रजतशिखर में दार्शनिक और साधनात्मक अनुभवों की अधूरी और भ्रांत मनोवैज्ञानिक व्याख्या का खण्डन किया गया है अत इस नाटक में तर्क का सौंदर्य है। इस काव्य-रूपक में दो पात्र महत्त्वपूर्ण हैं। एक मनो-वैज्ञानिक है जो आध्यात्मिक अनुभूतियों को मात्र मनुष्य की अतृप्त कामनाओं की पूर्ति मानता है। दूसरा पात्र एक युवक है जिसकी अरविंद दर्शन में दृढ़ आस्था है। इन दोनो पात्रों में अपनी-अपनी स्थापनाओं को लेकर खूब तर्क-वितर्क होता है किन्तु अंततः मनो-वैज्ञानिक युवक के अकाट्य तर्कों के सम्मुख दूसरा युवक नत हो जाता है और स्वय आराधक हो जाता है।

आज के युग में कवि को सर्वत्र नैतिक मूल्यों का एक महान संकट दृष्टिगत होता है। ऊर्ध्वचेतना में ही मुक्ति की संभावनायें हो सकती हैं :

> निश्चेतन के अंधकार में युग का भू मन
> भटक रहा है, नैतिक मूल्यों का प्रकाश खो।

ऊर्ध्वचेतना के उदय की स्थिति का एक चित्र देखिए :

> ऊर्ध्व गगन उठा निखर
> चन्द्रकिरण रही उतर
> स्वप्न पंख रहे विचर
> स्मित नभचर हैं।

लोकमंगलाशा से अभिप्रेरित होकर कवि की यह घोषणा है :

> आओ हम अंतःप्रतीत को धर्म बनायें
> आओ हम निष्काम कर्म को धर्म बनायें।

फूलों का देश रूपक का रचनाकाल ५ मार्च, १६५१ है। इस काव्य-रूपक मे भी अध्यात्मवाद, भौतिकवाद तथा आदर्शवाद, वस्तुवाद के संघर्ष का निरूपण किया गया है किंतु साथ ही साथ कवि व्यापक समन्वय एवं संतुलन के लिए आधारभूमि भी प्रस्तुत करता है। 'फूलों का देश' सांस्कृतिक चेतना का धरातल है। इसमें व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है एवं विश्वजीवन में बहिरंतर संतुलन तथा परिपूर्णता लाने के लिए दोनों की ही उपयोगिता दिखाई गयी है। इसमें भी प्रमुखतः दो पात्र हैं। कवि के रूप में स्वयं पंत ने अपनी विचारधारा का स्पष्टीकरण किया है।

दूसरा पात्र एक वैज्ञानिक है जो कवि की विचारधारा को काल्पनिक तथा अयथार्थ मानता है। कवि सांस्कृतिक चेतना को उभारकर सद्भावना पैदा करना चाहता है किंतु वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं होता वरन् वह मानव की रचनात्मक शक्ति मे विश्वास करता है।

इस काव्य-रूपक में कवि का यह विश्वास है कि अंततः कलाकार ही स्थायी जीवन-मूल्यों की स्थापना में सक्षम हो सकेंगे।

'फूलों के देश' में विचारों की स्पष्टता पर्याप्त रूप से मिलती है और क्षुद्र सकीर्णतावादियों पर भयानक प्रहार है। अंत में इस काव्य-रूपक में यह प्रतिपादित किया गया है कि इन दोनों विचारधाराओं में कोई शाश्वत विरोध नहीं है, इन दोनो के सम्यक् समन्वय से ही मानवता श्रेयस के मार्ग का अनुगमन कर सकती है :

> आओ हम दोनों बहिरंतर के प्रतिनिधि मिल
> अमृत चेतना को इस फूलों के प्रदेश को
> नवयुग जीवन में परिणत कर, सत्य बनायें।

उत्तरशती काव्य-रूपक में कवि की स्पष्ट अवधारणा है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नूतन युग का प्रादुर्भाव होगा। समकालीन युग जिस व्यापक संघर्ष से साक्षात्कार कर रहा है वह वस्तुतः उस नव्य युग के पदार्पण की पूर्वभूमिका ही है :

> टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोलें
> युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर
> हाहाकारों से जयघोषों से समुच्छ्वसित,
> विश्व क्रांति की ओर सहत आरोहण करती।

इस रूपक के संदर्भ में कवि का कथन उल्लेखनीय है, "विंश शती का विश्व-सभ्यता के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत रूपक में उसके पूर्वार्द्ध के संघर्ष संग्राम का संक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्द्ध में आशा, कल्याणप्रद क्रम विकास की ओर सकेत किया गया है। उत्तरशती मानव जगत् में नवीन स्वर्णयुग का समारंभ करेगी, इसमे सदेह नहीं।"

कवि का मन अणुयुग की विभीषिकाओं से त्रस्त है। शांति एवं मंगल की प्रबल आकांक्षा के होते हुए भी कवि आश्वस्त नहीं है कि उसकी क्षीण वाणी किसी व्यापक परिवर्तन को संभव कर सकेगी :

> पूंजीवाद उठा हिंसा का धूम्रकेतु ध्वज
> लिए लोक संहार घोर अणु मुष्टि में विकट
> फिर ललकार रहा धरती की हरित शांति को
> o o o
> कौन सुनेगा पर मेरे ये तूती के स्वर
> इन भीषण तर्जन, गर्जन, कटु चीत्थरों में।

शुभ्रपुरुष काव्य-रूपक गांधी के विचारों के स्तवन के रूप में है। शुभ्र पुरुष महात्मा जी के तपःपूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्मा जी भारतीय चेतना के

आधुनिकतम रजत संस्करण हैं। प्रस्तुत रूपक उनकी जन्मतिथि के अवसर पर लिखा गया था। यह जन गण मन अधिनायक गांधी जी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है।

विद्युत्वसना स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नहीं साधन-मात्र है। ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता। इस युग में जन-स्वतंत्रता की उपयोगिता, लोक-एकता तथा विश्व-मानवता के निर्माण में ही चरितार्थ हो सकती है। यही इस रूपक का संदेश है। इस रूपक में स्वाधीनता का समाहार ऊर्ध्व चेतनावाद में कर दिया गया है।

शरदचेतना प्रकृति-सौंदर्य का कल्पनाप्रधान रूपक है। इसमें धरती की ऋतुएं—हेमंत, शिशिर, वसंत आदि आकाशवासिनी शरद् ऋतु का अभिवादन करती है जो पृथ्वी पर उतरकर चारों ओर सुख-शांति का संचार करती हैं। फल मुकुल आदि धरती के चराचर आनंद उत्सव मनाते हैं। प्रकृति-सौंदर्य को रूपायित करने में प्रारंभ से ही पंत का आकर्षण रहा है अतः निर्भ्रांत रूप से इस काव्य-रूपक में अत्यंत चारुता के साथ प्राकृतिक सौंदर्य की संयोजना हुई है। परंतु साथ ही उस सारे चित्रण को प्रतीक के रूप में बदल देने की प्रवृत्ति से वह अंतःप्रकृति का भी चित्रण हो जाता है। इस काव्य-रूपक में कवि पंत ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि चेतना की गति द्विमुखी है—ऊर्ध्वगामी तथा अधोगामी।

शिल्पी : शिल्पी नामक काव्य-रूपक संग्रह में 'शिल्पी', 'ध्वंसशेष' तथा 'अप्सरा' शीर्षक तीन काव्य-रूपक हैं।

शिल्पी को स्वयं पंत ने कलाकार का अंतःसंघर्ष माना है। शिल्पी में पांच स्वर हैं—शिल्पी, शिष्या, दर्शकगण, आमंत्रितजन, जननायक। इन्हीं स्वरों के माध्यम से कवि अपने मंतव्य को ज्ञापित करता है। इसमें शिल्पी प्रमुख पात्र है जो एक मूर्ति के निर्माण में तत्पर दिखाई देता है। अथक परिश्रम के बावजूद वह मूर्ति को अभीप्सित रूप देने में सक्षम नहीं हो पाता। कला के लिए आस्था का होना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी होता है। शिल्पी प्रारंभ में चूंकि आस्थाहीन रहता है अतः सृजन का उत्कर्ष उसे प्राप्त नहीं हो पाता। धीरे-धीरे कलाकार आस्था के उस अनिवार्य तत्त्व को प्राप्त कर लेता है और सहसा ही मूर्ति सजीव हो उठती है :

> ईश्वर!—अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ।
> बांध दिया शाश्वत को क्षण में, रहस शिल्प ने
> रूप बढ़ गया है अरूप से,—स्थूल सूक्ष्म से।

किन्तु युग-विप्लव को मूर्त करने के पश्चात् भी शिल्पी को अपनी कृति से संतोष नहीं प्राप्त हो सका क्योंकि 'गौरवमय शिखर' तो अभी दृष्टिपथ से ओझल ही है। पूर्णता के लिए

> युग की आत्मा को, युग जीवन के प्रतीक को
> मुझे प्रतिष्ठित करना होगा मानव मन की
> युग निर्मम पाषाण शिला पर, कला स्पर्श से
> तभी सफल होगा मेरा यह स्वप्न शिल्प का!

दूसरा पात्र एक वैज्ञानिक है जो कवि की विचारधारा को काल्पनिक तथा अयथार्थ मानता है। कवि सांस्कृतिक चेतना को उभारकर सद्भावना पैदा करना चाहता है किंतु वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं होता वरन् वह मानव की रचनात्मक शक्ति में विश्वास करता है।

इस काव्य-रूपक में कवि का यह विश्वास है कि अंततः कलाकार ही स्थायी जीवन-मूल्यों की स्थापना में सक्षम हो सकेंगे।

'फूलों के देश' में विचारों की स्पष्टता पर्याप्त रूप से मिलती है और क्षुद्र संकीर्णतावादियों पर भयानक प्रहार है। अंत में इस काव्य-रूपक में यह प्रतिपादित किया गया है कि इन दोनों विचारधाराओं में कोई शाश्वत विरोध नहीं है, इन दोनो के सम्यक् समन्वय से ही मानवता श्रेयस के मार्ग का अनुगमन कर सकती है :

आओ हम दोनों बहिरंतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलों के प्रदेश को
नवयुग जीवन में परिणत कर, सत्य बनायें।

उत्तरशती काव्य-रूपक में कवि की स्पष्ट अवधारणा है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नूतन युग का प्रादुर्भाव होगा। समकालीन युग जिस व्यापक संघर्ष से साक्षात्कार कर रहा है वह वस्तुतः उस नव्य युग के पदार्पण की पूर्वभूमिका ही है :

टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोलें
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर
हाहाकारों से जयघोषों से समुच्छ्वसित,
विश्व क्रांति की ओर सहत आरोहण करती।

इस रूपक के संदर्भ में कवि का कथन उल्लेखनीय है, "विंश शती का विश्व-सभ्यता के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत रूपक में उसके पूर्वार्द्ध के संघर्ष संग्राम का संक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्द्ध में आशा, कल्याणप्रद क्रम विकास की ओर संकेत किया गया है। उत्तरशती मानव जगत् में नवीन स्वर्णयुग का समारंभ करेगी, इसमे संदेह नहीं।"

कवि का मन अणुयुग की विभीषिकाओं से त्रस्त है। शांति एवं मंगल की प्रबल आकांक्षा के होते हुए भी कवि आश्वस्त नहीं है कि उसकी क्षीण वाणी किसी व्यापक परिवर्तन को संभव कर सकेगी :

पूंजीवाद उठा हिंसा का धूम्रकेतु ध्वज
लिए लोक संहार घोर अणु मुष्टि में विकट
फिर ललकार रहा धरती की हरित शांति को
o o o
कौन सुनेगा पर मेरे ये तूती के स्वर
इन भीषण तर्जन, गर्जन, कटु चीत्थरों में।

शुभ्रपुरुष काव्य-रूपक गांधी के विचारों के स्तवन के रूप में है। शुभ्र पुरुष महात्मा जी के तपःपूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्मा जी भारतीय चेतना के

आधुनिकलम रजत संस्करण हैं। प्रस्तुत रूपक उनकी जन्मतिथि के अवसर पर लिखा गया था। यह जन गण मन अधिनायक गांधी जी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है।

विद्युत्वसना स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नहीं साधन-मात्र है। ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता। इस युग में जन-स्वतंत्रता की उपयोगिता, लोक-एकता तथा विश्व-मानवता के निर्माण में ही चरितार्थ हो सकती है। यही इस रूपक का संदेश है। इस रूपक में स्वाधीनता का समाहार ऊर्ध्व चेतनावाद में कर दिया गया है।

शरदचेतना प्रकृति-सौंदर्य का कल्पनाप्रधान रूपक है। इसमें धरती की ऋतुएं—हेमंत, शिशिर, वसंत आदि आकाशवासिनी शरद् ऋतु का अभिवादन करती है जो पृथ्वी पर उतरकर चारों ओर सुख-शांति का संचार करती हैं। फल मुकुल आदि धरती के चराचर आनंद उत्सव मनाते हैं। प्रकृति-सौंदर्य को रूपायित करने में प्रारंभ से ही पंत का आकर्षण रहा है अतः निर्भ्रांत रूप से इस काव्य-रूपक में अत्यंत चारुता के साथ प्राकृतिक सौंदर्य की संयोजना हुई है। परंतु साथ ही उस सारे चित्रण को प्रतीक के रूप में बदल देने की प्रवृत्ति से वह अंतःप्रकृति का भी चित्रण हो जाता है। इस काव्य-रूपक में कवि पंत ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि चेतना की गति द्विमुखी है—ऊर्ध्वगामी तथा अधोगामी।

शिल्पी : शिल्पी नामक काव्य-रूपक संग्रह में 'शिल्पी', 'ध्वंसशेष' तथा 'अप्सरा' शीर्षक तीन काव्य-रूपक हैं।

शिल्पी को स्वयं पंत ने कलाकार का अंतःसंघर्ष माना है। शिल्पी में पांच स्वर है—शिल्पी, शिष्या, दर्शकगण, आमंत्रितजन, जननायक। इन्हीं स्वरों के माध्यम से कवि अपने मंतव्य को ज्ञापित करता है। इसमें शिल्पी प्रमुख पात्र है जो एक मूर्ति के निर्माण में तत्पर दिखाई देता है। अथक परिश्रम के बावजूद वह मूर्ति को अभीप्सित रूप देने में सक्षम नहीं हो पाता। कला के लिए आस्था का होना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी होता है। शिल्पी प्रारंभ में चूंकि आस्थाहीन रहता है अतः सृजन का उत्कर्ष उसे प्राप्त नहीं हो पाता। धीरे-धीरे कलाकार आस्था के उस अनिवार्य तत्त्व को प्राप्त कर लेता है और सहसा ही मूर्ति सजीव हो उठती है :

> ईश्वर!—अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ।
> बांध दिया शाश्वत को क्षण में, रहस शिल्प ने
> रूप बढ़ गया है अरूप से,—स्थूल सूक्ष्म से।

किन्तु युग-विप्लव को मूर्त करने के पश्चात् भी शिल्पी को अपनी कृति से संतोष नहीं प्राप्त हो सका क्योंकि 'गौरवमय शिखर' तो अभी दृष्टिपथ से ओझल ही है। पूर्णता के लिए·

> युग की आत्मा को, युग जीवन के प्रतीक को
> मुझे प्रतिष्ठित करना होगा मानव मन की
> युग निर्मम पाषाण शिला पर, कला स्पर्श से
> तभी सफल होगा मेरा यह स्वप्न शिल्प का!

सतत् प्रयास के बाद शिल्पी बहिरंत-संयोजित तथा सौंदर्य संतुलित अभीष्ट प्रतिमा का निर्माण करने में सफल होता है :

> आह अंत में दृष्टिशून्य पाहन पलकों पर
> मूर्त हो उठा स्वर्ण स्वप्न मानव का अंतर।

ध्वंसशेष काव्य-रूपक में नवजीवन-निर्माण का स्वप्न अंकित किया गया है। कवि यह आश्वस्त कराता है कि इस महानाश से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह बाह्य क्रांति नहीं, वरन् आंतरिक क्रांति है और इसके पश्चात् मानवता ऊर्ध्व संचरण करेगी :

> कातर मत हो प्रकृति, तुम्हें यह मर्त्यों की सी,
> करुण क्लीवता नहीं सुहाती, शांत करो मन।
> भूत प्रलय यह नहीं, मात्र यह मन:क्रांति है,
> आरोहण कर रही सभ्यता, नव शिखरों पर।

कवि पूंजीवादी, वर्ग वैषम्य की अनुकृति नारी, भौतिक विज्ञान, जीर्ण धार्मिक अध-विश्वासी रूढ़ि रीतियों और युग को खंड-खंड में विभाजित करने वाली राजनीति और अर्थनीति का ध्वंस कर उसके स्थान पर लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, नवजीवन के आदर्शों की व्याख्या, विगत राजनीतिक और आर्थिक तंत्रों पर मानव-तंत्र की प्रतिष्ठा कर नवनिर्माण की परिकल्पना को पूर्ण करता है।

अप्सरा काव्य-रूपक को कवि सौंदर्य-चेतना का रूपक कहता है। कवि ने इस रूपक को चार दृश्यों में विभाजित किया है। प्रत्येक दृश्य के लिए कवि ने एक साभिप्राय शीर्षक भी दिया है। प्रथम को भावोद्वेलन, द्वितीय को मानसिक संघर्ष, तृतीय को उन्मेष तथा चतुर्थ को रूपांतर नाम दिया गया है।

मन:क्षितिज द्वारा चेतना में, हृदय सरोवर के तट पर कलाकार ध्यान मौन बैठा है। सामने भावनाओं की स्वर्ण शुभ्र श्रेणियां, विचारों के रजत कुहासे को चीरकर निखर रही हैं। आकाश से प्रेरणाओं की लहरियों द्वारा मंद मधुर स्वप्न-वाहक संगीत गुंजरित हो रहा है। इसी कवित्वपूर्ण पृष्ठभूमि में कलाकार अपने को अप्सराओं के सम्मोहन जाल में बंधा पाता है। उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उसके सारे विगत आदर्श निष्प्रभ थे। द्वितीय दृश्य (जीवन की हरी-भरी घाटी) पृष्ठभूमि में आरोहण करता हुआ मन का सोपान रजत धूमिल गिरि शृंग-सा दिखाई पड़ रहा है। नीचे अतल अवचेतन अंधकार में काली घटाएं अनेक कुत्सित आकृतियां धर कर उमड़ रही हैं। इसी पृष्ठभूमि मे कलाकार का मानसिक संघर्ष चित्रित है। तृतीय दृश्य में दार्शनिक व्याख्याएं की गई है फलत: वातावरण थोड़ा भारी हो गया है। चौथे दृश्य में कवि ने सौंदर्य-चेतना के स्वरूप की परिभाषा दी है :

> क्या है सौंदर्य चेतना? जग जीवन की
> अंतरतम स्वर संगीत जो अब अंतर्नभ को
> शिखरों से उतर रही स्वर्णिम प्रभात-सी
> स्वप्नों से शोभा उर्वर करने वसुधा को।

कवि ने इस रूपक में कलाकार का अंतर्द्वंद्व तथा सौंदर्य-चेतना का अत्यंत ही भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है।

सौवर्ण : कालक्रम की दृष्टि से यह संग्रह अपेक्षाकृत बाद का है किंतु अध्ययन की सुविधा के लिए इसका इसी क्रम में विवेचन समीचीन प्रतीत होता है। सौवर्ण भी काव्य-रूपकों का एक संकलन है। प्रारंभ में इसमें केवल दो ही काव्य-रूपक संग्रहीत थे, 'सौवर्ण' तथा 'स्वप्न और सत्य'। 'सौंदर्य' का रचनाकाल मार्च, १९५४ है तथा 'स्वप्न और सत्य' का नवम्बर, १९५२। द्वितीय संस्करण में 'दिग्विजय' नामक एक और काव्यरूपक जोड दिया गया है जिसकी प्रेरणा कवि को यूरी गगारिन की अंतरिक्ष-यात्रा से मिली।

कवि **सौवर्ण** को संक्रमणकालीन मानव-मूल्यों के विकास का प्रतीक रूपक मानता है। पुस्तक के आवरण लेख में इस काव्य-रूपक के विषय में उल्लिखित है, पंत जी के काव्य-रूपकों में 'सौवर्ण' का अपना विशेष स्थान है। इसमें कवि ने प्रतीकात्मक रूप से भावी मानव की कल्पना की प्रस्तुति के साथ ही हिमालय के रूप में मानव जाति के विगत सांस्कृतिक संचय का दिग्दर्शन कराया है, जिसमें विकास अपेक्षित है। अध्यात्म के प्रति मध्ययुगीन नैतिक दृष्टिकोण से मन को मुक्त करके 'सौवर्ण' में क्रियात्मक अध्यात्म को व्यक्तित्व दिया गया तथा उसमें मानव की नैतिक एवं भौतिक प्रवृत्तियों का समन्वय कर जन-मन को जीवन-रचना के प्रेम की ओर उन्मुख किया गया है। 'सौवर्ण' पंत जी के दार्शनिक का सशक्त लोकमंगलकारी रूप लेकर प्रस्तुत हुआ है। सौवर्ण इस रूपक का प्रतीक शीर्षक है। सौवर्ण में कवि ने वर्तमान जीवन की यथार्थता और विडंबना, विगत युगों की रूढ़िवादी सभ्यता, उसके दोष तथा पश्चिमी और पूर्वी सभ्यताओं का पारस्परिक वैषम्य अंकित करके, एक निश्चित योजना के अंतर्गत आदर्श स्वप्निल युग की स्थापना की है। इस रूपक का समाहार श्री अरविंद के समन्वयवादी आदर्श के मानवीकरण से हुआ है :

मैं हूं सौवर्ण लोक जीवन का प्रतिनिधि
नव मानव में, नव जीवन गरिमा में मंडित
युग मानस का पद्म, खिला जो धरा पंक में
जड़ चेतन जिसमें सजीव सौंदर्य संतुलित।

कवि **स्वप्न और सत्य** को आदर्श और वास्तविकता के बीच युग-संघर्ष द्योतक काव्य-रूपक मानता है। 'स्वप्न और सत्य' में कवि ने युगीन आदर्श तथा यथार्थ के बीच अविराम रूप से चलते संघर्ष का चित्रण किया है। साथ ही मध्ययुग के नैतिक आदर्शों और वर्तमान युग के भौतिक आदर्शों की पराजय दिखाते हुए अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत भी कि आज की मानवता को अधिक व्यापक तथा गंभीर सत्य दृष्टि की अपेक्षा है। इस रूपक में तीन दृश्य हैं, एक जाग्रतावस्था का तथा शेष दो स्वप्नावस्था के। प्रारंभ में कलाकार अपने भावलोक में डूबा रहता है। इसी अवस्था में उसके दो मित्र प्रवेश करते है जिनमें से एक समष्टिवादी विचारधारा में विश्वास करता है तथा दूसरा अन्तश्चेतनावादी है। दोनों अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार कला के उद्देश्य को निर्धारित करते है। दोनों के गमनोपरांत कलाकार का भावाक्रांत मन स्वप्नावस्था में ही अनेक प्राचीन महापुरुषों से मनसा साक्षात्कार करता है तथा ऊर्ध्वलोक के अनेक सूक्ष्म स्तरों का आभास

प्राप्त करता है। इसी क्रम में वह जीवन की समस्त कुत्सा, विडंबना, घृणत्व, अमानुषता तथा दूषित वातावरण का भी साक्षात्कार करता है। इस स्वप्न-साक्षात् के पश्चात् कलाकार के अंतर्मन में सूक्ष्म जगत् जाग्रत् हो उठता है। उसे स्पष्टतः प्रतीत होता है कि निम्न चेतना का आरोहण तथा ऊर्ध्व चेतना का अवरोहण हो रहा है। वस्तुतः यहां कवि का उद्देश्य श्री अरविंद के दोहरे सोपान वाले सिद्धांत को निरूपित करना है। चेतना की सतत् प्रवहमान गति में कवि की दृढ़ आस्था है। उसे मानवता के नव विहान में कोई संशय नहीं है :

हंसता नव जीवन अरुणोदय,
तम प्रकाश में होता तन्मय
सिंधु क्षितिज पर दूर स्वप्न स्मित,
उठता स्वर्णिम ज्योति ज्वार है।

द्वितीय संस्करण में **दिग्विजय** नाम का एक और काव्य-रूपक जोड़ दिया गया है जिसकी प्रेरणा कवि को यूरी गगारिन की अंतरिक्ष-यात्रा से मिली है। आवरण लेख में उल्लिखित है, "नवीन रूपक 'दिग्विजय' : जीवन सत्य की बहिरंतर विजय का साक्षी बनकर युग सत्य को समझने में अधिक सहायक बनेगा।" 'नीलध्वनि' के माध्यम से कवि ने यह कहलवाया है कि अंतरिक्ष के रहस्य को जान लेने मात्र से वास्तविक अरुणोदय नहीं होगा क्योंकि :

क्या पाएगी मनुज जाति इस समदिक् जय से
माना, मंगल, चंद्र, शुक्र में धरापुत्र ने
विजय वैजयंती फहरा ली। तो इससे क्या ?
तोड़ सकेगा मानव अंधी लौह नियति को ?
पीस रही जो उसे क्रूर निर्मम पाटों को।

महाकाल खेचर को 'आत्मवात्, तू धराधाम को बदल स्वर्ग में' का संदेश देता है तथा नक्षत्रों की शुभ्र शांति को युद्ध सेज में न बदलने का परामर्श भी। माता दिशा खेचर को आश्वासन देती हैं। मातृ-प्रकृति के अभयदान से खेचर आश्वस्त हो जाता है तथा सोल्लास गा उठता है :

जय नव मानव की, जय नव विज्ञान ज्ञान की
भौतिक पथ से बढ़े, साथ सामाजिक मानव
आध्यात्मिक, सांस्कृतिक लक्ष्य को यही साध्य है
यही सुलभ साधन ! पथ संकट उदय ओर है।

अतिमा : 'अतिमा' में पंत की अप्रैल, '५४ से लेकर फरवरी, '५५ तक की ५५ कविताएं संकलित हैं। कवि ने विज्ञापन में स्पष्ट किया है, "अतिमा का प्रयोग मैंने अतिक्रांति अथवा महिमा के अर्थ में किया है, जिसे अंग्रेजी में 'ट्रान्सैंडेंस' कहते हैं : वह मनःस्थिति जो आज के भौतिक मानसिक सांस्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।" अतिमा में पंत की आध्यात्मिक आस्था और ज्यादा पुष्ट एवं बलवती दृष्टिगत होती है। इस संग्रह की प्रथम रचना ही उस आध्यात्मिक

तना को अभिव्यक्त करती है जिसमें स्थूल भौतिक संघर्षों की अपेक्षा सूक्ष्म अलौकिक
केतो को प्राथमिकता दी गई है :

जग जीवन में र अस्तादय,
मैं मानसधर्मा, अक्षम वय
आओ, तम के कूल पार कर
नव अरुणोदय तुम्हें दिखाऊं।

आत्मा के अक्षर तत्त्व की पहचान और जग-जीवन से परे किसी अकलुष, अलौकिक एवं
ज्योतिर्मय सत्ता के प्रति दृढ़ विश्वास की यह भावना उनके अध्यात्म चिंतन का ही
फल है।

अतिमा में संग्रहीत कविताओं के वर्गीकरण का आधार हमें अतिमा के 'विज्ञापन'
मे प्राप्त हो जाता है, "प्रस्तुत संग्रह में, प्रकृति संबंधी कविताओं के अतिरिक्त, अधिकतर,
ऐसी ही रचनाएं संग्रहीत हैं जिनकी प्रेरणा युग जीवन के अनेक स्तरों को स्पर्श करती
हुई सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में हुई है। प्रधानतः इसमें प्रकृति संबंधी
सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में मूर्त कविताएं हैं किंतु 'नेहरू युग', 'अभि-
वादन', 'लोकगीत', 'सहस्थिति', 'पंचशील' आदि कुछ अन्य कविताएं भी संकलित हैं जो
उपर्युक्त विभाजन के अंतर्गत नहीं आतीं।

प्रकृति संबंधी कविताओं में 'जन्मदिवस', 'गिरिप्रांत', 'पतझर', 'कूर्मांचल के प्रति'
आदि कविताओं की गणना की जा सकती है। 'जन्मदिवस' तथा 'कूर्मांचल के प्रति'
अपेक्षाकृत लंबी तथा महत्त्वपूर्ण कविताएं हैं। 'जन्मदिवस' शीर्षक कविता में कवि अपने
परिवेश का, स्नेही-संबंधियों का तथा परिजनों का अत्यंत सुंदर शब्द अंकित कर, उनका
अत्यंत अंतरंग परिचय पाठक तक संप्रेषित करता है, अनंतर बड़ी भावप्रवणता से एक
प्रादेशिक प्रेमकथा को अतीव चित्रमयता के साथ प्रस्तुत करता है :

गूंज रही होंगी, गिरि वन अंबर में दुहरी तानें
और पास खिंच आए होंगे दो जन इसी बहाने।

'अतिमा' की कविताओं में कवि शिल्प के कतिपय नवीन आयामों के अनुसंधान में भी
प्रवृत्त दिखलाई पड़ता है। पंत युग-धर्म को पहचानकर शिल्प, शैली के सृजन की ओर
उन्मुख हुए हैं। उपर्युक्त कविता में इसे रेखांकित किया जा सकता है :

बिजली बसती घन में,
आग लगा दी खिल बुरुस ने वन में, तूने मन में आदि।

अभिप्रेत की सहज सांकेतिकता एवं संप्रेषणीयता यहां उपलब्ध है।

'कूर्मांचल के प्रति' में कवि ने हिमालय का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें कवि
अपनी जन्मभूमि के हिमाच्छादित सौंदर्य एवं उसकी नैसर्गिक सुषमा का चित्रण अत्य
विस्मय-विमुग्ध होकर किया है :

जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्षरत्न शतस्वागत !
हिम सौंदर्य किरीटित जिसका शरद मस्तक उन्नत
उषा रश्मि-स्मित, स्फटिक शुभ्र, स्वर्णिम शिखरों में उठकर।

'अतिमा' में संग्रहीत 'पतझर' शीर्षक कविता निश्चय ही एक विशिष्ट उपलब्धि है। कुछ लोगों को इसमें शब्दों का दुर्वह भार कष्टकर प्रतीत हो सकता है किंतु उसका अर्थसौष्ठव और उसकी शिल्पगत उच्चाशयता कहीं भी नष्ट नहीं होने पाई है।

विभाजन की दृष्टि से दूसरे वर्ग की कविताओं में नव अरुणोदय, गीतों का दर्पण, आत्मबोध आदि कतिपय कविताओं की गणना की जा सकती है। इस वर्ग की कविताओं को आध्यात्मिक चेतना की सुदृढ़ आधारभूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। 'गीतों का दर्पण' शीर्षक कविता में कवि की उद्दाम आशावादिता का कारण है उसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

यदि मरणोन्मुख वर्तमान से
ऊब गया हो कटुमन
तो मेरे गीतों में देखो नव भविष्य की झांकी।

कवि की इस भंगिमा से स्पष्ट है कि उसने किसी एक निश्चित धरातल की तलाश कर ली है जहां से, उसे विश्वास है, नवीन मानवीय मूल्यों का संस्कार संभव हो सकेगा।

कवि का विश्वास है कि मानव आत्मा को ज्योतिर्मय कर देने के लिए बहिर्दृष्टि में भी कोई ऐसी ही प्रक्रिया चल रही है :

विगत निशाओं का अवगुंठन !
सुन पड़ता फिर स्वर्ण-गुंजरण !
o o o
खुले दिशाओं के ज्योतिर्दल !
भू विकास का अरुणोज्वल पल

'जिज्ञासा' शीर्षक रचना में हमें कवि शिखरों की नहीं अतलताओं की पावनता की बात कहता मिलता है, समतल प्रदेश पर खड़ा गाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

कौन स्रोत ये ?
ये किन आकाशों में खोये
किन अवाक् शिखरों से झरते ?
किस प्रशांत समतल प्रदेश में
रजत फेन मुक्ता रव भरते।

इन कविताओं के अतिरिक्त पंत की काव्यप्रतिभा का निदर्शन 'सोनजुही', 'आः धरती कितना देती है', 'कौए', 'बत्तखें' और 'मेढक', 'प्रकाश', 'पतंगे' और 'छिपकलियां', 'केंचुल', 'स्वर्णमृग' आदि कविताओं में भी अत्यंत प्रभविष्णुता के साथ हुआ है। सोनजुही के चित्रण में कवि अत्यंत सहज और 'फ्रेश' है। भाषा का अवरोध भावक को कहीं भी महसूस नहीं हो पाता। शिल्प एवं भावदृष्टि का अनुपम समन्वय इस कविता में हुआ है फलतः पाठक सहज ही रसार्द्र हो जाता है :

पंख सीप के खोल पवन में,
वन की हरी परी आंगन में

उठ अंगूठे के बल ऊपर
उड़ने को अब छूने अंबर
सोनजुही थी बेल हठीली
लटकी सीधी अधर पर ।

'आः धरती कितना देती है' शीर्षक कविता अतिरिक्त तुकाग्रहिता से मुक्त होकर शब्दार्थों के भाविक लय में बंधी हुई जान पड़ती है :

देखा, आंगन के कोने में कई नवागत
छोटी-छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं
पंख भार कर उड़ने को उत्सुक लगते थे
डिंब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों से !

अतिमा में 'संदेश' जैसी श्रेष्ठ कविताएं भी हैं जो अपनी प्रतीकात्मकता के बावजूद शुद्ध काव्यानंद की वृष्टि करती हैं।

वाणी : 'वाणी' काव्य-संग्रह का प्रकाशन-काल १९५७ है, इसमें कुल ४७ कविताएं संग्रहीत हैं। इस संग्रह का मूल स्वर सामाजिक है। 'वाणी' में संग्रहीत 'आत्मिका' शीर्षक आत्मकथात्मक लंबी कविता कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें कवि ने अपने जीवन-दर्शन की सविस्तार व्याख्या की है। आत्मपरक होने के बावजूद यह कविता एकरसता से ग्रस्त नहीं है। कवि का अत्यंत संवेदनशील काव्य-व्यक्तित्व इस कविता में कई स्तरों पर उद्घाटित होता है :

आज विशेषीकरण समाजीकरण
साथ चल रहे धरा पर,
महत् धैर्य से गढ़ने सबको
मन के मंदिर, जीवन के घर।

'भावरूप' शीर्षक कविता में कवि ने सीमित शब्द बंध में अपार भावसौंदर्य को उद्घाटित कर दिया है। भाषा इतनी सहज और प्रवहमान है कि अर्थ स्वयं उसका अनुगमन करता है :

गंध अमित !
कब तुम आई अदृश्य
हृदय कुंज छंद ध्वनित।

'विकासक्रम' कविता की ये पंक्तियां—'मत रोको निर्मम, मत रोको, तुच्छ शलभ की तारा बनने की अभिलाषा' सांकेतिक रूप से अरविंद दर्शन के प्रभाव को व्यंजित करती है। 'वाणी' में संग्रहीत 'बुद्ध के प्रति' कविता में नवीन जीवन-मूल्यों का युग-संदर्भ के अनुसार प्रतिपादन किया गया है। प्रौढ़ता एवं भाव-संप्रेषणता, शिल्प एवं कथा की एकान्विति की दृष्टि से निश्चय ही यह एक महत्त्वपूर्ण संग्रह है।

कला और बूढ़ा चांद : इस संग्रह का प्रकाशन दिसम्बर, १९५९ में हुआ था। इसमें पंत की १९५८ तक की ९० कविताएं संग्रहीत हैं। इस नवीनतम काव्य-संग्रह में कवि की काव्य-चेतना के उत्कर्ष का एक नया रूप है। इसमें कवि ने अपने ही शब्दों

में, 'छंदों की पायलें' उतार दी हैं। इस बाह्य परिवर्तन के बावजूद कवि की काव्यवस्तु का मूल स्वर वही है जो पहले था। 'कला और बूढ़ा चांद' की कविताओं में स्थान-स्थान पर नयी बिम्ब-योजनाएं हैं, उनकी चित्रात्मकता अमूर्त और अशरीरी होकर भी एक विचित्र प्रकार से रूप, रंग और गंध से भरपूर है। कविताओं में नवीन संवेदनशीलता है, साथ ही उनमें बहुत ही सहज और व्यापक अनुभूति के साथ बौद्धिक गहनता भी है। इन रचनाओं में कवि एक साहसी यात्री की तरह उच्च अनुभूति के शिखरों से अंत.-प्रकाश के व्यापक क्षितिजों में विचरण करता हुआ मानव चेतना में नवीन सूर्योदय का साक्षी बनकर उपस्थित हुआ है। पंत ने अपने इस संग्रह को 'रश्मिपदी काव्य' कहा है। रश्मिपदी की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है, रश्मिपदी माने जो कि बिलकुल एक 'इट्यूशनल पोएट्री' है। मैंने उसे छंद भी देने की कोशिश नहीं की, क्योंकि उसमे इतना कवित्व का तत्व मेरे भीतर मुझे लगा कि मैंने सोचा, उसे छंद में क्यों बांधूं। प्रस्तुत संग्रह की कविताएं शैली की दृष्टि से एक सुदृढ़ और ठोस आधारभूमि पर स्थित हैं तथा इसका शिल्प काव्यवैभव से सम्पन्न है। इस काव्यकृति में पंत का शिल्पगत धरातल काफी कुछ बदल गया है। छंद के शास्त्रीय बंध से विनिर्मुक्त होकर भी इस संग्रह में संकलित कविताएं पुष्ट, परिपक्व और समर्थ हैं। ऐसा नहीं है कि पंत ने इस काव्यशैली का विकास किसी प्रभाव के अंतर्गत किया हो, निश्चय ही यह कोई विच्छिन्न रचना नहीं है। यह उनके काव्य-विकास की रेखा का सर्वाधिक नवीन प्रकर्ष है।

संग्रह की पहली कविता है 'बूढ़ा चांद'। इस कविता में अनुभव को भाषा के नये संस्कार से संस्पर्शित किया गया है। कवि-संकल्प की प्रतिबद्धता इसमें मुखरित हो उठी है :

> बूढ़ा चांद
> कला की गोरी बांहों में,
> क्षण भर सोया है!

संग्रह के प्रारंभ में ही 'कोंपलें' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियां उल्लिखित हैं। इसका आशय सम्भवत: यह है कि सृजन की प्रेरणा ने आज तक अभिव्यक्ति के जो भी रूप ग्रहण किये हैं, उससे कहीं अधिक तथा कहीं विविध छटाओं में उसे अपने-आपको व्यक्त करना शेष है :

> ओ सृजन उन्मेष,
> मन ने बहुत काट-छांट की,
> कला शिल्प के हाथों से
> भाव बोध के स्पर्शों से
> सहस्रों नये वसंत संवारे
> अभी असंख्य शरदों को
> अपने अंग
> पावक को नहला कर
> रूप ग्रहण करना है।

इसी संग्रह में धनुए शीर्षक कविता पंत की रचना क्षमता का ज्ञापन तो करती ही है साथ ही उसके बृहत्तर एवं नितांत मानवीय दृष्टिपक्ष का भी उभारकर सामने लाती है। आज की दुनिया एक विचित्र सांस्कृतिक संकट के बीच से होकर गुजर रही है, इस भयावह परिस्थिति में भी कलाकार अपने रचनात्मक दायित्व-बोध से च्युत नहीं होता। उदाहरण द्रष्टव्य है :

ओ रंभाती नदियो,
बेसुध
कहां भागी जाती हो ?
वंशीरव, तुम्हारे ही भीतर है।

o o o

ओ दूध धार टपकाती
शुभ्र प्रेरणा धेनुओ,
तुम जिस वत्स के लिए
व्याकुल हो
वह मैं ही हूं !

o o o

मुझे उस पार खड़ी
मानवता के लिए
सत्य का बोहित्थ
खेना है।

उद्धृत कविताओं में ऐसा लगता है जैसे पूरी की पूरी भाषिक संरचना अनुभूतियों की तरलता को समोये हुए मंद गति से आगे बढ़ रही हो।

'खोज' शीर्षक कविता का एक चित्र देखिए :

धरती के जघनों के बीच
फैली
घाटियों के अंग
कुम्हलाने लगे है।
नाभि-से गहरे
पोखर के जल में
अंधियाला डूब रहा है !

ऊपर की इन पंक्तियों में सांझ के धुंधलके में घाटी के धीरे-धीरे विलीन होते जाने का बिम्ब अद्‌भुत तरलता एवं कौशल के साथ उभारा गया है। उस पूरे परिवेश के संदर्भ को रूपायित करने में यह बिम्ब सहयोग ही नहीं देता अपितु सम्प्रेषणीयता का आधार भी प्रस्तुत करता है।

'अज्ञात स्पर्श' शीर्षक कविता सौंदर्य एवं आनंद के उस उच्च धरातल की ओर संकेत करती है जहां एक हल्का-सा अज्ञात स्पर्श कवि के मनःसंसार को दीप्त कर देता है :

जो
तुम्हारे अज्ञात स्पर्श से,
असंख्य स्वर्गिक अनुभूतियों में
मेरे भीतर
बरस पड़ता है।

कवि के मन में संशय का किंचित् भी अवकाश शेष नहीं रह गया है। रचनात्मक स्तर पर भावबोध और अर्थबोध का द्वन्द्व समाप्तप्राय है। आधुनिक औद्योगिक दुनिया की विसंगतियों की तरफ भी संकेत करता हुआ कवि कहता हैं :

ओ इस्पात के सत्य
मनुष्य की नाड़ियों में बह,
उसके पैरों तल बिंध,
लोहे की टोपी बन
उसके सिर पर मत चढ़।

इस संग्रह में प्रतीकों का प्रयोग बाहुल्यता से हुआ है। प्रतीकों का प्रयोग पंत पहले भी करते रहे हैं किंतु इस संग्रह तक आते-आते अनुभूति तथा दर्शन विचार की मौलिकता से उनके प्रतीक भी नितांत मौलिक एवं अर्थसंप्रेष्य हो गये हैं।

इस संदर्भ में द्रष्टव्य है :

मैं शब्दों की
इकाइयों को रौंदकर
संकेतों में
प्रतीकों में बोलूंगा।
उनके पंखों को
असीम के पार
फैलाऊंगा।

'देन' शीर्षक कविता में कवि ने 'नवमानव' की कल्पना को प्रतीक में बांधकर प्रस्तुत किया है :

काल भाल पर खिला
नया मानव
देश-धूलि में सना नहीं।
समतल द्वन्द्वों से ऊपर।

कवि 'बोध के सर्वोच्च शिखरों से' बोल रहा है जहां उसे 'मन की अवाक् ऊंचाइयों पर शुभ्र चापें' सुन पड़ती हैं। यही वस्तुतः पंत के वृहत्तर दृष्टिबोध का धरातल है। 'सिंधु-मंथन' शीर्षक कविता में कवि नूतन सृष्टि का आह्वान करता है। पुरातनता के प्रति अतिरिक्त आग्रहशीलता उच्च मानवीय मूल्यों के संस्कार में बाधक सिद्ध होती है :

मंथन कर
आत्ममंथन,

ओ सागर
ओ मानस
ओ स्वाधीन देश
अंतर मथन कर !

निश्चय ही इस संग्रह में संकलित कुछ कविताओं के लिए अरविंद-साहित्य के उन प्रतीकों और वातावरण प्रतिध्वनन की उस प्रणाली का ज्ञान आवश्यक है जिससे कवि अपने 'निज' को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। संकेतों एवं प्रतीकों की गलत व्याख्या के फलस्वरूप प्रायः इस काव्यकृति के साथ न्याय नहीं हो सका है। पंत-काव्य की एक विशिष्टता है---उसकी आंतरिक संगति। कवि पंत आलोच्य कृति तक आते-आते एक ऐसे केंद्रबिंदु पर स्थित हैं जहां फिर राहों के अन्वेषण का प्रश्न गौण हो जाता है। आस्था एवं लोकमंगल की प्रतिष्ठा के लिए कवि सम्पूर्णतः प्रतिबद्ध है। पंत की काव्य-दृष्टि वायवीय भावभूमि से ऊपर उठकर ऊर्ध्व सांस्कृतिक धरातल पर प्रतिष्ठित है जहा न अतीत की जकड़न है और न वर्तमान की कुत्सा। कवि विश्व मानवता एवं दिव्य मानवता के लिए न केवल आस्थावान है बल्कि प्रतिश्रुत भी है। यह काव्यकृति उसकी भव्य शोभामय काव्य-यात्रा का महत्त्वपूर्ण चरण है।

लोकायतन : पंत की काव्योपलब्धि की चरम परिणति 'लोकायतन' में आकर होती है। लोकायतन का श्रीगणेश कवि ने ८ अक्तूबर, सन् '५९ में किया था तथा ८ अक्तूबर, १९६३ को यह महाकाव्य समाप्त हो गया। वैसे यह केवल तीन वर्षों की साधना का प्रतिफल नहीं था। कवि के ही शब्दों में, "हमारी पैंतालीस वर्षों की साहित्यिक तथा आध्यात्मिक साधना का नवनीत लोकायतन में संग्रहीत है। इसकी कल्पना ने हमारे भीतर सन् १९३० में जन्म ले लिया था।" 'ज्ञातव्य' के अंतर्गत कवि ने लिखा है, "ग्राम-धरा के अंचल में, जनभावना के छंद में बंधी, युग जीवन की इस भागवत कथा को काव्य-प्रेमी पाठकों को भेंट करने में मुझे प्रसन्नता है। युग जीवन के विषय में लिखना कितना कठिन होता है, क्योंकि उसके स्तर वर्तमान पीढ़ियों की चेतना के भीतर होते हैं। इसीलिए मैंने कथावस्तु के चयन एवं संयोजन में अत्यंत संयम से काम लेकर केवल अनिवार्य तत्त्वों एवं घटनाओं ही का समावेश किया है। गांधी जी के अतिरिक्त इसके शेष पात्र कल्पित होने पर भी उनके द्वारा मेरे कवि जीवन की अनुभूतियों एवं सत्य को वाणी मिली है। इसके चरित्र केवल मानव चेतना के पालकी-वाहक भर हैं। लोकायतन नवीन जीवन-मूल्यों तथा भविष्य की उदात्त मानवीय चेतना का एक अत्यंत भव्य एव महनीय महाकाव्य है। संभवतः इसीलिए इसे लोक-जीवन का महाकाव्य कहा गया है। आधुनिक युग इतिहास की संक्रांतिकालीन परिस्थितियों से गुजर रहा है। इस सारे ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखकर 'युग गाथा के भीतर से विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की झांकी' प्रस्तुत कर पाना निःसंशय पंत जैसी असाधारण काव्य-प्रतिभा से ही संभव हो सकता था। समग्र युग के बिखराव को, विघटन को संजोती हुई उनकी काव्यदृष्टि लोकमंगलाशा के उच्च शिखर पर शीर्षस्थ है।

सम्पूर्ण महाकाव्य मुख्यतः दो भागों में विभाजित है—१. बाह्य परिवेश और

२. अंतश्चैतन्य। बाह्य परिवेश में कुल चार खंड हैं—(अ) पूर्वस्मृति, आस्था, (ब) जीवन द्वार (युग-भू, ग्राम शिविर, मुक्तियज्ञ), (स) संस्कृति द्वार (आत्मदान, संक्रमण, ह्रास, विघटन, विकास, मधुर स्पर्श) और (द) मध्यबिंदु : ज्ञान। अंतश्चैतन्य में तीन खंड हैं—(अ) कलाद्वार, (ब) ज्योति द्वार (स) उत्तर स्वप्न : प्रीति। काव्यबंध का यह स्वरूप निश्चय ही मौलिक तथा नवीन है जिसमें बहुत सीधे शब्दों में गहरी मानवीय चेतना की ऊर्ध्वोन्मुखी यात्रा का विशद वर्णन किया गया है तथा एक सर्वव्यापी मंगलभूमि पर उसकी प्रतिष्ठा भी की गयी है।

लोकायतन की कथा को अत्यंत संक्षेप में यहां प्रस्तुत करना असंगत नहीं होगा। सुन्दरपुर नामक जनपद रोग-शोक, दु:ख-दैन्य और अज्ञान से घिरा था। वंशी एक भविष्यद्रष्टा कवि है। जनता की इस अपार दुर्दशा को देखकर उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। उसी समय उसके मन में यह संकल्प जागरित होता है कि वह सुन्दरपुर को इस निम्न, गिरी हुई अवस्था से उबारेगा। उसके दो अनुयायी हैं: भाई-बहन—हरि और सिरी। पर जब तक देश अंध दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो तब तक कवि का एक ही लक्ष्य हो सकता था—देश को दासता के अमानवीय पाश से मुक्त करना। गांधी जी की प्रेरणा से सारा देश जाग उठा था। 'वंशी', 'हरि' एवं 'सिरी' के प्रयत्नों से वह जड़ताग्रस्त जनपद भी सजग हो उठता है। गांधी जी की डांडी-यात्रा के फलस्वरूप सारा देश रोमांचित हो उठा था, सुन्दरपुर भी वंशी के नेतृत्व में इस सिहरन को ग्रहण करता है। वंशी एक ऐसे भूराज्य की स्थापना करना चाहता है जिसमें 'भेद-भाव, भय, राग-द्वेष' सब का क्षय हो, 'राजनयिक और आर्थिक स्पर्धा में भी सामाजिक चेतस' में लय हों, साथ ही ऐसी नयी सामाजिकता का जन्म हो जिसमें 'व्यक्ति प्रेम-रुचि अनुभव विकसित हों', 'प्रेम वर्जित न हो'। सिरी के अथक प्रयास के फलस्वरूप एक कला-शिविर की स्थापना की जाती है जहां स्त्रियों को सब प्रकार की उपयोगी शिक्षा दी जाती है। एक गृह-उद्योग शिविर भी इसी क्रम में खोल दिया जाता है। इस शिविर में गांधी के स्वप्नों को साकार किया जाता है। वंशी और हरि को अपने अखंड देशप्रेम के कारण कारावास की यातना से साक्षात्कार करना पड़ता है। राष्ट्र का मुक्ति-यज्ञ इस तरह समाप्त हुआ किंतु वंशी का मन संतुष्ट नहीं था। 'स्वर्णपीठ' निर्मित करने का यह संकल्प गांव के कला केंद्र में मूर्त होता है। इस उच्च सांस्कृतिक पीठिका के अंत:संगठन में श्री अरविंद आश्रम की अंत:सौंदर्यवादी केंद्र चेतना, गांधीवादी नैतिकता आदि का महत्त्वपूर्ण योग है। सुन्दरपुर के केंद्र की ख्याति सुनकर दूर-दूर से लोग वहां आते हैं। विभिन्न देशों के सांस्कृतिक प्रतिनिधि कवि वंशी को अपने देशों में आमंत्रित करते हैं। वंशी विश्व-भ्रमण करता है। 'लोकायतन' में अत्यंत चित्रमयी भाषा में 'रोम का बहिरंतर सौंदर्य', 'यूरोप की वैभवभूमि फ्रांस', 'प्रकृति के शोभासंस्था स्वीडेन-नार्वे', 'स्वस्थ शिशुओं का भू-स्वर्ग सोवियत भूमि', 'किमोनों में चित्रित चारुशैवना'-सा जापान चित्रित है।

केंद्र के सुव्यवस्थित, स्वस्थ जीवन को देखकर माधो गुरु के अनुयायी ईर्ष्यालु हो उठते हैं तथा वे स्वयं ईर्ष्या से जलते रहते हैं। माधो गुरु एक प्रतिस्पर्धी आश्रम खोलते हैं और लोगों को बीच-बीच में वंशी के केंद्र के विरुद्ध भड़काते रहते हैं। वंशी की हत्या

का षड्यन्त्र होता है पर वह बच जाता है और हरि उसे बचाने के प्रयत्न में माधो के शिष्य वाग्विलास की सेना द्वारा मारा जाता है। आश्रम शोक-संतप्त हो उठता है। कुछ समय बाद सिरी भी चल बसती है। वंशी अब बिल्कुल अकेला पड़ जाता है। इन दारुण परिस्थितियों में भी वंशी हतप्रभ या विचलित नहीं होता। पृथ्वी पर ही स्वर्ग उतारने के स्वप्न को वह सत्य में परिणत करने के प्रयास में निरंतर आगे बढ़ता रहता है। इन्हीं दिनों माधो गुरु को आत्मग्लानि होती है और वे श्रांत, भ्रांत, जर्जर हो उठते हैं। अंत में वे स्वयं मृत्यु को प्राप्त होते हैं। कवि वंशी इस अहंवादी प्रतिस्पर्धी को भी श्रद्धांजलि देता है और आश्रम में भू-संस्कृति और अधिक फूलने-फलने लगती है। यह केंद्र पश्चिम के समतावादी दर्शन को और वैज्ञानिक उपलब्धि को पूर्व की नव आध्यात्मिक ज्योति का लोचन देता है। माधो का शिष्य वाग्विलास पुनः आक्रमण करता है किंतु वह सफल नहीं हो पाता। संघर्ष तब भी जारी रहता है और अणुयुद्ध की विभीषिका में कवि निर्भय होकर कलापीठ का संचालन करता है। इन्हींदिनों 'मेरी' आश्रम को अलंकृत करने आती है। वंशी की निगूढ़ ज्ञानभरी अंतर्दृष्टि से प्रभावित होकर वह संपूर्णतः केंद्र के प्रति अपने को अर्पित कर देती है। मेरी और कवि वंशी एक प्रकार से एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। तभी सहसा एक यानभ्रष्ट अणुबम से कवि का सुन्दर नगर ध्वस्त हो जाता है। कवि की अंतरात्मा को इस महाविनाश का पूर्वाभास मिल जाता है। वह इस दुर्घटना के पहले ही सहसा केंद्र से (अर्थात् जीवन से) अंतर्ध्यान हो जाता है। यह ध्वंस भावी मंगल की भूमिका बनता है और सत्य रस-संस्कृत आधारों को पाकर पुनः मूर्त हो उठता है मेरी संयुक्ता कहलाती है और लोकायतन नाम से आश्रम खोलती है और आध्यात्मिक मूल्यों से धीरे-धीरे भौतिक जीवन शासित होने लगता है, कामनाग्रंथि दमनमुक्त हो जाती है, वर्ग-सभ्यता जीवनमुक्त हो जाती है, धार्मिक, नैतिक सर्व मूल्य रस-रूपांतरित हो जाते हैं, जीवन-रचना ही तप-साधना बन जाती है और नवमानव जन्म लेकर जडचित् को रससंयोजित करने लगता है।

इस संदर्भ में यहां इस बात का उल्लेख कर देना असंगत नहीं प्रतीत होता कि लोकायतन कथादृष्टि को प्रधानता नहीं देता, भावदृष्टि ही कवि के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को निर्मित करती है। पंत का कथन है, "लोकायतन कथाप्रधान न होकर भावप्रधान काव्य है। इस 'अकथा' के युग में हमने जानबूझकर कथा को सीमित रखा है। कथा का संबंध घटनाओं से रहता है। इस संक्रांति के युग में रात-दिन इतनी घटनाएं घटती रहती है कि उनकी ओर समाचार-पत्रों में दृष्टि दौड़ाने के बाद किसी का ध्यान नहीं ठहरता। ऐसे युग में कथाप्रधान काव्य लिखने का अर्थ होता है मात्र घटनाओं का पिष्टपेषण करना। लोकायतन भारतीय चिंतन पद्धति तक ही सीमित नहीं, लोकायतन विश्व चिंतन से अनुप्राणित है।"

पंत जी के इस महाकाव्य में संकीर्ण युगबोध को विस्तार के अभिनव आयाम प्राप्त हुए हैं। पंत का विश्वास है कि नवमूल्यबोध के स्तर इसी रागचेतना में अन्वेषित किये जा सकते हैं। आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति विश्वव्यापी स्तर पर एक विचित्र-सी रिक्तबोधता से ग्रस्त है। सर्वत्र ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि कुछ ऐसा होना

चाहिए जिससे उच्च मानवीय मूल्यों का पुनःसंस्कार किया जा सके, एक ऐसा संवेदनात्मक धरातल प्राप्त हो सके जहां नितांत वैयक्तिक एवं सामूहिक अनुभूतियां परस्पर व्याप्ति के आधार पर अपने को संगठित एवं संयोजित कर सकें। कवि की निश्चित राय है कि भारत ही दुनिया को उच्च मानवीय मूल्य का सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकता है।

कवि का विश्वास है कि इस भूमि पर 'नवमानव' का अवतरण होगा। कवि ऊर्ध्वमुखी मनुष्य की कल्पना करता है। उसकी निश्चित धारणा है कि धरा ही स्वर्ग है और इस पर स्थित मनुष्य ही ईश्वर है। सम्भवतः इसी कारण वह मनुष्य को 'भू-ईश्वर' की संज्ञा देता है। कवि जब भू-मानव और लघुमानव की बात करता है तो वह वस्तुत चेतनात्मक धरातल की स्थिति की तरफ ही संकेत करता है।

लोकायतन के महाकाव्यत्व की कसौटी रूढ़ मान्यताओं के आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती। कथानक की एकसूत्रता पर कवि अपने ध्यान को केन्द्रित नहीं करता क्योंकि उसका रचनागत धरातल वैचारिक है। वस्तुतः लोकायतन का वैशिष्ट्य भी इसी विराट् सर्जनात्मक धरातल पर स्थापित होता है। लोकायतन का कवि भविष्य के एक विशाल दृश्यपट पर अपनी कल्पनाओं को घटित होते हुए देख रहा है। उसके मन में कोई संशय नहीं है, उसकी आस्था कहीं भी नहीं डगमगाती। उसकी दृष्टि किसी संकीर्ण परिधि में विचरण नहीं करती, उसके सामने संचरण का विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य जैसे खुला पड़ा है। प्रायः लोकायतन को प्रधानतः एक प्रतीक काव्य समझ लिया जाता है। वस्तुतः यह मान्यता गलत निष्कर्षों पर आधारित है। आलोच्य कृति में कवि की दृष्टि प्रतीकों को उभारने की नहीं है। इसमें आये प्रतीक वस्तुतः अवधारणात्मक प्रतीक हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से ही काव्य में उनका उपयोग किया गया है।

लोकायतन के संबंध में अक्सर यह कहा जाता है कि इसमें लोक-जीवन की ऊष्मा का अभाव है। महाकाव्योचित जीवंतता का दर्शन इसमें नहीं होता। कवि ने अपने पक्ष का स्पष्टीकरण स्वयं किया है, "लोकायतन में लोक-जीवन की ऊष्मा की बात कही गयी है। वस्तुतः यह चिंतनप्रधान काव्य है। इसमें ऊष्मा की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इसमें ठंडापन तो रहेगा ही क्योंकि लोक-जीवन की ऊष्मा को व्यक्त करना मेरा कार्य नहीं था। ऊष्मा तो मैं इसमें जानबूझकर नहीं लाया।"

लोकायतन भाषा को भी लेकर आलोचकों में विवाद रहा है। भाषा की विचित्र विसंगति के साथ विद्वानों ने माना है कि लोकायतन की भाषा में कवि पीछे लौट गया है, किन्तु पूरी तौर से ऐसी बात नहीं है। लोकायतन की भाषा निश्चय ही कहीं-कहीं दुरूह तथा असम्प्रेषणीय हो गयी है। दार्शनिक शब्दावली के निर्वाह के लिए शब्द-स्फीति से भी काम लिया गया है, चिच्छल्, चिन्युकुल, चिद्सौध जैसे अनेक शब्द उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शब्दों के प्रयोग में कहीं-कहीं स्वच्छंदता की प्रवृत्ति का दर्शन होता है, वर्ण विकृति को भी कवि ने अपनी सुविधानुसार बदल दिया है, जैसे 'बंधूक' के लिए 'बंधुक' शब्द का प्रयोग। इसी प्रकार वर्णलोप से शब्दों को छोटा कर दिया गया है, जैसे 'तितली' के लिए 'तिली' शब्द का प्रयोग किया गया है। इन भाषागत असंगतियों के बावजूद ऐसा नहीं कहा जा सकता कि लोकायतन की भाषा

त्थ्यीय गुणो से विमुक्त है भाषा की तरलता वहां भी है ग्राम्य स्त्रियों के चित्रण में भाषा का अवरोध कहीं महसूस नहीं होता

खेत निरातीं फसल काटतीं
जात चलातीं, गा गा घर घर
रंग गेहूंआ, तूसी अंगिया,
धानी सारी, प्याजी चूनर।

पंत की जीवंत चित्र योजनाओं ने अमूर्त विचारों तथा दार्शनिक विचारों को भी रूपायित कर दिया है।

अंत में हम पंत के ही शब्दों में कह सकते हैं, "भावी लोकमानस का निर्माण करने की ओर यह हमारा विनम्र प्रयास है—हमारा समस्त जीवन नयी मानव-चेतना के संघर्ष से मंथित रहा है। लोकायतन सहस्रशीर्ष, सहस्रबाहु, सहस्रपाद लोकपुरुष के विश्व-जीवन का काव्य है। व्यक्ति, विश्व और ईश्वर उसमें नये जीवन-विकास की भूमिका पर अभिन्न एवं अविच्छिन्न रूप में निरूपित किये गये हैं। यह मानव-जीवन संबंधी भावना की नवीन अद्वैत भूमि है, निश्चय ही यह पिछली एकांगी वैष्णव साधना से अधिक विकसित, परिष्कृत तथा लोकोपयोगी है। इसमें विज्ञान और अध्यात्म नवीन चेतनाबोध में समन्वित होकर प्रस्फुटित हुए हैं। कामायनी जहां समाप्त होती है वहां लोकायतन प्रारम्भ होता है। इसकी आनन्दभूमि ऊर्ध्व चैतन्य के शिखर पर अटकी या लटकी न होकर जीवन-वास्तविकता के समुद्र से नयी धरती की तरह निखरी है। निस्संदेह, लोकायतन के चैतन्य को समग्रतः स्वीकार करने में आज के युगजीवी को समय लगेगा। हम पथ की कठिनाइयों तथा मध्ययुगीन चित्तवृत्ति के अवरोधों से अपरिचित नहीं हैं। उन पर विजय पाने के लिए वैष्णव रस-साधना से अधिक कठोर एवं सर्वांगीण साधना की आवश्यकता है। हम लोकायतन के उच्च लोकमंगलकामी चैतन्य के प्रति आश्वस्त हैं।

आलोच्यकाल की कृतियों की विवेचना के आधार पर हम यह प्रतिपादित कर सकते हैं कि पंत का यह रचनाकाल निःस्वर शोभामय आरोहण का काल रहा है। कवि ने रचना-प्रक्रिया के बीच से ही अपने आत्मोत्कर्ष के उस बिन्दु को प्राप्त कर लिया है जो अत्यंत विरल है। पंत कहीं अत्यंत तटस्थ रहकर तो कहीं अत्यंत आत्मीयता के साथ जुड़कर अपनी सर्जनात्मकता का निर्धारण करते रहे हैं। उनकी संपूर्ण काव्य-यात्रा सार्वभौमिक शुभेच्छा एवं मानव-कल्याण की उच्चाकांक्षा से अनुप्राणित रही है। सत्यं, शिवं एवं सुंदरम् की विभिन्न रचनाभूमियों पर कवि समान गतिमयता के साथ संचरण करता रहा है। पंत की काव्य-यात्रा वस्तुतः साधना के विभिन्न चरण-चिह्न हैं। इस अध्याय में संक्षेप में पंत के काव्य-व्यक्तित्व के रचनात्मक पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

पंत का उत्तवर्ती (विकासवादी) काव्य

'लोकायतन' के बाद से आज तक का पंत-काव्य वस्तुत: 'लोकायतन' की परम्परा का ही आगे विस्तार है। अपने चेतनावादी काव्य में जिन जीवन-मूल्यों की भावना और काव्यात्मक प्रतिष्ठा पंत ने की थी, अपने उत्तरवर्ती काव्य में वे उन्हीं को विकसित करते है। संभवत: इसी दृष्टि को (चेतनावादी दृष्टि को) मानवीय विकास से अनेक स्तरों पर जोड़ने के कारण उनका यह काव्य स्वयं उन्हीं से 'विकासवादी' संज्ञा प्राप्त कर सका है। आगे हम 'किरणवीणा' से 'समाधिता' तक की प्रकाशित कृतियों का अध्ययन इसी संज्ञा को स्वीकार करके करेंगे।

इन कृतियों की भाव-भूमि का परिचय हम पंत द्वारा लिखी गई 'शंखध्वनि' की भूमिका में प्राप्त कर सकते हैं। वे लिखते हैं—"अब संसार के देश जब परस्पर निकट आने एवं एक पूर्ण संयोजित विश्व-जीवन तथा मानव-संस्कृति का निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे हैं और भौतिकतावादी अपनी अतिस्पर्धा के कारण ध्वंसात्मक तथा अतियांत्रिकता के कारण सहज मानवीय विकास का बाधक बनता जा रहा है, भारतीय चैतन्य संबंधी मांगलिक दृष्टि निकट भविष्य में, बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय, विश्व-जीवन में अवतरित होकर उसका अनिवार्य और अभिन्न अंग बन सकेगी।" स्पष्ट देखा जा सकता है कि यहां भी पंत का दृष्टिकोण तत्वत: वही है जो उनकी चेतनावादी कृतियों में।

इसमें हम उपर्युक्त शीर्षक के अंतर्गत पंत की जिन कृतियों का परिचय प्राप्त करेंगे, वे हैं—'किरणवीणा', 'पौ फटने से पहले', 'पतझर : एक भाव-क्रांति', 'गीत हंस', 'शंखध्वनि', 'शशि की तरी' तथा 'समाधिता'।

किरणवीणा : 'किरणवीणा' की अधिकांश कविताएं सन् '६६ में लिखी गई हैं। इसमें कुल ७७ कविताएं संकलित हैं जिनमें अंतिम 'पुरुषोत्तम राम' एक लंबी कविता है और अलग से भी प्रकाशित हो चुकी है। इन कविताओं की भाव-भूमि की चर्चा अन्यत्र चेतनावादी काव्य के संदर्भ में की जा चुकी है। उसे बार-बार दुहराने की कोई

आवश्यकता नहीं है इस भावभूमि की सर्वाधिक कलात्मक अभिव्यक्ति कदाचित बगा वार्ता शीर्षक कविता में हुई है इसका अंतिम पंक्तियां द्रष्टव्य हैं

आज काम कव्नी
जो नागिन सी बल खाती
हृदय लुभाती ?
कल, वह बन
आनन्द सिंधु लहरी
नाचेगी मुक्त पीठ पर !
कलुष दीठ हर !
भाव मुग्ध
भावी भू-जीवन
खेलेगा
विषहीन नाग से
प्रेम आग से !

नव-मानवता और नव-सभ्यता की परिकल्पना का कुछ चमत्कारिक वर्णन 'नयी आस्था' शीर्षक कविता में भी हुआ है। डार्विन के एक कल्पित पादरी मित्र स्वप्न में नरक-यात्रा करते हैं। छह कुत्सित नरकों की यात्रा करने के बाद वे सातवें नरक में पहुंचते हैं, जिसे डार्विन ने नये स्वर्ग का रूप दे डाला है। उन्हें विस्मय होता है। डार्विन उनका समाधान करता है :

धीरे धीरे,
अन्तर के प्रकाश से संचालित हो,
वैज्ञानिक श्रम को दे
सृजन-दिशा विकास की,
यह निश्चेतन नरक
नये चैतन्य स्वर्ग में
सित परिणत हो सका—
मुक्त धार्मिक पापों से !

'पुरुषोत्तम राम' आत्मपरक लम्बी कविता है। लगभग पचास पृष्ठों तक फैली यह कविता 'वाणी' की 'आत्मिका' शीर्षक कविता की तरह कवि के जीवन और उसकी काव्य-यात्रा के अनेक महत्त्वपूर्ण मोड़ों का वर्णन करती है। साथ ही मध्ययुगीन सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिक भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक वातावरण से असंतोष प्रकट करते हुए नव-विश्व-जीवन और उसके निर्माण में भारत की भूमिका की कल्पना भी रखी गई है। समस्त कविता कवि के मन को समझने में हमारे लिए बहुत उपयोगी होगी, पर शुद्ध काव्य की दृष्टि से उसका मूल्य न्यून ही है, यह स्वीकार करना होगा। इतनी लंबी कविता में खोजने पर ही शायद एकाध अच्छे उदाहरण मिल जाएं। गद्यात्मकता जगह-जगह इतनी अधिक (और प्रयोजनहीन) है कि

कवि अपने वक्तव्य की ओर आकृष्ट करने की बजाय बड़ी जल्दी उबाने लगता है फिर भी, जैसा कि कहा जा चुका है, कवि पंत की मनोरचना को समझने के लिए इसका महत्त्व असंदिग्ध है।

पौ फटने से पहले : 'पौ फटने से पहले' १९६७ में लिखी कविताओं का संग्रह है। कविताओं की संख्या ६१ है। सभी कविताएं अंतश्चेतना को सम्बोधित हैं। उसे जीवन की केन्द्रीय चेतना मानकर कवि ने उसके प्रति निवेदन तथा समर्पण के भाव व्यक्त किये हैं। चेतना को वे कहीं प्रणयिनी वधू के रूप में कल्पित करते हैं, कहीं मां के रूप में, कहीं बहन के रूप में और कहीं सखी के रूप में। इस संग्रह में भी कम-अधिक वही भाव व्यक्त हुए हैं जो पिछले संग्रह में। बहुत-सी कविताएं सामान्य हैं, पर कुछ पर्याप्त सुंदर बन सकी हैं। एक अत्यन्त सुंदर चित्र द्रष्टव्य है :

> तुम नहीं होतीं
> किसे मैं, प्राण, पहनाता
> सुनहली ज्योति-ध्वनि पायल ?
> जिन्हें गढ़ते किरण चुम्बित
> लहरियों के मधुर करतल !

निम्नलिखित चित्र भी अत्यंत कलात्मक बन पड़ा है :

> तुम्हें सुनहली धूप कहूं ?
> सित स्पर्श मनोहर !
> चंपक तन,
> कांचन दिनभ्र
> सौरभ का अंतर !

चेतनावादी पद्धति पर, विकसित चेतना और प्रेम-भाव (प्रेमा) की व्यंजना इन पंक्तियों में प्रभावोत्पादक ढंग से हुई है :

> तारे नहीं,
> तरेर रहे
> मुझको सौ-सौ भू-लोचन,
> कहीं खोल दूं
> मैं न हृदय में
> स्वर्ग-ज्योति वातायन !

पर कहीं-कहीं पंत की उद्घोषित सामूहिक चेतना रहस्यवादी कुहासे में धुंधली भी पड़ गई है और ऐसी पंक्तियां भी निकल आई हैं जो कवि को भू-चेतना से दूर ले जानेवाली हैं। निम्न पंक्तियों में कवि का दार्शनिक उत्साह एक विचित्र बेसुरेपन की सृष्टि करता है :

> छाया ही सा फीका, नीरस
> लगता असार संसार
> सार जिसकी तम निरुपम

स्वय विलय हो जाता
अह-रचित जग का भ्रम।

पतझर : एक भाव-क्रांति : 'पतझर : एक भाव-क्रांति' (प्रकाशन—१९६९) १८५ कविताओं का काफी बड़ा संग्रह है। भाव-क्रांति का तात्पर्य समझाते हुए स्वय पत इसके 'विज्ञापन' में लिखते हैं—"भाव-क्रांति मेरी दृष्टि में क्रांतियों की क्रांति है। आज की विषमताओं तथा जाति-वर्गगत विभेदों का उन्मूलन करने के लिए मनुष्य को रोटी के संघर्ष के साथ जन-मन में घर किए विगत युगों के प्रेत मूल्यों से भी लड़ना है। बाह्य क्रांति आंतर क्रांति के बिना अधूरी तथा एकांगी ही रहेगी। स्पष्टतः इस संग्रह मे जीवन-दर्शन की दृष्टि से कोई वैशिष्ट्य नहीं है। फिर भी इसकी कविताओं में पिछले दो संग्रहों की कविताओं की अपेक्षा कवि वक्तव्यात्मकता की ओर कम और चित्र-सृजन की ओर अधिक आकर्षित हुआ है। इस दृष्टि से 'भाव-शक्ति' कविता विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। इसमें कवि ने एक सुंदर भाव-चित्र खड़ा करने का प्रयास किया है, यद्यपि अंत की पंक्तियों में सीधा सिद्धान्त-कथन उसके प्रभाव को कुछ खंडित करता है। इसके अतिरिक्त चंद्रकला, गिरि-विहगिनी, गिरि-कोमल, तारा-चितम, सरिता आत्म-प्रतारण, सध्या के प्रति आदि कविताओं में भी रम्य भाव-चित्र प्रस्तुत किये गये है। वैसे इस संग्रह में 'विज्ञान और कला' तथा 'भरतनाट्यम्' जैसी गद्यात्मक कविताए भी है। 'भरतनाट्यम्' की गद्यात्मकता तो कुछ आश्चर्यचकित भी करती है, आश्चर्य होना है कि रसमग्न कर देने वाले उस नृत्य से कवि 'दोनों ही नर्तकियां नृत्य-कला कुशला थीं' और 'नतमस्तक हूं मैं दक्षिण भारत के सम्मुख' से अधिक कोई प्रभाव नहीं ग्रहण कर सका।

इस संग्रह की 'सरिता' शीर्षक कविता में पर्वत से निकलने के बाद क्रमशः जल-सग्रह करके यौवन प्राप्त करती नदी का यह वर्णन द्रष्टव्य है :

नव जल भार समेट
पीन छवि अंगों में भर
युवती बन तुम भेंटोगी
कुंजों को निःस्वर।
धूप छांह की बीथी में
बिचरोगी निर्जन,
संभव, विस्मन वहां
प्रतीक्षा-रत हो गोपन !

गीत हंस : 'गीत हंस' में सन् '६९ के पूर्वार्द्ध की लिखी कविताएं संकलित हैं। कविताओं की कुल संख्या ९५ है। प्रज्ञापिका लेख के अनुसार इन रचनाओं में "कवि की दृष्टि अधिक सुलझी हुई, उसकी शैली अधिक अनलंकृत तथा बोधगम्य और जीवन पर उसकी आस्था अधिक दृढ़ तथा परिपुष्ट होकर अभिव्यक्त हुई है।" संग्रह की रचनाओं को पढ़ने से इस घोषणा की कोई पुष्टि नहीं होती क्योंकि 'गीत हंस' की कविताए अपने पीछे के आठ-दस संग्रहों की कविताओं से न तो तत्वत बहुत अलग ही हैं

न श्रेष्ठ ही। फिर भी गीत इस में काफी कुछ अच्छा है कुछ सुंदर पंक्तियां नीचे उद्धृत की जा रही हैं :

१. कांसों के फूलों के गहने
पहने आती,
अब प्रियतमा
शील नत, सुंदर,

२. मैं फिर से तुमको
हर ले जाऊंगा वन में।
वन के निश्छल मुक्त
निसर्ग-निभृत प्रांगण में

३. धरती से उग आया
क्या आकाश
और भी गहरा रंगकर—
सिर पर
फालसई किरीट धर ?

संग्रह में मानव के प्रथम चन्द्रारोहण पर भी एक कविता है। एक ओर कवि इस विजय पर अपना उल्लास प्रदर्शित करता है, फिर दूसरी ओर उसे लगता है :

रिक्त जल्पना मात्र विजय
उल्लास न जन के भीतर,
अहं, भू जीवन हित होता
दिग् यात्रा व्यय न्योछावर।

अंत में कविता इस 'नोट' पर समाप्त होती है :

जब साहसी दिगारोही
शशि से जिसके पद चुंबित !

संग्रह की अंतिम कविता '२० मई '५०' कवि के जन्म-दिवस को लक्ष्य करके सन् '५० में लिखी गई थी। उसमें अब '७०' इतना जोड़कर उसे इस संग्रह में सम्मिलित कर लिया गया है।

शंखध्वनि : अगले संग्रह 'शंखध्वनि' (प्रकाशन '७१) में १९७० में लिखी गई ९७ कविताएं सम्मिलित की गई हैं। पीछे की रचनाओं में प्रकट होनेवाली नई जीवन-दृष्टि इस संग्रह की 'विकास-क्रम', 'अभीप्सा', 'मुखर', 'प्रेम', 'युगगाथा', 'भावसिद्धि', 'समाधान', 'एक सत्', 'आत्मधुरी', 'अंतर्यामी', 'आत्मपरिचय', 'जयताप', 'आकांक्षा' आदि रचनाओं में प्रकट हुई है। सामान्यतः उच्चस्तरीय होते हुए भी इन रचनाओं में कोई नवीन वैशिष्ट्य नहीं है। अतएव हम इनकी चर्चा न करके कुछ ऐसी कविताओं की चर्चा करेंगे जो अपेक्षाकृत स्वतंत्र विषयों पर लिखी गई हैं (अपेक्षाकृत इसलिए कि कभी-कभी सीधे वस्तु-वर्णनों में भी अंत में एक-दो पंक्तियों में कवि अपने जीवन-सिद्धांत को जोड़ देता है)। ऐसी कविताएं 'चांद', 'अति यांत्रिकता', 'धूप का टुकड़ा', 'युग रमणी',

कश्मीर' राजू आदि हैं। 'चांद' गीत हंस' की चंद्र विजय विषयक कविता से अत्यन भिन्न स्वर की कविता है। 'गीत हंस' वाली कविता में कवि, किन्हीं सीमाओं के बावजूद उल्लसित दिखाई देता है। यहां आकर उसका दृष्टिकोण एकदम बदल जाता है :

मुझे नहीं अच्छा लगता कि चांद में जाकर
चंद्र पटल को खोद, क्रूर भू-मानव नोचे
शशि का चांदी के दर्पण सा हंसमुख आनन,
घायल कर उसका कोमल उर लौह नखों से।

'अति यांत्रिकता' शीर्षक कविता आधुनिक जीवन में यंत्रों के अनुचित प्राधान्य का विरोध करती है। प्रखर और क्षिप्र भाषा में यांत्रिकता की अतियों की भर्त्सना करके कवि अंत में मानव को यंत्र के ऊपर प्रतिष्ठित करने की सिफारिश करता है :

यांत्रिकता के धूमों से उन्मुक्त विश्व में
मनुष्यत्व को यंत्रों के ऊपर स्थापित कर।

'धूप का टुकड़ा' कई दृष्टियों से एक सुंदर कविता है। उसमें चिंतन है, पर वह कविता को वक्तव्यात्मकता की ओर नहीं ले जाता। उसमें एक प्राकृतिक व्यापार की लुभावनी झलक है, पर वस्तु-चित्रण-मात्र नहीं। वास्तव में इस कविता में सौंदर्य-भावना और चितना का अद्‌भुत संयोग संभव हुआ है। धूप के टुकड़े का चित्र द्रष्टव्य है :

एक धूप का हंसमुख टुकड़ा
तरु के हरे झरोखे से झर
अलसाया है धरा-धूल पर—
चिड़िया के सुफेद बच्चे सा।

'युग-रमणी' आधुनिक नारी पर लिखी गई कविता है। कवि ने इस बात को खेदजनक बताया है कि आज की नारी पुरुषों के समकक्ष तो होती जा रही है, पर दूसरी ओर अपने अत:सौंदर्य को खोती भी जा रही है। पूरी कविता सीधे वक्तव्यात्मक है। 'अनुपमा' शीर्षक कविता में एक छोटी बच्ची को संबोधित करके कवि उसके प्रति अपना वात्सल्य-भाव प्रकट करता है। बाद में 'शशि की तरी' की सारी कविताएं इसी बालिका को सबोधित हैं। ऐसी एक बालिका पंत के जीवन में सचमुच आई थी, यह हम 'शशि की तरी' की चर्चा करते हुए देखेंगे। कविता शुद्ध व्यक्तिगत भावनाओं का सीधा कथन है जो बहुत कलात्मक न होते हुए भी प्रभावित करता है। इस प्रकार की एक अन्य कविता 'राजू' है। इसमें कवि ने अपने एक प्रिय बिल्ले का वर्णन किया है जो एक रात सहसा गायब हो गया और संभवतः मर गया। शैली इस कविता की भी सीधी वर्णनात्मक ही है, पर वह अपने प्रिय जानवर के प्रति कवि की भावनाओं को ठीक-ठीक संप्रेषित कर देने में सक्षम है। अंत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

वहां कहीं उसकी छाया अब भी मंडराती,
फूलों की ढेरी सफेद !—जब कभी करुण ध्वनि
स्पष्ट सुनाई देती आमन स आती सी

द्वार खोल मैं उसे खोजता—कहां गूंजता—
वह अदृश्य स्वर।

इस संग्रह की अंतिम दो कविताओं का स्वर सबसे अलग है। इनमें 'वियतनाम' शीर्षक कविता में वियतनाम में चल रहे साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के प्रति कवि ने अपना उत्साह प्रकट किया है। अंतिम कविता 'लेनिन के प्रति' लेनिन के प्रति कवि के श्रद्धाभाव का प्रकाशन है। इसमें कवि ने यह भी धारणा व्यक्त की है कि अंतत: गांधी और लेनिन 'एक ही सत्य के शुभ्र संस्करण' हैं और इसलिए :

तुमसे लेकर महत् साध्य गांधी से साधन
निखिल विश्व-जीवन संयोजित हो जन-भू पर।

शशि की तरी : अगला संग्रह 'शशि की तरी' (प्रकाशन १९७१) उपर्युक्त समस्त संग्रहों से भिन्न है। कवि के ही अनुसार, इसमें 'स्मृति-गीत' संकलित हैं। इन गीतों का संबंध अनुपमा नामक एक बालिका की स्मृति से है। स्वयं कवि के शब्दों में, "अनुपमा एक तीन-चार साल की भोली लड़की थी, जिसे मैंने स्वराज्य भवन, इलाहाबाद के बाल-भवन में देखा था।…अनुपमा में न जाने ऐसे कौन से विशिष्ट एवं उच्च संस्कार थे कि उसे देखते ही मेरा हृदय उसके प्रति गहरे वात्सल्य-भाव से भर गया और दिन-पर-दिन उसके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया…साधारणतया तो उसका स्वास्थ्य अच्छा ही था, पर जैसा मुझे बताया गया था, उसके घुटने की हड्डी कुछ बढ़ी हुई थी…मैंने डाक्टरों से उसको इस संकट से उबारने की प्रार्थना की…दुर्भाग्यवश, घुटने का सफल ऑपरेशन होने के बाद से 'एनिस्थीजिया' के प्रभाव से न उबर सकने के कारण फिर उसकी स्मृति कभी नहीं लौट सकी।…

"अनुपमा के इस प्रकार अकस्मात् अप्रत्याशित रूप से चले जाने के कारण मेरे हृदय को जो आघात लगा उसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना असंभव है। अनुपमा ने मेरे हृदय मे सदैव के लिए अपना स्थान बना लिया है।…उसी की स्नेह-मधुर स्मृति में मेरे मन ने ये गीत गुनगुनाए हैं।"

'शशि की तरी' की समस्त इक्यावन कविताएं कवि की उसी 'सुता' की स्मृति को संबोधित हैं। अनेकानेक रूपों में कवि का दुःख इन कविताओं में फूट पड़ा है। कभी वह प्रकृति के विभिन्न अवयवों में उस बालिका की छवि देखने लगता है, कभी गगा (जिसमें वह प्रवाहित की गई होगी) में 'सरसीरुह' के रूप में उद्भूत उसके रूप की मूल्यता करता है, कभी किसी अतिमानवीय शक्ति द्वारा उसे मृत्यु के घर से लौटा लाने की कल्पना करता है और कभी उसके बिना अपने जीवन को पतझर-सदृश वीरान प्रकट करता है। वास्तव में, यदि कविता का क्षेत्र मुख्यतः भावना का क्षेत्र है, तो 'शशि की तरी' ऊपर उल्लिखित सभी संग्रहों से अच्छा है। ऊपर के पांच संग्रहों में कवि एक निश्चित मनोभूमि को प्राप्त करके जैसे अचंचल हो गया है, इसलिए उनमें कविता का विकास प्राय: समतल है। इस संग्रह के गीतों में कवि का संवेदनशील हृदय अनुपमा के व्याज से मानो एक तीव्र मानवीय अनुभूति से संस्पृष्ट होकर पुन नवीन हो उठा हो

भाव प्रवण शोभा ग्राही
मेरे कवि उर का दर्पण
तुम्हीं जगा पाईं उसमें
वह मधुर सूक्ष्म संवेदन !

कवि को अपना दुःख समस्त प्रकृति में व्याप्त प्रतीत होता है :

मैं ही नहीं
विकल रहता हूं केवल,
तृण तरु पल्लव गिरिवन
तुम्हें न पाकर जग में
जाने कैसे लगते
निष्प्रभ, उन्मन !

गंगा की गोद में सुरक्षित बालिका अब जलजीवों के साथ क्रीड़ा करती होगी, और :

यद्यपि सागर के प्रति ही गंगाजल अर्पित,
तुम्हें हृदय में रखना चाहेगी वह संचित !

प्रकृति ऐसे उदास सौंदर्य से मंडित कभी नहीं थी, तारे इतने करुण कभी नहीं थे, न हवा ही इतनी उन्मन-सी बहा करती थी। तनया-वियोग के दुःख ने कवि के लिए अपने समूचे परिदृश्य का अर्थ ही बदल दिया है :

ऐसा मधुर न पहिले रहा प्रकृति मुख
भरा करुण मार्दव से देता वह सुख !
निशि में भर आते तारों के लोचन
दिन भर गंध समीरण फिरता उन्मन !

कवि का मन जैसे दो भागों में बंट जाता है और वह अपनी 'तनया' से मन-ही-मन संभाषण करता रहता है :

अस्फुट स्वर में तुम जाने
क्या कहतीं निःस्वर,
फूल पंखड़ियां सी
बरसा करतीं उर भीतर।

रात को कभी, जब कवि को अपनी प्रिय 'पुत्री' की याद आ जाती है, तब उसका हृदय आकुल हो उठता है :

शशि लेखा को लिये गोद
वात्सल्य मुग्ध-सा अंबर,
तुमको अंक लगाने को
आतुर हो उठता अंतर !

इस प्रकार एक-एक कविता में कवि ने अपनी व्यथा अंकित की है। पंत के समस्त उत्तरवर्ती साहित्य की विचार प्रधानता (भले ही वह भी काव्योचित ही हो) के बीच 'शशि की तरी' एक सुखद आश्चर्य उत्पन्न करती है। जो पंत के भावुक रूप के ही प्रेमी हैं- उनके

लिए 'शशि की तरी' निश्चित रूप से पंत की उत्तरवर्ती कृतियों में सर्वश्रेष्ठ होगी।

समाधिता : इस क्रम की अंतिम रचना १९७३ में प्रकाशित काव्यकृति 'समाधिता' है। कवि के 'विज्ञापन' के अनुसार, इस संग्रह में 'जीवन के प्रति समग्र दृष्टि' प्रकट हुई है तथा इस संग्रह की कविताओं का 'धरातल अपने में जीवन की एक नवीन भूमिका' है। वस्तुतः यह समग्र दृष्टि पिछले संग्रहों से भिन्न नहीं है। 'जीवन की नवीन भूमिका' भी यहां उसी अर्थ में अवतरित हुई है जिस अर्थ में 'किरणवीणा', 'गीत हंस' या 'शंखध्वनि' में। अन्य शब्दों में 'शशि की तरी' की कविताओं के संक्षिप्त अंतराल के बाद कवि पुनः अपनी समतल भावभूमि पर आ गया है। 'समाधिता' में दृष्टि का कोई नयापन नहीं है, पर कविताओं में कवि की जीवन-प्रतिमा के दर्शन तो होते ही हैं।

अधिकांश कविताओं में कवि ने ईश्वर का मनुजत्व निरूपित करते हुए उसे धरती के आंगन में उतारने का संकल्प बार-बार दुहराया है। निरपेक्ष ब्रह्म या ईश्वर की बजाय यहां कवि जीवन-ईश्वर को श्रेमान् बताता है :

जीवन-ईश्वर ध्येय मनुज का
यदि न ब्रह्म करता
विकास जीवन का
तो वह ब्रह्म नहीं,
भ्रम भर—कहता मन !

संग्रह की बहुत-सी कविताओं में 'ईश्वर' शब्द सीधे आया है। एक प्रकार से 'समाधिता' ईश्वर को उसी प्रकार लक्ष्य करती है जिस प्रकार 'पौ फटने से पहले' अंतश्चेतना को। यद्यपि इससे कवि की मूल दृष्टि में बहुत अंतर नहीं आता, क्योंकि यहां भी उसने अध्यात्म रस को जीवन में उतारने पर ही विशेष बल दिया है, फिर भी यह बात कुछ अर्थ तो रखती ही है कि यहां आकर पंत अपनी बात अपेक्षाकृत बहुत अधिक प्रचलित प्रतीकों के माध्यम से कहने लगे हैं। पर आत्मोपलब्धि की ओर यहां भी पंत बार-बार ध्यान आकृष्ट करते हैं। ईश्वर को लक्ष्य करके भी वे प्राचीन उपलब्ध ज्ञान की नवीन बौद्धिक व्यवस्था नहीं कर रहे हैं, एक आत्मोपलब्ध सत्य का ही प्रचार कर रहे हैं। और वह सत्य ऐसा भी नहीं जो किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा ही अनुभाव्य हो :

सूक्ष्म स्वर्ग की गंध
समाई जो उर भीतर
सूंघ न पाते यदि उसको नर
अंतर की घ्राणेन्द्रिय उनकी अभी न विकसित,
पंकज नहीं, पंक ही से जीवन मन परिचित।

कवि जीवन की सहज गति में ही दिव्यता के दर्शन करता है। अलग से आनंद की साधना करने वाले योगियों के आनंद को हेय बताकर वह जग-जीवन सेसहज तादात्म्य बिठा लेने को ही सच्चे आनंद का स्रोत निरूपित करता है :

बने रहो पृथ्वी ही के ही
उसके आंगन में
जीवन की हंसी बिखेरो

अथवा :

जीवन प्रेमी हों जन
मनोगुहा में रहें न खोए,
युग प्रबुद्ध हों,
जीवन के अनुभव में न्हाए धोए !

कुछ कविताओं में कवि 'लोकायतन' की पद्धति पर भारत को विश्व के प्रतिनिधि और नेता के रूप में प्रस्तुत करता है :

वह न विश्व का अंग,
अंग उसका ही विश्व असंशय,
भारत-भू पर ! बोध प्राप्त कर
बनें लोग मृत्युंजय ।

संग्रह की एक कविता 'चेतना' को भी संबोधित है। एक अन्य कविता गर्भपात के वैधीकरण के विरोध में भी है। कहीं-कहीं बहुत पहले की कविताओं की सी रहस्यभावना भी उभरी है :

सौंदर्य तुम्हारा केन्द्रित हो
खिल उठता उर में बन सरसिज,
प्राणों के अलि भरते गुंजन,
गीतों की लय बुनता मनसिज !

एक कविता में कवि ने नारी-मुक्ति का आह्वान भी किया है :

सभ्य न हो सकता समाज वह
जिसमें नारी मुक्त न हो !
कर्दम से ऊपर
अपनी ही सुन्दरता में
निखरी सरोज सी !

संग्रह की अंतिम कविता बांग्ला देश पर है। बांग्ला देश में पाकिस्तान के क्रूर और हिंस्र दमनचक्र का वर्णन करके कवि भारत के हस्तक्षेप और पाकिस्तानी सेना के आत्मसमर्पण का उल्लेख करता है तथा अंत में बांग्ला देश के नवीन मानवीय दायित्व की आख्या कर इस शुभकामना के साथ कविता को समाप्त करता है :

निखिल विश्व तक विस्तृत हो
उसका मन: क्षितिज
जीवन ईश्वर के प्रति
पूर्ण समर्पित हो मन !

'समाधिता' पंत की १९७३ तक की प्रकाशित कृतियों में अंतिम है, इसलिए इसके साथ ही उनके उत्तरवर्ती काव्य का यह संक्षिप्त परिचय होता है अब हम लौटकर हम

केवल 'शंखध्वनि' में चार पृष्ठों की एक भूमिका है, पर वहां भी अधिकांश में पुरानी बातों का पुनराख्यान ही है। आलोचकों-साहित्यिकों के बीच भी 'लोकायतन' के बाद की कृतियों की चर्चा बहुत नहीं हुई है। इससे यह आभास होता है कि इन कृतियों में पंत ने कोई नई भाव-भूमि नहीं उपलब्ध की है। यह बहुत कुछ सही भी है। पिछली कृतियों से इन कृतियों की भावभूमि का कोई विशिष्ट अलगाव स्पष्ट नहीं होता। स्वयं इन कृतियों में ही अनेक पुनरावृत्तियां हैं, यह सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। लगभग एक-सी बातों को कवि ने बार-बार दुहराया है। इससे कथन की नवीनता चाहे बार-बार उत्पन्न हुई हो, कथ्य की कोई नवीनता उद्घाटित नहीं हुई। प्राय: यह दुहराव एक ही संग्रह की कविताओं में भी अनेक बार आता है। जैसे बार-बार कवि अपनी ही एक उक्ति के अभिधार्थ को चरितार्थ कर रहा हो।

"मुझे न कुछ कहने को नूतन!" ऐसा प्रतीत होता है कि कवि पंत ने अपनी एक सुनिश्चित जीवन-दृष्टि पा ली है तथा अपना जीवन-दर्शन स्थिर कर लिया है। इसके बाद वे सर्वथा समतल भावभूमि पर विचरण करने के इच्छुक हैं। नये भाव-दृश्यों और प्रतीक-संयोजनों के माध्यम से अब वे अपनी उसी समतल भावभूमि को सतत् अभिव्यक्ति दे रहे हैं। चूंकि वे अंत तक भी काफी संवेदनक्षम रहे हैं, अत: अपनी अभिव्यक्ति में वे नित-नवीन ही रहते हैं। उदाहरण के लिए 'शंखध्वनि' की एक कविता की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं। इसमें एक सहज वस्तु-दृश्य को कवि ने कितनी सुंदरता से अपनी भाव-दृष्टि की व्यंजना के लिए नियोजित किया है:

एक धूप का हंसमुख टुकड़ा
तरु के हरे झरोखे से झर
अलसाया है धरा धूल पर
चिड़िया के सुफेद बच्चे सा।

जीवन-दर्शन पर मुख्य दृष्टि होने के कारण कविताओं में विचार-पक्ष स्वभावत: प्रबल है। कहीं-कहीं जब इससे बिम्ब-सृजन की बजाय वक्तव्यात्मकता को प्रधानता मिलने लगी है तब कविताएं कमजोर भी अवश्य हुई हैं। विचारों को काव्यबद्ध करना संभवत: असंभव न हो, पर जहां कहीं पंत ने विचारों को सीधे अभिव्यक्ति दी है, वहां उनका काव्य कमजोर हुआ है, इसमें संशय नहीं। वैसे स्वयं पंत भी मानते हैं कि "एकदम विचारों से बोझिल होना कविता में कमी है।" परवर्ती कृतियों में यह कमजोरी बार-बार उभरकर आई है। उदाहरणार्थ:

व्यक्ति प्राण मन भी हों विकसित
सामाजिक जीवन भी विस्तृत।

कहीं-कहीं वक्तव्यात्मकता इससे भी अधिक स्थूल हो गई है:

मैं प्रेमी हूं दक्षिण-भू का: सरल प्रकृति नर
दैनिक रहन-सहन में भी वे भारतीय हैं!
मुझे बड़ी आशा है उनसे भारतीय
संस्कृति को उनकी देन अतुल होगी भविष्य में

ऐसे उदाहरण आलोच्य संग्रहों में बहुत विरल हों ऐसा भी नहीं है। लगता है जैसे जान बूझकर कवि काव्य को केवल विचारों का वहन करने का माध्यम बना रहा हो। इस प्रक्रिया में जहां विचारों का ग्रहण कविता में 'बिंबात्मक ढंग से कराया गया है, वहां कविता प्रभाव उत्पन्न करती है। जहां सीधी कथन-शैली अपनाई गई है, वहां काव्य पक्ष शिथिल है।

परंतु जिस गति से पंत अंत तक काव्य-रचना के क्षेत्र में सतत् सक्रिय रहे हैं उसे देखते हुए उनकी जीवंतता में कोई संदेह नहीं रह जाता। आलोच्य संग्रहों में उत्तम कविता के अनेक स्थल हम देख आये हैं। 'शशि की तरी' अपने आगे-पीछे के संग्रहों से अलग कवि के शुद्ध हृदय-पक्ष का उत्तम उद्‌घाटन है और इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि पंत का कवि अब भी उतना ही संवेदनशील और भावप्रवण है। यदि कविता को विचार-सम्प्रेषण का माध्यम बनाना पंत ने स्वीकार किया है तो जान-बूझकर ही, भाव-न्यूनता के कारण नहीं। संभव है, इस प्रकार की कविता का ठीक मूल्यांकन हम अभी न कर पा रहे हों, आगे कभी उनका मूल्यांकन उचित संदर्भों में हो पाये। पंत अंत तक सतत् रचनाशील रहे हैं, इसमें संदेह नहीं। उनकी प्रतिभा सदैव अकुंठित रही है।

संवेदना के स्तर

लगभग आधी शताब्दी से भी अधिक के अपने दीर्घ रचना-काल में पंत की प्रतिभा संवेदना की अनेक भूमियों पर सक्रिय रही है जो अपनी व्यापकता में मानव-शक्ति को समग्रता में समेटे हुए है। संवेदना के अनेक स्तर कभी साथ-साथ और कभी एक के बाद एक उनके काव्य में उद्घाटित हुए हैं। इन विभिन्न स्तरों का संक्षिप्त अध्ययन हम निम्नलिखित उपशीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं—१. सौंदर्य-चेतना, २. प्रेम की परि-कल्पना, ३. प्रकृति-प्रेम, ४. अध्यात्म रस, ५. यथार्थ-बोध, ६. आदर्श दृष्टि।

संवेदना की कोटियों का किसी भी प्रकार का निर्धारण पूर्ण नहीं हो सकता। उसके विभिन्न स्तर प्रायः एक-दूसरे को अतिक्रमित करते हैं। इसके अतिरिक्त किसी समर्थ कवि के काव्य की समव्यापी, केंद्रीय संवेदना सदैव अखंड ही होती है, वह खंड संवेदनाओं का जोड़ नहीं होती। इसलिए यह प्रारंभ में ही समझ लेना होगा कि यह विभाजन केवल सुविधा की दृष्टि से ठीक है, तात्त्विक दृष्टि से नहीं।

सौंदर्य-चेतना

मुझे रूप ही भाता।
प्राण ! रूप ही मेरे उर में
मधुर भाव बन जाता
० ० ०
प्राण ! रूप का सत्य
रूप के भीतर नहीं समाता।

बाह्य रूप पर रूप-अरूप की दोहरी स्थिति : इन पंक्तियों में पंत ने अपनी सौंदर्य-चेतना को बड़ी खूबी से अंकित किया है। कवि ने यहां रूप के प्रति अपना विशेष आग्रह व्यक्त किया है। भाव-सौंदर्य की सत्ता अलग से स्वीकार करके भी कवि ने अपनी आत्मा में उसका जन्म रूप-सौंदर्य से ही स्वीकार किया है। अरूप का आधान, प्रस्फुटन

और विकास रूप में ही होता है इसी अर्थ में 'रूप का सत्य रूप में नहीं समाता'। रूप में अरूप का प्रस्फुटन रूप को उसके स्थूल रूपाकार से बहुत बड़ा बना देता है। रूप पर ही मुख्य दृष्टि रखकर पंत रूप की इसी अरूप भूमिका का बराबर संधान करते हैं। पर अरूप की स्वतःपूर्ण या निरपेक्ष महत्ता का गान वे कहीं नहीं करते। रूप से बड़ा होकर भी, उसके अजस्र आकर्षण का स्रोत होकर भी, अरूप अपनी अभिव्यक्ति के लिए उसी पर आश्रित है। इसलिए पंत रूप को अधिक महत्त्व देते हैं। 'प्राण ! रूप का सत्य···' आदि पंक्तियों की व्याख्या करते हुए एक आलोचक ने लिखा है—"पंत जी जहां यह कहते हैं कि रूप का सत्य रूप के भीतर नहीं समाता अर्थात् रूप का सत्य अरूप हुआ करता है, वहां के अरूप सौंदर्य को भी रूप के पाश में बांधना चाहते हैं।···यह भाव-सौंदर्य, स्वर्गीय सौंदर्य, अदेह या अतींद्रिय सौंदर्य इनकी दृष्टि में वह सौंदर्य है, जो इंद्रियों की देह से मुक्त होकर एक अभिनव सूक्ष्म शोभा के यात्राकाश में 'विचरण' करता है।" इस व्याख्या से यह भाव प्रकट होता है मानो पंत की मुख्य दृष्टि अरूप सौंदर्य पर हो और उसे रूप में 'बांधने' का अनुचित कार्य वे करते रहे हों। यह गलत व्याख्या है। प्रथम तो यह कहना ही सही नहीं है कि पंत के अनुसार रूप का सत्य अरूप होता है। 'रूप का सत्य रूप के भीतर नहीं समाता' का अर्थ यह है कि रूप अपनी स्थूल दृश्यमान सत्ता से बहुत बड़ा और व्यापक होता है क्योंकि समस्त रूपों में एक जीवन-व्यापी 'रूप' (जिसे सुविधा के लिए अरूप कह लें) का प्रकाश दृश्यमान है। यहां रूप की दृश्य-सत्ता में रूप की भाव-सत्ता का प्रस्फुटन दिखाकर रूप का उत्कर्ष दिखाया गया है। इसे अरूप की महत्त्व-स्थापना के रूप में ग्रहण करना अनुचित है। इस बात को हम इसी कविता की कुछ और पंक्तियां उद्धृत करके समझ सकते हैं :

मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती
सूक्ष्म बीज से कोष।

० ० ०

राशि राशि सौंदर्य, प्रेम,
आनंद, गुणों का द्वार
मुझे लुभाता रूप रंग
रेखा का यह संसार !

स्पष्ट है कि विद्वान लेखक ने पूरी कविता को ध्यान में रखे बिना उसकी कुछ पंक्तियों को ही पकड़कर अपनी मान्यता स्थिर कर ली है। इसी प्रकार 'इंद्रियों की देह से युक्त···' इत्यादि पंक्ति को भी लेखक ने 'ज्योत्स्ना' से संदर्भ-च्युत करके उद्धृत किया है और इससे उनका तात्पर्य बहुत बदल गया है। 'इंद्रियों की देह से युक्त' सौंदर्य की सत्ता को स्वीकार करके भी पंत का आग्रह सदैव उस सौंदर्य को नानारूपात्मक जगत् में देखने और उतारने का रहा है। निरपेक्ष सौंदर्य-सत्ता का पंत के लिए कोई आकर्षण नहीं रहा है।

'वीणा' की पंक्ति 'आंखों ने जो देखा कर को उसे खींचना सिखलाओ' से लेकर लोकायतन के 'सूक्ष्म को करो रूप-प्रत्यक्ष' तक पंत सदैव अरूप सौंदर्य की रूपात्मक अभिव्यक्ति के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त करते रहे हैं :

१. आत्मा ही बन जाय देह नव
ज्ञान-ज्योति ही विश्व स्नेह नव।
२. रूप जगत् की प्रतिछाया यह
भाव जगत् मानस का निश्चित।

पंत में कहीं-कहीं अरूप के प्रति आकर्षण कुछ अधिक दिखाई देता है, उदाहरणार्थ 'शिल्पी' में। पर वहां कवि का 'अरूप' आदर्श का समानार्थक है। उस अरूप को मूर्त करने के लिए शिल्पी का प्रयास है, जिसकी व्यंजना यह है कि वर्तमान परिस्थितियों मे जो आदर्श असंभाव्य दिखाई देता है उसे यथार्थ के रूप में परिणत देखने की कवि की अदम्य आकांक्षा है। अपनी मूर्ति के पूर्ण हो जाने पर शिल्पी कहता है :

कला अभी तक संकेतों का सृजन कर सकी,
उसे वास्तविकता बनना है भू पर व्यापक!
स्वागत करता हूं मैं जन का! आप देखिये,
मेरी नूतन प्रतिमा जन-मन की दर्पण है।

रूप-सौंदर्य का ही आग्रह कवि की 'समाधिता' की इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है

नव खिलती कलियों से
जो सौंदर्य झांकता—
वही तत्वतः शाश्वत!

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत अरूप को महत्त्व प्रदान करके भी सदैव रूप को ही साध्य मानते हैं। वास्तव में, जैसा कि हम काव्य-व्यक्तित्व के संदर्भ में देख आये हैं, पंत की चेतना स्वभावतः ही वस्तून्मुखी है। उनकी सौंदर्य-चेतना भी इसी तर्क पर, स्वभावतः रूपोन्मुख है। अपनी परवर्ती कृतियों में वे 'अरूप' को अधिक महत्त्व देते प्रतीत होते हैं, पर ध्यान से देखें तो स्पष्ट दिखाई देगा कि किस प्रकार वे बार-बार लौटकर अपने अरूप सौंदर्य के स्वप्न को जन-जीवन में उतारने की प्रबल उत्कंठा प्रदर्शित करते हैं। लोक से, वस्तु-जगत् से, रूपात्मकता से पंत बहुत देर तक अपनी दृष्टि नही हटा पाते।

इस बात पर बार-बार बल देने का कारण है। पंत की सौंदर्य-दृष्टि को ठीक-ठीक समझने के लिए उनकी मूल जीवनोन्मुखता को समझ लेना होगा। पंत चाहे जिन वृहत्तर भूमियोंपर विचरण करते रहें, उनकी दृष्टि सदैव इस जीवन के रूप-रंग पर रहती है। 'ज्योत्स्ना' की उषा के शब्दों में मानो पंत ही बोल रहे हैं—"इस रूप और रंगों की सृष्टि से अधिक मनोहर मुझे कुछ नहीं लगता। जीवन-शक्ति के समस्त दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, भावना, कल्पना एवं गुणों की अंतिम और ठोस परिणति इसी नाम-रूप के जगत् मे है।" उषा के इस कथन को हम पंत की सौंदर्य-चेतना की कुंजी कह सकते हैं।

सौंदर्य के चार अध्याय : पंत की सौंदर्य-चेतना का रूप कुछ स्थिर कर लेने के बाद अब उनके कृतित्व मे उसका प्रस्फुटन देखने में प्रवत्त हो सकते हैं चिदम्बरा की भूमिका मे पंत ने सौंदय के चार रूपो—नसर्गिक सामाजिक मानसिक और आध्या

त्मिक की ओर संकेत किया है। यह विभाजन उन्होंने तत्त्व विश्लेषण की दृष्टि से नहीं किया है, फिर भी इससे उनकी सौंदर्य-चेतना के संचरण का यथेष्ट आभास मिलता है। नैसर्गिक सौंदर्य की चेतना प्रमुखतः वीणा और पल्लव में प्रकट हुई है। प्रकृति का आकर्षण पंत के लिए सदैव प्रभूत रहा है, पर इन प्रारंभिक कृतियों में विचार आदि की न्यूनता तथा प्रकृति के साहचर्य के कारण यह आकर्षण अनेक रूपों में विशेषतः मुखर है। पंत लिखते हैं—"वीणा और पल्लव, विशेषतः मेरे प्राकृतिक साहचर्य-काल की रचनाएं हैं। तब प्रकृति की महत्ता पर मुझे विश्वास था और उसके व्यापारों में मुझे पूर्णता का आभास मिलता था। वह मेरी सौंदर्य-लिप्सा की पूर्ति करती थी।" इस काल की रचनाओं में पंत प्रायः प्रकृति को सखी, मां आदि शब्दों से संबोधित करते हैं। उन्होंने बहुत साफ कहा है कि "प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है।" इस प्रवृत्ति के अनेक उदाहरण 'वीणा' और 'पल्लव' से दिये जा सकते हैं।

तदनंतर पंत सामाजिक सौंदर्य की भूमि पर आते हैं जो लोक-मंगल से संबद्ध है। युगांत, युगवाणी और ग्राम्या में हम लोक-मंगल से मंडित सामाजिक सौंदर्य-चेतना की अभिव्यक्ति पाते हैं :

१. सुंदर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल
जग-जीवन से हो एकप्राण।

२. वाद्यों के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर से कंपित
जन इच्छा का गाढ़ चित्र कर हृदय पटल कर अंकित,
खोल गए संसार नया तुम मेरे मन में क्षण भर
जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर।

जिसे पंत ने मानसिक सौंदर्य कहा है, उसका संबंध विचारों से है। सुंदर विचारों से कवि का तात्पर्य उन विचारों से है जिनमें कलाकार अपने 'हृदय का यौवन' उड़ेलकर 'जीवन की कुरूपता को सुंदर' बनाता है। एक प्रकार से यह 'सुंदर' के 'शिव' का उद्घाटन है या उसके अंदर 'शिव' की समाहिति है—रूप-सौंदर्य से भाव-सौंदर्य में संक्रमण है, अथवा दोनों की साथ-साथ उपलब्धि है। उनके मानस का 'भावजगत्' रूपजगत् की प्रतिच्छाया बन जाता है। इस दृष्टि से गुंजन और उसके बाद का समस्त पंत-काव्य एक प्रकार से मानसिक सौंदर्य का काव्य है। इसी मानसिक सौंदर्य की एक बृहत्तर भूमि आध्यात्मिक सौंदर्य है जिसे पंत ने अंत में रखा है, कदाचित् इसलिए कि वे इसे सौंदर्य-चेतना का अंतिम बिंदु मानते हैं। उनके काव्य में अपनी पूरी गरिमा के साथ इस कोटि का सौंदर्य ग्राम्या के बाद की कृतियों में प्रकट हुआ। 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' से लेकर 'समाधिता' तक यह सौंदर्य-चेतना सतत् विद्यमान है। इस प्रकार के सौंदर्य-बोध की सर्वश्रेष्ठ कृति 'उत्तरा' मानी गई है। उत्तरा से ही एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

मैं देख रहा,
वह ज्योति मेघ अब

उतरा हृदय शिखर पर
प्राणो मे स्वर्गिक
इंद्रधनुष प्रभ
स्वप्नों का पावक भर।

'कला और बूढ़ा चांद' से भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

यह गौर मांस सरोवर
जिसमें मैं कूद गया हूं।
इसमें स्वर्ण हंस हैं,
शुभ्र अरुण कमल !
ओ शोभा के पावक कुंड,
तुम कितने शीतल हो ।
तुम्हारा अमृत पीकर
मेरे तन मन प्राण तृप्त हो गए—
मधुर अमृत पीकर ।

ऊपर पंत की सौंदर्य-चेतना का क्रमिक संचरण संक्षेप में प्रदर्शित कर दिया गया है। इस अध्याय के अन्य उपशीर्षकों के अंतर्गत हम इस संचरण के विभिन्न आयामों को अलग-अलग कुछ विस्तार से देखेंगे। अतएव यहां इस प्रसंग का विशेष विस्तार न करके अब हम पंत द्वारा चित्रित नारी-सौंदर्य का आकलन करने का प्रयास करेंगे।

नारी-सौंदर्य : रूप-भाव : छायावाद ने अपने नवीन सौंदर्य-बोध द्वारा नारी-सौंदर्य के रीतिकालीन प्रतिमानों को ध्वस्त कर एक सर्वथा नवीन नारी-मूर्ति की स्थापना की। छायावाद ने नारी के अर्द्धनग्न रूप को अपनी पवित्र भावनाओं के अकलुष सौंदर्य से मंडित किया। छायावाद में नारी 'देह-बोध के पर्दे से बाहर' निकल आती है।

पंत नारी-सौंदर्य की इसी उदात्त भूमि को अपने काव्य में प्रस्तुत करते हैं। स्थूल देह-सौंदर्य के स्थान पर वे बार-बार आत्मिक, अशरीरी सौंदर्य के दर्शन नारी-देह मे करना चाहते हैं। इसलिए विश्वात्मा, भाव, कर्म, मंगल आदि का सौंदर्य उनकी नारी-मूर्ति में प्रतिष्ठित हुआ है। पर साथ ही रूप और रेखा के सौंदर्य का ऐंद्रिय आकर्षण भी उनकी आंखों से कभी ओझल नहीं होता, क्योंकि सौंदर्याकर्षण की अतीन्द्रिय भूमिका को स्वीकार करके भी पंत के लिए रूपरेखा ही उनके अपने मन की चीज है। सौंदर्य-चेतना की इस दुहरी भूमिका के कारण पंत के नारी-सौंदर्य की रेखाएं जहां एक ओर अत्यंत स्पष्ट हैं, वहां दूसरी ओर वे अतीन्द्रिय सौंदर्य की आभा से दीप्त होकर अस्थूल और भावमय भी हो गई हैं। इस बात को हृदयंगम न कर पा सकने के कारण कभी-कभी आलोचकों को पंत के नारी-वर्णनों की ऐंद्रियता विचलित करती है और वे कभी तो उसे पंत-काव्य में एक अवांछित विक्षेप के रूप में स्वीकार करके छोड़ देते हैं और कभी उसके लिए पंत की स्वाभाविक सौंदर्य-कृति के बाहर अन्य कारणों की तलाश करते हैं। तन और मन का अलगाव पंत में नहीं है। जो उनके लिए तन का सौंदर्य है, वह भी मन के सौंदर्य से अलग या विच्छिन्न नहीं है। सौंदर्य की उच्चतम भूमि की कल्पना भी पंत के

मन में नारी-रूप की स्पष्ट रेखाओं में उभरी है, यह पंत के चेतनावादी काव्य में देखा जा सकता है। 'मांसल सौंदर्य की चाक्षुष अंगिता' का जिस अर्थ में लेखक ने प्रयोग किया है उस अर्थ में वह पंत की प्रारंभिक कविताओं में भी नहीं है। यदि हम इस वाक्यांश का कुछ विस्तृत अर्थ ग्रहण करें तो यह मानना होगा कि ऐसी 'चाक्षुष अंगिता' पंत के समस्त काव्य में है। केवल प्रारंभिक काव्य में नहीं। पंत की प्रारंभिक कविताओं से उद्धरण लेकर देखें :

लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़-सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप से।

o o o

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन।

यहा जान-बूझकर ऐसे स्थलों को लिया गया है जहां सौंदर्य-वर्णन स्पष्टतः ऐंद्रिय है। 'वीणा' में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा। 'ग्रंथि' और 'पल्लव' में भी ऐसे ऐंद्रिय रूप-वर्णन बहुत कम हैं। ये वर्णन कितने 'ऐंद्रिय' हैं, इसकी मीमांसा न करके हम निम्न-लिखित उदाहरणों को देखें जो पंत की उत्तरकालीन कृतियों से लिए गए हैं (स्वर्णकिरण, कला और बूढ़ा चांद) :

सुप्त स्वर्ण चक्रांगों से सुकुमार उरोजों पर स्थित
शुभ्र सुधा के मेघों की जाली उठती गिरती नित !
उठे कामना शिखरों से, स्वर्गिक श्वासों से स्पंदित,
उन दो रजत प्रीति कलशों पर स्वर्ण शिराएं वेष्टित !
ओ नई आग,
बाहुओं, वक्षों में
जघनों, यौनियों में
नया आनंद कूद रहा !
भाल से, भ्रुवों से
कपोलों, अधरों से
नया लावण्य निखर रहा !

इनमे से पहला उद्धरण जिस कविता से लिया गया है उसका उपशीर्षक 'सौंदर्य-चेतना' है। ये दोनों ही उद्धरण पंत की परवर्ती सौंदर्य-चेतना का परिचय देते हैं। इन उदा-हरणों को ऊपर के उदाहरणों से मिलाकर देखा जा सकता है कि पंत के प्रारंभिक काव्य मे कोई इस प्रकार का ऐंद्रिय तत्त्व नहीं है जो बाद की कृतियों में न्यून या समाप्त हो गया। वास्तव में ऐंद्रियता भी पंत के सौंदर्य-वर्णनों में उसी प्रकार समव्यापी है, जिस

प्रकार (कला और बूढ़ा चाँद)

ओ मेरे रूप के मन,
तेरी भावना की गहराइयाँ
अरूप हैं।

नारी-सौंदर्य के (और अंततः समग्र सौंदर्य के) पंत-कृत अंकन की यह दुहरी संपन्नता पंत की सौंदर्य-चेतना की उसी दुहरी भूमिका के कारण है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस दुहरी संपन्नता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कदाचित् 'गुंजन' की 'अप्सरा' शीर्षक कविता है, उसी से एक उद्धरण द्रष्टव्य है :

अंग अंग अभिनव शोभा का
नव बसंत सुकुमार,
भृकुटि भंग नव नव इच्छा के
भृंगों का गुंजार,
शत-शत मधु-आकांक्षाओं से
स्पंदित पृथु उर भार,
नव आशा के मृदु मुकुलों से
चुंबित लघु-पदचार।

पंत के काव्य में नारी-सौंदर्य अपनी अरूप-रूप की भूमिका में कभी प्रकृति के साथ मिलकर आया है, कभी विश्व मानवी के साथ तथा कभी अंतश्चेतना के साथ। प्रथम प्रकार का सम्मिलन प्रमुखतः उनके छायावादी काव्य में मिलता है, द्वितीय प्रकार का यथार्थवादी काव्य में तथा अंतिम उनके चेतनावादी काव्य में। इनमें से पहले और अंतिम का हलका परिचय हम ऊपर प्राप्त कर चुके हैं। दूसरे प्रकार का सम्मिलन सबसे अधिक 'ग्राम्या' में उभरा है। 'ग्राम्या' से एक उदाहरण लें :

है मांसपेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,
संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज,
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज।

इसके अतिरिक्त शुद्ध रूप-वर्णन भी पंत के काव्य में काफी है। परंतु वहां भी पंत नारी-सौंदर्य को रीतिकालीन वातावरण की घुटन से बाहर खींचकर जीवन के विशाल उन्मुक्त प्रांगण में लाए हैं। इस प्रकार के रूप-वर्णन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण संभवतः 'ग्राम्या' की कविता 'ग्राम युवती' ही मानी जाएगी। इस कविता से एक अत्यंत सुंदर चित्र उद्धृत है :

पनघट पर
मोहित नारी नर !
जब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहनी वह बरबस

चोली में उभर उभर कसमस
खिचते संग युग रस भरे कलश
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बल खाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट।

जिन्हें ऐंद्रिय सौंदर्य केवल पंत के 'कैशोर्य के काव्य' में ही दिखाई देता हो, उनके लिए यह पंक्तियां अच्छा उत्तर बन सकती हैं। पर यहां भी प्रारंभ की पंक्ति—'पनघट पर मोहित नारी-नर' पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह एक पंक्ति मानो ग्राम युवती के स्थूल रूप को एक अनोखा सूक्ष्म विस्तार दे देती है। समस्त नर-नारी, समस्त लोक रीतिकालीन नायिका के रूप पर भी मुग्ध होता है, पर इसलिए कि वह 'नायिका' है। पंत की ग्राम युवती नायिका नहीं है, विशिष्ट नहीं है, सहज-साधारण ग्राम युवती है। इसलिए उसके संदर्भ में इसी बात को कहने से वह भाव-विस्तार उपलब्ध हो जाता है, जो रीति-काव्य में नहीं हो सकता था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पंत की सौंदर्य-चेतना में अरूप और रूप एक हो गए हैं फिर भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण कवि अरूप की रूपात्मक अभिव्यक्ति की ओर अधिक आकृष्ट है। रूप-अरूप की यह दुहरी चेतना पंत के काव्य में रूप को प्रधान करके भी उसे स्थूल या रेखा-सीमित होने से बचाती है। अंत में यह भी दुहरा देना उचित होगा कि पंत की सौंदर्य-चेतना निरंतर व्यापकतर होती गई है। पर साथ ही उसका मूल रूप सदैव एक-सा रहा है, लगभग पचीस वर्षों के अंतराल से एक ही सौंदर्य-बिंब की निम्नांकित आवृत्ति इस धारणा को मानो प्रमाणित करती है :

१. रेशमी घूंघट बादल का
खोलती है कुमुद कला,
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अंतर्धान
(पल्लव)

२. प्रेयसि की मुख छवि मेघ मुक्त
शशि रेखा-सी उगती मन में,
(उत्तरा)

प्रेम की परिकल्पना

प्रेम अत्यंत व्यापक शब्द है। अपने शुद्ध निरुपाधि रूप में हम इसे विश्व-प्रेम कह सकते हैं जो समस्त जीवन-वैषम्यों को प्रशमित करके मानव-जीवन की एकता का उ [illegible] करता है प्रेम की इस सर्वव्यापी विराट सत्ता की चेतना पंत को भी है [illegible]मे वे लोक प्रम मानव प्रम विश्व प्रम आदि के नाम से सबोधित करते हैं युगवाणी

की निम्नलिखित पंक्तियों में इस लोक व्यापी राग भावना का अंकन द्रष्टव्य है

१. राग, केवल राग !
छिपी चराचर के अंतर में
अनिर्वाप्य चिर आग,—
राग, केवल राग !

२. जीवन-तंत्री आज सजाओ
अमर राग तारों से,
गूंज उठें नभ धरा
प्रेम की स्वर्गिक झंकारों से।

विराट् रागचेतना और प्रणय : प्रस्तुत उपशीर्षक के अंतर्गत हम प्रेम की इस विराट् सत्ता का उल्लेख भर करके अपने वास्तविक प्रतिपाद्य-द्वंद्व-प्रणय पर ही आगे विचार करेंगे। प्रेम या रति, जो स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण के रूप में सर्वथा सहज स्थित है और उपयुक्त परिस्थितियां पाकर लहक उठती है, वास्तव में उतनी सीमित वस्तु नहीं है जितनी रीतिकाल की कविता ने इसे बना दिया था। वास्तव में विराट् प्रेम-भाव की सर्वोत्तम, उत्कटतम और उज्ज्वलतम अभिव्यक्ति स्त्री-पुरुष के प्रणय-भाव में ही होती है। इसीलिए क्रमशः पंत के लिए स्त्री-पुरुष का सहज प्रणय विराट् प्रेम से एकाकार होता गया है। उनकी अंतिम कृतियों में रति-भाव जिस विस्तृत भूमि पर प्रतिष्ठित है वह विराट् प्रेम की व्यापक भूमि ही है। यह विस्तृत भूमि पंत को क्रमश उपलब्ध हुई है। हम आगे इसका क्रमिक विकास ग्रंथि और पल्लव के काल से लेकर समाधिता के पंत-काव्य में ढूंढ़ने का प्रयास करेंगे।

पंत की प्रारंभिक प्रेम-कविताओं में हम ग्रंथि, आंसू और उच्छ्वास को रखेंगे। इन पर हम पीछे कुछ विचार कर चुके हैं। यहां केवल इनमें प्रकट होने वाले कुछ वैशिष्ट्यों की ओर संकेत करना अभीष्ट है जो इन्हें रीति-परंपरा के रति-काव्य से अलग करते हैं।

पहली बात तो जो इन कविताओं में दिखाई पड़ती है वह यह कि इनमें वैयक्तिक स्वच्छंद प्रेम का चित्रण है। यह प्रेम गुणात्मक रूप से रीतिकालीन प्रेम से भिन्न है। इसमे किसी परिपाटी का आग्रह नहीं, दूतियों-चेटियों का जमाव नहीं है, स्वकीया-परकीया का झमेला नहीं है, यह मुक्त, स्वच्छंद, सहज, प्राकृतिक प्रेमाकर्षण है। पंत ने 'उच्छ्वास म प्रेम की सहजता और सर्वव्यापकता का वर्णन इस प्रकार किया है :

अनिल सा लोक-लोक में,
हर्ष में और शोक में
कहां नहीं है स्नेह ? सांस-सा सबके उर में।

'सास-सा सबके उर में' समाया यह प्रेम, प्रेम-भावना के बहुत व्यापक प्रसार का द्योतक है। इसी कारण ग्रंथि, आंसू या उच्छ्वास के नायक-नायिका का प्रेम सतत् प्रकृति के विशाल परिदृश्य में अपने को स्थापित करता तथा उसमें प्रतिबिंबित होता है प्रकृति को पंत ने उद्दीपन के लिए प्रयुक्त नहीं किया उनके लिए प्रकृति स्वत राग चेतना

का आधान और स्फुरण है, व्यक्तिगत प्रेम उस व्यापक राग-चेतना में सहज प्रतिष्ठित है। इस दृष्टिकोण के कारण जहां एक ओर रीतिकालीन ह्रासोन्मुख प्रणय-चेतना का परिहार हुआ, वहीं स्वच्छंदतावादी राग-चेतना को एक सर्वथा नवीन आत्मिक प्रसार प्राप्त हुआ। पाश्चात्य स्वच्छंदतावादियों के लिए प्रेम स्वच्छंद भावना की वस्तु है, उससे आगे बढ़कर पंत उसे आत्मा की वस्तु बना देते हैं जिसमें एक और अनेक का भेद तिरोहित हो जाता है :

गगन के भी उर में है घाव,
देखती ताराएं भी राह,
बंधा विद्युत् छवि में जलवाह
चंद्र की चितवन में भी चाह।

इन कविताओं की दूसरी विशेषता है भावमयता। इसे भी रीतिकालीन कविता की तुलना में ही समझा जा सकता है। पंत की प्रारंभिक प्रेम कविताओं का नायक शारीरिक चेष्टाएं नहीं करता, पर अपना हृदय खोलकर रख देनेमें वह कोईकमी नहीं करता। विशेष रूप से आंसू तो भावावेग की अद्‌भुत कविता है। उसकी ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

हाय, किसके उर में
उतारूं अपने उर का भार।

इन दो पंक्तियों में कुछ आकुलता, कुछ अकेलेपन, कुछ विषाद और कुछ विवशता की जो मिली-जुली अभिव्यक्ति हो सकी है वह हजारों अनुभावों-संचारियों का जोड़ मिलाने से भी नहीं आती। इन पंक्तियों में लक्षणा का चमत्कार नहीं है, न भंगी-भणिति है, इनमें हृदय का सीधा, मार्मिक प्रकाशन है। ग्रंथि, उच्छ्‌वास और आंसू हृदय की अभिव्यक्ति की कविताएं हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

नहीं अब रुकती है झंकार,
यही था हा ! क्या एक सितार ?
हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावन धार।

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन
मानसा-सा उमड़ा अपार मन,
गहरे, धुंधले, धुले, सांवले,
मेघों-से मेरे भरे नयन।

मैं अकेला विपिन में बैठा हुआ
सींचता हूं विजनता से हृदय को,
और उसकी भेदती कृश दृष्टि से
ढूंढ़ता हूं विश्व के उन्माद को।

तीसरी विशेषता जो इन कविताओं में हमें दिखाई देती है वह प्रणय के दोनों पक्षों की तुल्यता का भाव है। कवि द्वारा बार-बार सखी, मित्र आदि शब्दों का प्रयोग इसका द्योतक है। स्त्री जिस प्रकार मध्ययुग में 'प्रेम की वस्तु' मात्र थी उस प्रकार यहां

नहीं है वह उपभोग्या नहीं है सामंती युग के सीमित अर्थ में प्रिया भी नहीं है इस लिए पंत की उन कविताओं में प्रणय का रूप अधिक स्वच्छल तथा आवेगपूर्ण हो सका है। यह रूपाकर्षण मात्र नहीं है, क्योंकि यहां 'नारी रूप' मात्र नहीं है। वास्तव में नारी की व्यक्ति तथा आत्मसत्ता का सम्यक् स्वीकार न होने के कारण ही मध्ययुग का शृंगार शरीरपरक, सीमित तथा वासनात्मक हो गया है। नारी की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार न कर, उसे बंदी बनाकर मध्यकालीन पुरुष ने अपने ही आनंद की सीमा बांध ली थी। शारीरिक से आगे बढ़कर वह केवल ईश्वर की ओर जा सकता था। पंत ने इन कविताओं में नारी के स्वर्गीय सौंदर्य को देखने का प्रयास किया है तथा साथ ही प्रणय के आत्मिक स्वरूप का उद्घाटन किया है। नारी की 'मित्रता' का यह स्वीकार आधुनिक प्रणय-भावना के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इन कविताओं की चौथी और अंतिम विशेषता है उनकी 'शैशव-सरसता'। पंत के प्रेम-वर्णनों में फिर कभी वह सरलता, अप्रगल्भता और कैशोर संकोच प्रकट नहीं हुए, कदाचित् इसका कारण यह हो कि उनकी प्रेम-भावना आयु के साथ प्रौढ़ होती गई और उसमें कैशोर भावना का स्थान नहीं रह गया। जिस कारण से भी हो, पर प्रेम का यह निष्कलुष, निष्पाप सौंदर्य इतनी सहजता से पंत के काव्य में फिर कभी नहीं उभरा। पंत की प्रारंभिक तीन प्रेम कविताओं का, (ग्रंथि, उच्छ्वास, आंसू) इसलिए, उनके काव्य में विशिष्ट स्थान है।

इन तीन प्रेम कविताओं के अतिरिक्त 'पल्लव' की 'अनंग' शीर्षक कविता भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, क्योंकि इससे पंत के काम-संबंधी विचारों को समझने में सहायता मिलती है। काम को पंत ने समस्त सृष्टि का सूत्रधार और सृजन का कारण माना है। उसे मनोविकार अथवा मोह के रूप में न मानकर कवि उसे सृष्टि के समस्त हास-अश्रुमय व्यापार का संचालक मानता है :

> विश्व मंच पर हास अश्रु का
> अभिनय दिखला बारंबार,
> मोह यवनिका हटा, कर दिया
> विश्व रूप तुमने साकार।

यही व्यापक भाव-शक्ति जब नारी में प्रकट होती है, तब भी इसका वृहत्तर स्वरूप तदत् बना रहता है :

> मिला लालिमा में लज्जा की
> छिपा एक निर्मल संसार,
> नयनों में निःसीम व्योम औ
> उरोरुहों में सुरसरि धार।

कवि काम-भाव के दो स्वरूप स्वीकार करता है। एक शरीर से संबंधित है, दूसरा भावना से। ये दोनों ही स्वरूप अन्योन्याश्रित ढंग से सम्बद्ध हैं :

> पाकर अबला के पलकों से
> मदन तुम्हारा प्रखर प्रहार

हरते हो तब तुम जग का दुख,
वहा प्रेम सुरसरि की धार।

अंत में कवि अनंग से विश्वकामिनी की पावन छवि दिखाने की प्रार्थना करता है :

ऐ असीम सौंदर्य राशि में
हृत्कंपन से अंतर्धान,
विश्वकामिनी की पावन छवि
मुझे दिखाओ करुणावान।

प्रेम की जो अवधारणा इस कविता में व्यक्त हुई है वही कुछ और प्रौढ़ होकर गुंजन में व्यक्त होती है । प्रेम की कविताएं इस संग्रह में एक दर्जन के लगभग हैं। अधिकांश में प्रेम के उल्लास का चित्रण है; ग्रंथि, उच्छ्वास तथा आंसू की विरह-वेदना यहा नहीं है। कवि का स्वर यहां अत्यंत आशावादी है। वह प्रेम के उल्लास में अखिल जगत् को बांध लेना चाहता है :

सुमुखी, वह मधु-क्षण ! वह मधु-बात
धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर-नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव-बार,
अधर उर से उर अधर समान
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण।

गुंजन में पंत की प्रेम-दृष्टि का परिपक्व रूप प्रकट हुआ। ग्रंथि और उच्छ्वास में प्रेम की जो तरल, अशरीरी कल्पना ग्रहण हुई उसमें विशदता तो है, पर उसमें विराग की एक हलकी आभा भी है। इसका कारण संभवत: यह है कि ये दोनों ही विरह-काव्य हैं। हम इस प्रबंध में पीछे बार-बार कह आए हैं कि अरूप या अशरीरी का निरपेक्ष आकर्षण पंत की प्रकृति से मेल नहीं खाता। इसलिए प्रेम-संबंधी पंत की ऊपर वर्णित रचनाओं में भी यत्र-तत्र ऐंद्रियता उभर आती है। गुंजन में आकर पंत प्रेम की ऐंद्रिय भूमि को प्राप्त कर लेते हैं, पर यह ऐंद्रियता बहुत अधिक गहन है। यह वायवीयता से अधिक पुष्ट और स्थूल ऐंद्रियता से अधिक मोहक है। स्थूल ऐंद्रियता का प्रभाव यदि बहुत सीमित होता है तो वायवीयता का प्रभाव भी अधिक ठोस नहीं होता—यह पंत सदैव मानते प्रतीत होते हैं। गुंजन में आकर पंत प्रेम की अपनी तरल भूमि को जीवन की ठोस भूमि से मिलाकर एक गहन ढंग की ऐंद्रियता अपने प्रेम-गीतों में उभारते हैं। हम बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि यह भूमि पंत की प्रकृत भूमि है। प्रेम की वायवीय सत्ता, जो छायावाद की कविता में बहुत अधिक प्रकट हुई है, पंत की प्रकृति से मेल नहीं खाती। इस प्रकार हम कह सकते है कि गुंजन में आकर पंत ने अपनी प्रेम-भावना की वास्तविक भूमि उपलब्ध कर ली। इसके आगे का पंत का समस्त प्रेम-संबंधी साहित्य गहन-प्रवृत्तिमूलकता से मंडित है। गुंजन की प्रेम-कविताओं से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

१. तुम्हारी आंखों का आकाश,
सरल आंखों का नीलाकाश—
खो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणि ! इनमें खग अज्ञान।
२. नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास !
आज मधुवन की उन्माद वात
हिला रे गई पात-सा गात

० ० ०

३. आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह काज।
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्‌वास,

० ० ०

४. तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार
लालसा की लौ-से उठ लाल

गुंजन के बाद प्रेम की यही स्वस्थ, गहन, प्रवृत्तिमूलकता पंत की प्रगतिवादी कही जाने वाली रचनाओं में भी उभरी है। ग्राम्या में पंत कहते हैं :

धिक् रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्छल चुंबन
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर ?

० ० ०

आनंदित होओ, गर्वित, यह जीवन का वर,
गौरव दो द्वंद्व प्रणय को, पृथ्वी हो पावन।

प्रेम की सबसे अधिक विकसित परिकल्पना पंत की उत्तरवर्ती कृतियों में प्रकट हुई है। प्रेम देह-प्राण-मन के स्वाभाविक धर्म के रूप में विकसित होकर इन कृतियों में नवीन सांस्कृतिक चेतना के निर्माण की पीठिका के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस व्यापक राग-चेतना की व्याख्या करते हुए पंत कहते हैं—"यह मात्र मध्ययुगीन दृष्टिकोण है जो स्त्री-संपर्क को आध्यात्मिकता का विरोधी मानता है। सच तो यह है कि पिछली आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की धारणा इतनी खोखली, एकांगी तथा अवास्तविक रही है, जिसे स्त्री-स्पर्श तथा संपर्क उन्नत करने के बदले कलुषित कर सका है।···किंतु विकसित सामाजिकता के लिए स्त्री-पुरुष का संतुलित संस्कृत रागात्मक सहजीवन अनिवार्य सत्य है, और बहुत संभव है, कभी वह विभिन्न इकाइयों में विभक्त गृहों की सकीर्ण देहलियों और प्रांगणों को लांघकर एक अधिक व्यापक विकसित धरातल पर आत्म सयमित स्वत निर्देशित शील-सौम्य में परिणत हो सकेगा

इस प्रकार पंत की प्रेम कल्पना की .... भूमि ग्राम्या के बाद की कृतियों मे प्रतिष्ठित हुई। इस प्रेम-भावना में अध्यात्म और ऐहिकता दोनों का समाहार—बल्कि अभेद—स्फुट हुआ है। इस नवीन प्रेम-भावना का प्रकाशन 'उत्तरा' और 'कला और बूढ़ा चांद' में विशेष रूप से उत्कृष्ट हो सका है। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

१. बांहों में हो प्रीति पल्लवित,
अंतर में रस जलधि तरंगित,
स्मित उरोज शिखरों पर बरसे
स्वर्ग विभा सुर मोहन !

२. ओ युवक युवतियो,
स्वच्छ चांदनी में नहाओ,
नग्न गात्र, नग्न मन,—
आत्मदीप लिए,
मुक्त चांदनी में आओ।

प्रकृति-प्रेम

पंत आधुनिक काल के कवियों में सबसे अधिक प्रकृति के नजदीक रहे हैं और प्रकृति के कवि के रूप में उनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। हिंदी के सामान्य पाठकों को उनका परिचय 'प्रकृति के सुकुमार कवि' के रूप में ही मिला है। प्रकृति उनके काव्य मे आद्यन्त अनेक रूपों में वर्तमान है। जिस काल को सामान्यतः उनका प्रकृति-साहचर्य का काल समझा जाता है (वीणा से पल्लव तक), उसके बाद भी प्रकृति उनके काव्य में बराबर महत्त्वपूर्ण स्थान पाती रही। मोटे तौर पर हम पंत-काव्य में प्राकृतिक उपस्थिति को इन रूपों में पाते हैं—१. आलम्बन के रूप में, २. उद्दीपन के रूप में, ३. परोक्ष की अभिव्यक्ति के रूप में, ४. प्रतीक-रूप में, ५. अप्रस्तुत रूप में।

पंत-काव्य में प्रकृति का आलंबन-रूप : पंत प्रकृति के इस रूप में अन्य छायावादियों की अपेक्षा अधिक रमे हैं। प्रकृति के व्यक्त, प्रकट सौंदर्य से पंत बहुत कम अपनी दृष्टि हटाते हैं। ऊपर पंत के काव्य-व्यक्तित्व और उनकी सौंदर्य-दृष्टि की चर्चा करते हुए इस बात का विवेचन हम कर चुके हैं। यहां सिर्फ इतना दुहरा देना अपेक्षित है कि पंत अपनी स्वाभाविक रुचिवश प्राकृतिक व्यापार को प्रायः सीधे ग्रहण करते हैं—अपनी भावनाओं आदि का मेल करके नहीं—और उसी प्रकार सीधे उसका ग्रहण भी कराते हैं। इस कारण उनका प्रकृति-वर्णन अधिकतर प्रकृति के आलंबन-रूप का वर्णन है।

आलंबन-रूप में प्रकृति का चित्रण पंत ने अनेक पद्धतियों पर किया है। प्रकृति को एक सजीव, चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार करने के कारण इस प्रकार के वर्णनों की प्रमुख शैली के रूप में पंत ने मानवीकरण को अपनाया है। 'वीणा' की अधिकांश कविताएं प्रकृति को मातृवत् परिकल्पित करके उसे सम्बोधित हैं। प्राकृतिक पदार्थों और व्यापारों के वर्णन में पंत में मानवीकरण के दो रूप प्रकट हुए हैं—एक तो वह जहां वे प्राकृतिक वस्तु या को मानव रूप मे प्राय स्त्री-रूप में कल्पित करके रूपक

द्वारा उसका चित्रण करते हैं और दूसरा वह जहां वे चेतन मानकर उसे संबोधित करते है। पहले रूप का उदाहरण पल्लव की 'वसंतश्री' तथा गुंजन की 'चांदनी' और 'नौका विहार' शीर्षक कविताओं में मिल जाता है। दूसरा रूप 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि' (वीणा), मधुकरी, छाया, नक्षत्र (पल्लव), विहग के प्रति (गुंजन), छाया, तितली, सध्या (युगांत), ताल-कुल (स्वर्णधूलि), गिरि-विहगिनी, गिरि कोयल, कवि कोकिल, सरिता (पतझर : एक भावक्रांति) आदि अनेक कविताओं में प्रकट हुआ है। पहले प्रकार के मानवीकरण की सर्वश्रेष्ठ कविता निश्चित रूप से नौका-विहार है, जिसका कुछ विवेचन हम छायावादी काव्य के संदर्भ में कर चुके हैं। यहां हम 'चांदनी' से एक उदाहरण लेकर देखें :

वह सोई सरित पुलिन पर
सांसों में स्तब्ध समीरण
केवल लघु लघु लहरों पर
मिलता मृदु मृदु उर-स्पंदन।

दूसरे प्रकार का मानवीकरण अधिकांश कविताओं में दिखाई देता है। पल्लव की कविना 'सोने का गान' से कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

कहो हे प्रमुदित विहग कुमारि
कहां से आया यह प्रिय गान ?
तुहिन वन में छाई, सुकुमारि,
तुम्हारी स्वर्ग जाल-सी तान !

कभी मानवीकरण के साथ-साथ और कभी उससे स्वतंत्र पंत ने प्रकृति-चित्रण की एक और पद्धति का प्रयोग किया है। वे प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और बिंबों के माध्यम से करते चले जाते हैं। इस श्रेणी की सर्वश्रेष्ठ कविता पल्लव की 'बादल' शीर्षक कविता है। इसमें झीना-सा मानवीकरण भी है, पर इसकी अधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता इसके एक के बाद एक आने वाले बिंब हैं जो बादल के विभिन्न रूपों को एकदम साकार कर देते हैं। पृथुल बिंबात्मक पद्धति पर प्रकृति-चित्रण की कुछ अन्य कविताएं नक्षत्र (पल्लव), झंझा में नीम, ओस के प्रति, ओस-बिंदु (युगवाणी), हिमाद्रि (स्वर्णकिरण), सावन (स्वर्णधूलि), चंद्रकला, तारा-चिंतन (पतझर : एक भावक्रांति) आदि हैं।

आलंबन के रूप में प्रकृति-वर्णन की तीसरी पद्धति, जो पंत द्वारा व्यवहृत हुई है, प्राकृतिक वस्तुओं में मानवीय भावों के दर्शन की है। यह पद्धति मानवीकरण से बहुत भिन्न है। मानवीकरण में वर्ण्य प्राकृतिक वस्तु को मानव-रूप में कल्पित करके कभी रूपक की सहायता से और कभी केवल कल्पनात्मक पद्धति पर उसमें तत्तत् मानवीय भावों की अवतारणा की जाती है। अब हम जिस पद्धति का उल्लेख करने जा रहे हैं उसमें प्राकृतिक वस्तुओं का अपना रूप स्पष्ट सामने रखा जाता है पर उनमें साधारणतः मानव-सुलभ समझे जाने वाले भावों की की जाती है इसके पीछे का दार्शनिक आधार कदाचित यह है कि भाव अपनी शुद्ध सत्ता में मात्र मानव में ही नहीं समस्त

चेतन सत्ता मे बिंबित होते हैं। इस पद्धति पर लिखी गई सर्वश्रेष्ठ कविता युगवाणी की 'दो मित्र' है। इसका एक उद्धरण द्रष्टव्य है :

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिलबिल
एक दूसरे से मिल,
मित्रों से हैं खड़े।

इस प्रकार की स्वतंत्र कविताएं कम हैं। जगह-जगह इस प्रवृत्ति की झलक अनेक रच-नाओं में आई है। दो उदाहरण पहला पल्लव से, दूसरा उत्तरा से द्रष्टव्य हैं :

१. गगन के भी उर में हैं घाव,
देखतीं ताराएं भी राह
बंधा विद्युत् छवि में जलवाह
चंद्र की चितवन में भी चाह
२. रूप स्पर्श रस शब्द गंध की
हरित धरा पर झुका नील नभ !

इन्हे मात्र उत्प्रेक्षाएं मान लेना ठीक नहीं होगा। भाव-जगत् की व्यापक भूमिका का सधान ही यहां कवि को अभिप्रेत है।

प्रकृति के आलंबन-रूप के चित्रण में पंत प्रायः इन तीन पद्धतियों में से एक का या कभी-कभी तीनों का साथ-साथ प्रयोग करते हैं। केवल वर्णनात्मक प्रकृति-चित्रण, जिसमें वस्तुओं-व्यापारों की सूची मात्र होती है, पंत में कहीं भी नहीं है। वस्तु-वर्णन उन्होंने बिंबात्मक पद्धति पर किये हैं। प्रकृति-चित्रों में व्यक्तिगत भावों का आरोप भी पंत ने नहीं किया है। जहां उनके प्राकृतिक चित्रों में मानवीय राग-बिराग की झलक मिलती है, वहां भी प्राकृतिक वस्तुओं का अपना रूप अनाच्छादित है। पंत में प्रसाद की तरह प्रकृति को व्यक्तिगत भावों के रंग में रंगकर देखने की प्रवृत्ति प्रायः नहीं मिलती, इसके स्थान पर वे प्रकृति के बीच व्यापक भाव-भूमियों का संधान करते कभी-कभी पाये जाते हैं। अंत में, वे प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में देखते हैं।

उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण : उद्दीपन-रूप में प्रकृति-चित्रण पंत के काव्य मे अपेक्षाकृत विरल है। जहां कहीं ऐसा चित्रण आया भी है वहां प्रकृति केवल रीति-कालीन उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त नहीं होती वरन् चेतन सत्ता के रूप में स्वीकृत होने के कारण प्रायः व्यक्ति के सुख-दुख में सम्मिलित होती प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए 'आंसू' की अन्तिम पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

तेरे उज्ज्वल आंसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, मग्न हृदय, उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकायें गाएंगी सर्वथा।

कहीं-कहीं शुद्ध उद्दीपन-रूप में प्रकृति का वर्णन भी प्राप्त होता है :

धधकती है जलदों से ज्वाल,
बन गया नीलम व्योम प्रवाल,
आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह सा विकराल।

'ग्रंथि' की निम्नलिखित पंक्तियां उपर्युक्त दोनों उदाहरणों के बीच में आयेंगी। प्रकृति में यहां व्यक्तिगत भाव की प्रतिच्छवि देखने का प्रयास है, पर प्रकृति एकदम जड़, निरपेक्ष भी नहीं है :

इंदु की छवि में तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की बीचि में,
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में।

ऊपर से देखने पर ये पंक्तियां साधारण उद्दीपन-वर्णन से बहुत भिन्न नहीं जान पड़ती। पारंपरिक ढंग से नायक यहां प्रकृति में अपने मनोभाव (औत्सुक्य) को कल्पित करता प्रतीत होता है। लेकिन 'सुमन की स्मिति' और 'लता के अधर' इस प्रकार की धारणा को खंडित करते हैं। एकदम लगता है जैसे मानवीय व्यापार का एक प्राकृतिक पक्ष अथवा प्राकृतिक व्यापार का एक मानवीय पक्ष उद्घाटित हो रहा हो, जैसे प्रकृति का औत्सुक्य नायक के औत्सुक्य का आभास या छाया मात्र न होकर सचमुच का औत्सुक्य हो। सलिल की बीचि जिस प्रकार प्राकृतिक उपादान है उस प्रकार लता का अधर नहीं है। और लता का अधर मात्र अलंकार या चमत्कारिक कल्पना मात्र भी नहीं है। यह प्राकृतिक और मानवीय व्यापारों की घनिष्ठ एकता का निदर्शन है।

ऊपर के सभी उदाहरण ग्रंथि, उच्छ्वास और आंसू से लिए गये हैं। वास्तव मे प्रकृति का उद्दीपन रूप इन तीन रचनाओं में ही अधिक दिखाई दिया है। इनके अतिरिक्त इस रूप में प्रकृति का चित्रण पंत ने बहुत कम स्थलों पर ही किया है। कुछ कविताओं में, जहां कवि स्वयं आश्रय बनता है, प्रकृति किन्हीं भावों को बढ़ाती या पुष्ट करती प्रदर्शित की गई है। ऐसे स्थलों में भी प्रकृति को हम उद्दीपन-रूप में चित्रित समझ सकते हैं। ऐसी कुछ कविताएं वीणा, गुंजन, युगांत, ग्राम्या आदि में देखी जा सकती हैं। एक सुन्दर उद्धरण गुंजन से द्रष्टव्य है :

आज लोहित मधु-प्रात
व्योम-लतिका में छायाकार
खिल रही नव-पल्लव सी लाल,
तुम्हारे मधुर कपोलों पर सुकुमार
लाज का ज्यों मृदु किसलय-जाल।

परोक्ष की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकृति : व्यक्त प्रकृति में किसी अव्यक्त सत्ता का आभास प्राप्त करना छायावाद की एक विशेषता है। पंत के छायावादी काव्य में भी यह विशेषता प्रकट हुई है इस भाव की कविताए वीणा में सबसे अधिक एक दर्जन—हैं इनमे भी 'मिले तुम राकापति में आज' वाली कविता सर्वश्रेष्ठ है।

उसी की कुछ पक्तियां हैं :

हुआ था जब संध्या आलोक
हंस रहे थे तुम पश्चिम ओर,
विहग रव बनकर मैं चितचोर !
गा रहा था गुण, किन्तु कठोर !

पल्लव में 'मौन निमंत्रण', 'मुसकान', 'विसर्जन' आदि कविताओं में यह प्रवृत्ति प्रकट हुई है। 'मौन निमंत्रण' वीणा की कविता 'मिले तुम एकापति में आज' के ढंग की कविता है और इस संग्रह में इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ कविता है। 'मुसकान' भी अत्यत सुन्दर कविता है। एक अन्य कविता 'सोने का गान' भी बहुत सुन्दर बन पड़ी है, परतु उसमें परोक्ष सत्ता का आग्रह बहुत स्पष्ट नहीं है और उसकी व्याख्या इसके बिना भी की जा सकती है। 'गुंजन' की केवल एक कविता, 'शांत सरोवर का उर' में इस प्रवृत्ति की झलक मिलती है। इस प्रकार यह प्रवृत्ति पल्लव के बाद से निःशेष हो जाती है। आगे की काव्य-यात्रा में ज्यों-ज्यो कवि अधिकाधिक वास्तवोन्मुख होता गया, त्यों-त्यो वह इस रहस्यवादी भावभूमि से दूर होता गया। वास्तव में इस प्रकार की कविताए लगभग सबकी सन्न १९१८ और १९२३ के बीच लिखी गई थीं। इसके बाद के काव्य मे इस ढंग की एक भी रचना नहीं मिलती। इसलिए इस प्रवृत्ति को हम पंत की प्रतिनिधि प्रवृत्ति नहीं मान सकते। उनके काव्य की—यहां तक कि उनके प्रकृति-काव्य की भी—किसी महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में इस प्रवृत्ति का उल्लेख अनुचित होगा। वस्तुतः इस प्रकार की कविताएं बहुत कुछ कवि ने बाह्य प्रभावान्तर्गत तब लिखीं जब वह अपनी काव्यभूमि के अन्वेषण में संलग्न था। ज्यों ही वह अपनी यह जमीन पा सका उसने इस प्रवृत्ति का परित्याग कर दिया। पर इसका अर्थ यह नहीं कि इस ढंग की कविताएं सुन्दर या प्रभावोत्पादक नहीं हैं। इस प्रकार की जो कुछ कविताएं है वे कवि की स्वाभाविक प्रतिभा का सम्यक् परिचय देती हैं।

यहां तक हमने किसी न किसी प्रकार के प्रकृति-वर्णन की चर्चा की है। आगे के दो उपशीर्षकों के अंतर्गत हम प्रकृति के काव्यात्मक उपयोग की चर्चा करेंगे।

प्रतीक के रूप में प्रकृति : प्रतीक शब्द का इस संदर्भ में हम बहुत ही मोटा अर्थ ग्रहण कर रहे हैं। इस उपशीर्षक के अंतर्गत हम उन सभी स्थलों को लेंगे जहा पंत ने प्रकृति का उपयोग किन्हीं भावों-विचारों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के लिए किया है अथवा जहां उन्होंने प्राकृतिक व्यापारों में व्यापक मानवीय सिद्धान्तों का निदर्शन घटित किया है। इनमें से पहले प्रकार का उपयोग तो शास्त्रीय दृष्टि से प्रतीक की सीमा में आता है। दूसरे प्रकार का उपयोग उस तरह प्रतीक नहीं कहा जा सकता, फिर भी उद्देश्य-साम्य के कारण हम उसे भी इसी उपशीर्षक के अंतर्गत ग्रहण कर रहे हैं। सुविधा के लिए एक को हम प्रतीक और दूसरे को दृष्टांत प्रतीक कह सकते हैं। नीचे हम दोनों पर क्रम से विचार करेंगे।

प्रतीक के रूप में प्राकृतिक उपादानों के उपयोग की प्रवृत्ति पंत की अत्यन्त आरंभिक रचनाओं में ही दिखाई पड़ती है। सन १९१८ ई० में लिखी गई वीणा की

इस कविता मे इस प्रकार का एक प्रयास दर्शनीय है .

जब मैं कलिका ही थी केवल,
नहीं कुसुम थी बनी नवल,
मैं कहती थी मेरा मृदु-मुख
शशि के कर खोलें शीतल !
पर, आंखें खुलते ही मैंने
अंधकार देखा—सविकल
स्वर्ण-दिशा को देख सजल-दृग,
तुम्हें पुकारा है उज्ज्वल !

लेकिन प्रारंभ की कविताओं में इस प्रकार की प्रतीकात्मकता कुछ विरल है। वीणा और पल्लव की कुछ कविताओं में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। पल्लव की कविता 'विश्व व्याप्ति' प्रतीकात्मकता का श्रेष्ठ उदाहरण है। फिर भी पंत की छायावादी कविता में प्रकृति उस मात्रा में प्रतीकात्मक होकर नहीं आई जिस मात्रा मे, उदाहरणार्थ, प्रसाद के छायावादी काव्य में। 'गुंजन' में 'कलरव किसको नहीं सुहाता', 'आखों की खिड़की से उड़-उड़', 'आज शिशु के कवि को अनजान', 'लाई हूं फूलों का हास' तथा 'जीवन का उल्लास' आदि कुछ कविताओं में प्रकृति का प्रतीकात्मक प्रयोग मिलता है। पर उनमें भी प्रतीकात्मकता सर्वत्र स्पष्ट नहीं है। उदाहरणार्थ, गुंजन की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतीकात्मकता की छाया है, पर उन्हें बिना प्रतीकात्मक माने भी काम चल जाता है :

फैल गई मधु ऋतु की ज्वाल,
जल जल उठतीं बन की डाल,
कोकिल के कुछ कोमल बोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

वास्तव में, पंत अपनी प्रकृति-काल की कविताओं में प्रकृति का गोचर रूप इतना स्पष्ट अपने समक्ष सदैव रखते प्रतीत होते हैं कि प्रतीकात्मकता का आग्रह उनमें कम ही आ पाता है। इसकी बजाय वे या तो इन गोचर रूपों से सादृश्य-योजनाएं निकाल लाते हैं या उस प्रकार के प्रतीक जिन्हें हमने दृष्टांत-प्रतीक कहा है। इन दोनों ही रूपों में प्रकृति का गोचर रूप सामने रहता है। इसके विपरीत प्रतीकों में यह रूप स्वभावत: गौण हो जाता है। इस गोचर रूप के आग्रह के कारण ही इस काल की कविताओं में जहां कहीं प्रकृति प्रतीकात्मक ढंग पर प्रयुक्त भी हुई है, वहां भी कभी-कभी प्रतीकात्मकता खंडित हो जाती है और प्रतीक का प्रकृत रूप उभर आता है। गुंजन की निम्नलिखित पंक्तियों को देखें :

कलरव किसको नहीं सुहाता ?
कौन नहीं इसको अपनाता ?
यह लघु लहरों का विलास है
इसमें खिंच आता।

यहा कलरव को हम जीवन के उल्लास का प्रतीक मान सकते हैं। इस प्रतीक को पुनः पुष्ट करने के लिए छोटी-छोटी लहरों में खिच आए चन्द्र-बिब का रूप रखा गया है। यहा भी हम छोटी 'लहरों के विलास' को जीवन की छोटी-छोटी दैनंदिन बातों का तथा कलानाथ के लहरों में खिच आने को रोजमर्रा की छोटी-मोटी दिखने वाली बातो के व्यापक और महान् आकर्षण का प्रतीक मान सकते हैं। यहां प्रतीक पर्याप्त पुष्ट कहा जाएगा; पर और ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि बाद की दो पंक्तियों का गठन कुछ दृष्टांत के स्तर पर हुआ है, संपूर्ण व्यापार को मानो कथ्य (अर्थात् यह कि व्यापक सौंदर्य का आकर्षण भी प्रतिदिन के सामान्य जीवन-व्यापार में ही ढूंढ़ना उचित है) की पुष्टि में काव्यात्मक प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसलिए 'यह लघु लहरों का विलास है, कलानाथ इसमें खिच आता' का गठन प्रतीकात्मक से अधिक बिंबात्मक कहा जाएगा। इन पंक्तियों में प्रतीकात्मकता उतनी या वैसी नहीं है जैसी प्रसाद के आंसू की इन पंक्तियों में :

झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी नीरद माला
मेरे इस शून्य हृदय में
सब ने आ डेरा डाला।

यहा प्राकृतिक व्यापार पूर्णतः आच्छन्न है और प्रतीक रूप स्पष्ट उभरकर आया है। 'डेरा डाला' क्रिया का प्रयोग ही इस बात का प्रमाण है कि प्राकृतिक व्यापार का गोचर रूप प्रसाद के समक्ष नहीं है, प्राकृतिक उपकरणों को वे केवल प्रतीक-रूप में ग्रहण कर रहे हैं। इस प्रकार का ग्रहण पंत के छायावादी काव्य में बहुत कम है। यह बात कुछ विचित्र-सी लग सकती है, क्योंकि प्रायः यह माना जाता रहा है (संभवतः प्रसाद के कारण) कि प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार की धारणा समस्त छायावादी साहित्य के संदर्भ में सही है या नहीं, इसका विवेचन न करके हम यहां इतना ही कहना चाहते हैं कि यह पंत के छायावादी काव्य के संदर्भ में सही नहीं है। यह कुछ विचित्र बात है कि पंत में प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग उनकी प्रकृति-काल के बाद की कविताओं में क्रमशः अधिक दिखाई पड़ने लगता है। पंत की कविताओं की तथ्यात्मक जांच करके हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, चाहे ऐसा निष्कर्ष छायावाद के संबंध में किसी पूर्व निर्धारित अवधारणा के कितने ही विरुद्ध पड़ता हो।

युगांत में प्रकृति के प्रतीकात्मक उपयोग के उदाहरण पर्याप्त हैं। पहली कविता 'द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र' में ही यह प्रवृत्ति दिखाई दे जाती है। इसके अतिरिक्त लगभग आठ-दस अन्य कविताओं में भी प्रतीकात्मकता के दर्शन होते हैं। पहले की अपेक्षा प्रतीकात्मकता अब अधिक स्पष्ट है, प्राकृतिक पदार्थों का गोचर रूप कुछ पीछे हो गया है। युगांत से एक उदाहरण :

नव मधु प्रभात!—गूंजते मधुर
उर उर में नव आशाभिलाष,

सुख-सौरभ जीवन-कलरव से
रम जाता सूना महाकाश।

इसी प्रकार की युगवाणी की 'पतझर', 'गंगा की प्रभात', 'हरीतिमा' तथा ग्राम्या की 'स्वप्न पर', 'गंगा', 'पतझर' इत्यादि कविताओं में भी यह प्रवृत्ति प्रकट हुई है।

परन्तु प्रकृति के प्रतीकात्मक उपयोग की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्विवाद रूप से पंत का चेतनावादी काव्य है। स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि से कला और बूढ़ा चांद तक यह प्रवृत्ति अपने चरम उत्कर्ष पर है। पंत का समस्त चेतनावादी काव्य उसी प्रकार प्राकृतिक प्रतीकों का काव्य है जिस प्रकार उनका छायावादी काव्य प्राकृतिक आलम्बनों का काव्य है। कला और बूढ़ा चांद से दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

१. ओ ममाखियों,/यह सोने का मधु/कहां से लाई?/वे किस पार के वन थे/सद्यः खिले फूल?/जिनकी पंखुड़ियां/अंजलियों की तरह/अनंतदान के लिए/खुली रहती हैं।

२. यह वन की आग है!/डाल डाल/पात पात/जल रहे हैं!/कोपलें/चिनगियो सी/चटक रही हैं।/आनंद सिंधु/सुलग उठा है!

इस प्रकार के सैकड़ों उद्धरण चेतनावादी काव्य से दिये जा सकते हैं। इस प्रसग का अधिक विस्तार न करके यहां यही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि 'उत्तरा' की लगभग दो-तिहाई कविताओं में तथा 'कला और बूढ़ा चांद' की दो-चार को छोड़कर सारी कविताओं में प्राकृतिक प्रतीक आये हैं। वास्तव में, शुद्ध प्रतीकात्मक ढंग से प्राकृतिक उपादानों के उपयोग की दृष्टि से पंत के चेतनावादी काव्य की ही चर्चा होनी चाहिए। उनका छायावादी और प्रगतिवादी साहित्य इस दृष्टि से उसकी तुलना में कही नहीं ठहरता।

जिन स्थलों पर कवि ने प्राकृतिक व्यापारों के मध्य जीवन-सिद्धान्तों की अवतारणा की है और उनका निदर्शन ढूंढ़ा है, ऐसे समस्त स्थलों को हम दृष्टांत-प्रतीक वाले स्थल मानेंगे। प्रायः इस प्रकार के प्रतीक पूरी कविताओं में आये हैं।

दृष्टांत-प्रतीकों की दृष्टि से गुंजन सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। इस प्रकार की सबसे अधिक कविताएं गुंजन में ही हैं। यह प्रवृत्ति वीणा तथा पल्लव में प्रायः नहीं है। वास्तव मे गुंजन बहुत कुछ संधि-काल की रचना है, जब कवि प्रकृति से मानव की ओर आ रहा था। प्रकृति-काल में जिस प्रकृति का मुख कवि को सबसे अधिक प्यारा था, उसका स्थान युगांत में मानव-मुख ले लेता है। गुंजन एक प्रकार से इस प्रक्रिया की बीच की कड़ी है। इसलिए इसमें प्रकृति का जैसा ग्रहण हुआ है वह छायावादी काल के आलम्बनमूलक ग्रहण तथा बाद के प्रतीकात्मक ग्रहण के बीच की चीज है। गुंजन में इस कोटि की दस से भी अधिक कविताएं हैं। इनमें भी 'झर गई कली' सर्वश्रेष्ठ कही जायेगी। उसकी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं:

झर गई कली, झर गई कली!
आई लहरी चुम्बन करने,
अधरों पर मधुर अधर धरने,

फनिल मोती से मढ़ भरने
वह चंचल सुख से गई छली !
निज वृन्त पर उसे खिलना था,
नव-नव लहरों से मिलना था
निज सुख-दुख सहज बदलना था,
रे गेह छोड़ वह वह निकली !

युगांत, युगवाणी और ग्राम्या तक यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। उसके बाद यह बहुत विरल हो जाती है। फिर भी बहुत बाद के संग्रहों में भी कहीं-कहीं इसकी झलक मिल ही जाती है। 'पतझर : एक भावक्रांति' से एक उद्धरण दिया जा रहा है :

लोग सोचते,
वृक्ष ऊर्ध्व करते आरोहण,
मुग्ध देखते नभ का आनन,
सूर्यमुखी पा दृष्टि—
न भू-जीवन के प्रति
रखते संवेदन !
नहीं जानते
उनके कितने गहरे मूल
धरा जीवन में—
बिना गहन बैठे कोई ऊपर उठ सकता ?

अप्रस्तुत रूप में प्रकृति : अप्रस्तुत रूप में प्राकृतिक आदानों और व्यापारों का उपयोग कविता में उतना ही पुराना है जितनी स्वयं कविता। पंत ने इस प्रकार का उपयोग अपनी विशिष्टता के साथ किया है। यह विशिष्टता प्रधानतः दो बातों से उत्पन्न होती है। पहली बात तो यह है कि पंत प्रकृति से एक घनिष्ठ प्रकार का संबंध अपने काव्य-काल के प्रारंभ में ही कर सके थे। इस कारण उनके प्राकृतिक बिम्ब आदि अधिक वैविध्यपूर्ण, चमत्कारिक तथा प्रभावोत्पादक बन सके हैं। दूसरी बात यह कि पंत के समीप प्रकृति सदैव एक सजीव सत्ता के रूप में रही। इस कारण उनके अप्रस्तुतों में 'कमलवत् चरण' और प्रवाल-सम अधर वाली निर्जीवता नहीं आई। उनके प्राकृतिक अप्रस्तुत अधिक जीवन्त और बोलते-से हैं। नीचे हम क्रमशः वस्तु-वर्णन और भाव-निरूपण के लिए प्रयुक्त प्राकृतिक अप्रस्तुतों को एक उदाहरण ग्रंथि तथा दूसरा गुंजन से ले के देखें :

इंदु पर उस इंदु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे,—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।
° ° °
कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से ?

सध्या उदास फिर जाती
सून गृह के आगन से ।

अध्यात्म रस : पंत में अध्यात्म का एक तत्त्व सदैव प्रबल रहा है। प्रारंभ में ही गीता-उपनिषद् आदि के अध्ययन से अध्यात्म के प्रति एक तीव्र आकर्षण पंत मे उत्पन्न हो गया था। प्रारंभ में इसकी अभिव्यक्ति रहस्यानुभूति की आत्मपरक उक्तियो मे हुई। बाद में क्रमशः यह अध्यात्म मानव-जीवन और भू-चेतना से जुड़ता चला गया है। छायावाद के बाद की पंत की समस्त काव्य-यात्रा क्रमशः अध्यात्म भू-चेतना से सपृक्त होता गया है, और अंत में समस्त अन्तः-बाह्य जीवन के व्यापक सामंजस्य की भूमिका में उतरा है। छायावादी काव्य में अध्यात्म व्यक्ति की वस्तु है, प्रगतिवादी काव्य में वह भू-चेतना का अनुगामी बना दिखाई देता है, और चेतनावादी काव्य मे फिर ऊपर उठकर अत्यन्त व्यापक जीवन-दृष्टि का समानार्थी बनता है। आगे हम क्रम से इस विकास का संक्षिप्त दिग्दर्शन करने का प्रयास करेंगे।

आत्मपरक अध्यात्मवाद की रहस्यवादी उक्तियां 'वीणा' में सबसे अधिक—पन्द्रह-सोलह के लगभग—हैं। 'पल्लव' में इनकी संख्या इससे बहुत कम हैऔर 'गुंजन' मे और भी कम है। रहस्यवादी उक्तियां पंत के छायावादीकाव्य में ही क्रमशः अल्पतर क्यो होती गई ? इसका सबसे बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति-केन्द्रित अध्यात्मवाद पत के अपने मन की चीज है ही नहीं। कुछ रवीन्द्रनाथ के अध्ययन के फलस्वरूप तथा कुछ अपनी अपरिपक्वता के कारण प्रारंभ में कवि ने इस प्रकार की कविताएं लिखीं। वे काफी अच्छी बन पड़ी हैं, यह अलग बात है; पर इतना निश्चित है कि कवि की अपनी वृत्ति व्यक्ति-चेतना की अपेक्षा व्यापक समूह-चेतना या जीवन-चेतना में अधिक सहजता के साथ रमी है। इसी कारण ज्यों ही कवि ने कुछ परिपक्वता प्राप्त की वह इस प्रकार की रहस्यवादी उक्तियों से विरत हो गया। 'वीणा' के तत्काल बाद 'पल्लव' मे इस प्रकार की कविताएं केवल चार-पांच मिलती हैं। 'गुंजन' में ऐसी कविताएं दो से अधिक नहीं हैं। इतने पर भी यदि रहस्यवाद को पंत की छायावादी कविता की प्रधान विशेषता के रूप में स्थापित करने का किसी को आग्रह हो तो हम केवल इतना कह देना चाहते हैं कि पंत की दो प्रौढ़ छायावादी कृतियों—'पल्लव' और 'गुंजन'—की कुल बयासी कविताओं में केवल छः या सात कविताएं रहस्यवादी ढंग की हैं।

हमारे विचार से पंत की अपनी अध्यात्म-दृष्टि 'वीणा' की इन पंक्तियो मे अधिक सफलतापूर्वक व्यक्त हुई है :

मैं इतनों की सुख-सामग्री
हूंगी जगती के मग में,
शोक-मुक्त होंगे द्रुत इतने
कोक मुझे कर अवलोकन।

अध्यात्म की यही व्यापक जीवन की भूमिका कवि के काव्य में आगे प्रस्फुटित हुई। आत्मकेन्द्रित रहस्यवादी भूमि का प्रसार 'वीणा' के आगे बहुत कम हुआ इसलिए कवि की -दृष्टि के विकास की दृष्टि से उपर्युद्धृत पंक्तियों का अधिक महत्त्व है।

हस्यवादी प्रकृति को इस विकास का प्रथम सोपान मान लें तब भी उसे पंत काव्य में एक एकाकी घटना (आइसोलेटेड इमेंट) ही मानना होगा, इस विकास का दूसरा सोपान उससे नहीं, इस दूसरी जीवनवादी प्रवृत्ति से निकला।

युगांत से हम अध्यात्म-दृष्टि का दूसरा सोपान देखते हैं। यहां आकर कवि आत्म-चेतना और विश्वात्म-चेतना दोनों को स्थूल मानव-जीवन से जोड़ देता है। मिट्टी के ढेले को सम्बोधित करके कही गई ये पंक्तियां इस बात की परिचायक हैं :

खुल गया शून्यमय अवगुण्ठन
अज्ञेय सत्य तू जड़ चेतन।

शून्य का रहस्य-अवगुंठन अब खुल चुका है और कवि साधारण मिट्टी के ढेले में विराट् अस्तित्व के दर्शन कर सका है। अध्यात्म की सुगंध इस प्रकार मिट्टी की गंध से जुड़ जाती है। यही भाव पुन: इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है :

खोलो मुंह से घूंघट खोलो,
हे चिर अवगुंठनमयि बोलो !
क्या तुम केवल चिर अवगुण्ठन
अथवा भीतर जीवन-कम्पन ?

रहस्य के पीछे का तत्त्व जीवन-कम्पन ही हो सकता है, अन्यथा रहस्य अपने आप में केवल छिलका है—'पट पर पट केवल तम अपार'।

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में भी अध्यात्म के प्रति यही दृष्टि प्रकट हुई है। जन-जीवन से संयुक्त होकर ही उसकी सार्थकता है, व्यक्ति-साधना के रूप में नहीं। 'युग-वाणी' की इन पंक्तियों में यही भाव प्रकट हुआ :

आत्मा की नि:सीम मुक्ति को
भव की सीमा में बंधवाओ।

इसी प्रकार 'ग्राम्या' की यह पंक्ति :

स्थूल ही सूक्ष्म आज, जन प्राण।

'ग्राम्या' के साथ दूसरा सोपान समाप्त होता है। ऊपर की तीन कृतियों में अध्यात्म-चेतना को स्थूल जीवन-जगत् की यथार्थ चेतना से संयुक्त किया गया है और यह दृष्टि विकसित करने की चेष्टा की गई है कि भू-जीवन से अलग अध्यात्म की कोई सार्थकता नहीं है। पर साथ ही इन कृतियों में स्थूल के समक्ष सूक्ष्म कुछ दब गया है। अगली कृतियों 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में सूक्ष्म को एक बार पुन: ऊपर उठाया गया है। इसलिए इन संग्रहों में हम अध्यात्म-दृष्टि के विकास के तृतीय सोपान को रेखांकित कर सकते हैं।

स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि में सूक्ष्म को उठाया अवश्य गया है, पर यह सूक्ष्म चेतना उस प्रकार की सूक्ष्म चेतना से बिल्कुल भिन्न है जिसे मध्यकालीन कहकर पंत ने सदैव पश्चगामी प्रवृत्ति बताया है। यह नवीन प्रकार का सूक्ष्मान्वेषण स्थूल और सूक्ष्म के द्वंद्व के परिहार का अन्वेषण है। प्राचीन अध्यात्म और नवीन भूतवाद दोनों ही मनुष्य के अविभाज्य जीवन को दो स्पष्ट खंडों में बांटते हैं—एक आंतरिक जीवन, दूसरा बाह्य

आतरिक जीवन पर ही बल देने के कारण अध्यात्म व्यक्ति केन्द्रित हो जाता है केवल बाह्य जीवन पर दृष्टि रखकर भूतवाद मानव को उसकी उच्चतर भूमि से नीचे उतार देता है। पंत ने अपनी नवीन अध्यात्म-दृष्टि द्वारा इन दोनों ही एकांगी सिद्धांतों का निषेध कर एक नवीन समंजसित जीवन-दृष्टि रखने का प्रयास किया है। इस नवीन जीवन-दृष्टि में व्यक्ति-चेतना और समूह-चेतना का तथा ऊर्ध्व-संचरण और समतल सचरण का सामंजस्य है। संक्षेप में इस नवीन अध्यात्म-दृष्टि द्वारा पंत मानव के समग्र अंत:-बाह्य जीवन का सामंजस्य निरूपित करते हैं। जीवन में इस प्रकार का सामंजस्य निर्मित करने वाली शक्ति को पंत ने स्वर्णकिरण और बाद की समस्त कृतियों में चेतना या अंतश्चेतना का नाम दिया है। लेकिन 'समाधिता' में 'ईश्वर' और 'आत्मा' शब्दो का प्रयोग भी दिखाई देता है। उदाहरण द्रष्टव्य है :

१. भेद नहीं जग में ईश्वर में
   प्रज्ञा हो जो विकसित—
   भू पथ पर ईश्वर ही प्रतिक्षण
   विचरण करता निश्चित।
२. जग के विस्तृत दर्पण में
   बिम्बित आत्मा का यौवन।

पर इन नवीन प्रतीकों के प्रयोग के बावजूद 'कवि' की अध्यात्म-दृष्टि भू-केन्द्रित ही है :

बांधो जग जीवन से
प्राणों का रस छंद महत्तर,
अहंकार को दे सामूहिक अर्थ,
मुक्ति लोकोत्तर।

लोकोत्तर मुक्ति की यह सर्वथा नवीन कल्पना पंत की अध्यात्म-दृष्टि का चरम विकास सूचित करती है।

इस उपखंड का शीर्षक हमने अध्यात्म-रस दिया है। इसका कारण यह है कि पंत की अध्यात्म-भावना का जो विकास हम ऊपर निरूपित कर आये हैं, वह चिन्तना, विचार या ज्ञान-साधना के स्तर पर ही नहीं घटित हुआ है, वह भाव-साधना के स्तर पर घटित हुआ है। इस प्रक्रिया में, इसलिए, अध्यात्म शुष्क विचार के क्षेत्र से हटकर रसमय भाव-क्षेत्र में आ गया है और इससे अनेकानेक अद्भुत रसपूर्ण कविताओं और उक्तियों की सर्जना संभव हुई है। छायावादी काव्य से इस प्रकार के उद्धरण लेकर हम पीछे देख चुके हैं। यहां चेतनावादी काव्य से एकाध उदाहरण लेकर देखें। उत्तरा से एक उद्धरण लें :

भू की ममता मिट जाती
मेघों की छाया-सी चंचल,
सुख सपने सौरभ से उड़ते,
झरते उर के रंगों के दल।

ये अद्‌भुत ढंग से संश्लिष्ट बिंबों वाली पंक्तियां हैं। पहली दो पंक्तियों में यह भाव व्यक्त किया गया है कि कवि के मन में धरती के प्रति जो एक ऊपरी, हलका मोह था (जो उसकी ऊर्ध्वगति में बाधक बनता था) अब वह समाप्त हो गया है। इस मोह के लिए मेघों की छाया का जो उपमान लाया गया है, वह उसकी अगंभीरता और हलकेपन की अच्छी व्यंजना करता है। मेघों की छाया हटने की व्यंजना यह भी है कि अब आकाश (मन का) साफ हो गया है। इसके बाद चौथी पंक्ति में पतझड़ का बिंब रखा गया है। हृदय में जो रंग जम चुके थे अब वे धीरे-धीरे पतझड़ के पत्तों की तरह झड़ रहे हैं। तीसरी पंक्ति वसंत का हलका आभास देती है, उसका भाव यह है कि चेतना के नवोदय के साथ एक ओर जहां चित्त के पुराने भाव नष्ट हुए हैं, वहां नये भाव की गंध भी कुछ मिलने लगी है, बल्कि यों कहें कि इस नई गंध के आकर्षण ने ही पुराने रंगों-गंधों को चित्त से झाड़ दिया है। इस प्रकार कुल मिलाकर इन पंक्तियों में नवीन जीवन स्वप्न को धारण करने की आत्मिक तैयारी का अद्‌भुत अंकन है। इस तैयारी के साथ कवि अपने (पुराने भावों के नष्ट हो जाने के कारण रिक्त) चित्त में नूतन तत्त्व को आमंत्रित करता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कवि ने इस नवीन जीवन-तत्त्व को चेतना अथवा अंतश्चेतना के रूप में कल्पित किया है। चेतनावादी काव्य की—विशेषतः 'उत्तरा' और 'कला और बूढ़ा चांद' की—अनेक कविताएं इस चेतना को संबोधित हैं। कवि ने उसके प्रति अनेक मनोरम पद्धतियों पर अपना आकर्षण व्यक्त किया है। चेतना को संबोधित ऐसी काव्यात्मक उक्तियों को ही मुख्यतः दृष्टि में रखकर हमने इस उपखंड का नाम 'अध्यात्म-रस' दिया है। ऐसी उक्तियों की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध कृति संभवतः 'कला और बूढ़ा चांद' है। जितनी गहन, पारदर्शी, काव्यात्मक अध्यात्म-भावना इस संग्रह की कविताओं में प्रकट हुई है उतनी संभवतः 'उत्तरा' में भी नहीं। अध्यात्म-रस का एक अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण 'कला और बूढ़ा चांद' से प्रस्तुत करके हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं:

> किरणों की
> सुनहली आभा में
>
> लिपटा नील
> तुम्हारा उत्तरांग
> और
> तरंगित सागर
> मुक्ताफेन जड़ी
> हरी रेशमी साड़ी पहने
> तुम्हारी
> कटि तक डूबी
> आधी देह है।

किसे ज्ञात था,
पलक मारते ही
ओस के धुएं के
बादल-सा
यह संसार
आंखों से ओझल हो
जाएगा !
अंतर में
तुम्हीं

शेष रह जाओगी !

यथार्थ-बोध

पंत की यथार्थ की अवधारणा अत्यंत विस्तृत है। स्थूल वस्तु-यथार्थ या पदार्थ सत्य को बार-बार अतिक्रम करके वे नवीन प्रकार की यथार्थ दृष्टि का निर्माण करना चाहते हैं। युगवाणी की पंक्ति '''रूप का सत्य रूप के भीतर नहीं समाता' की यही व्यंजना है। यथार्थ को खींचकर पंत उस भूमि पर ले जाते हैं जहां वह वस्तु के अंदर का सत्य हो जाता है, विरोधी नहीं रहता। परंतु इस स्थल पर हम यथार्थ की शास्त्रीय अवधारणा को ही दृष्टि में रखकर पंत-काव्य की यथार्थवादी ढंग की रचनाओं पर विचार करेंगे।

यथार्थवादी ढंग की रचनाएं युगवाणी और ग्राम्या में दिखाई देती हैं। युगांत का नाम इस जगह हम जानबूझकर नहीं ले रहे हैं, क्योंकि नये जनमूल्यों के प्रति एक उत्साह और आकर्षण ही युगांत की कविताओं में अधिक व्यक्त हुआ है। यथार्थ-चित्रण की कोई कविता हमें उसमें नहीं मिलती। युगवाणी की 'दो लड़के' संभवतः पंत की पहली कविता है जिसे हम यथार्थवादी चित्रण शैली की कविता कह सकते हैं। एक अन्य कविता, 'मूल्यांकन' में यथार्थवाद का स्वर अधिक स्पष्ट है :

आज सत्य, शिव, सुंदर करता
नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ संस्कृत लगते
मन को केवल कुत्सित।
संस्कृति, कला, सदाचारों से
भव-मानवता पीड़ित,
स्वर्ण-पींजड़े में है बंदी
मानव - आत्मा निश्चित।

ये तीव्र मोहभंग की पंक्तियां हैं, चाहे वह मोहभंग तात्कालिक ही क्यों न रहा हो। खास तौर से जब हम यह देखते हैं कि ये एक मूलतः सांस्कृतिक मन वाले कवि की पंक्तियां हैं तो हमें इस मोहभंग की तीव्रता का अनुमान सहज ही हो जाता है इतनी सीधी सपाट

और बेलाग भाषा अपने को यथार्थवादी उद्घोषित करने वालों में भी कम ही मिलेगा। सत्य, शिव और सुंदर का साथ-साथ निषेध करके कवि ने उस समस्त मूल्य-दृष्टि पर प्रहार किया है जो बड़े-बड़े शब्दों की आड़ में अन्याय का समर्थन खोजती रहती है।

यही बेलाग भाषा 'कृषक' शीर्षक कविता में भी दिखाई देती है :

युग-युग का वह भारवाह, आकटि नत मस्तक
निखिल सभ्य संसार पीठ का उसके स्फोटक !
अज्ञ मूढ़, जड़ भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक।

साधारण जन में बराबर क्रांति का कल्पित स्फुलिंग ढूंढ़नेवाले प्रगतिशीलों को बाद की दो पंक्तियों से चोट पहुंचेगी, क्योंकि पंत की यथार्थ-दृष्टि रोमानी यथार्थ-दृष्टि नहीं है। ये पंक्तियां चोट पहुंचाती हैं, यही इनकी सार्थकता है। जड़ता और कर्दम को भावुकता के रंग में रंगकर अति नाटकीय उक्तियां बघारना भी एक दूसरे प्रकार का अन्याय है। शोषित जन का इससे अपकार ही होता है। अगली कविता 'श्रमजीवी' में पंत ने स्वयं यह प्रवृत्ति प्रदर्शित की है। यथार्थवादी शैली की दृष्टि से 'श्रमजीवी' निश्चित रूप से 'कृषक' की अपेक्षा बहुत साधारण कोटि की कविता है। 'दैन्य कष्ट कुंठित—सुंदर है उसका आनन', 'लोक क्रांति का अग्रदूत, वरवीर, जनादृत' आदि सुनी-सुनाई बातें हैं। 'युगवाणी' काल में पंत कृषक के जीवन को कुछ नजदीक से देख चुके थे, पर श्रमजीवी (कविता में औद्योगिक श्रमिक को दृष्टि में रखा गया है—ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है) पंत की अपनी जानकारी की चीज नहीं है।

यथार्थवादी अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से 'नर की छाया' शीर्षक कविता भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। युगवाणी से उसकी कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

वह नर की छाया नारी !
चिर नमित नयन, पद विजड़ित,
वह चकित, भीत हरिणी-सी
निज चरण चाप से शंकित।
मानव की चिर सहधर्मिणि,
युग-युग से मुख अवगुंठित,
स्थापित घर के कोने में
वह दीपशिखा-सी कम्पित।

चौथी पंक्ति में सहधर्मिणी शब्द ध्यान देने लायक है। तत्काल बाद की पंक्ति 'युग युग से मुख अवगुंठित' की असंगति में यह शब्द अद्भुत व्यंग्य की सृष्टि करता है इसी प्रकार अंत की दो पंक्तियों में 'स्थापित' और 'दीपशिखा-सी कंपित' में भी एक व्यंग्य उभरा है। 'कांपती लौ वाले दीपक को हवा से बचाने के लिए जैसे छिपाकर कोने में रख दिया जाता है, उसी तरह स्त्री को घर के कोने में रख दिया गया है, मानो बाहर आने से वह नष्ट या विरूप हो जाएगी'—यह इन पंक्तियों का भाव है। पर 'स्थापित' शब्द के भारीपन में जो व्यंग्य-भाव है तथा हवा से बचाने में जो उपहास का स्वर है व

इस भावार्थ से अधिक तीखे एक प्रभाव की सृष्टि करता है। साथ ही अन्याय के प्रति कवि का आक्रोश-भाव भी व्यंग्य और उपहास में लिपटा चला आया है।

'युगवाणी' की यथार्थ-बोध की कविताओं की चर्चा को यहीं समाप्त करके अब हम 'ग्राम्या' पर आते हैं। यथार्थवादी शैली की दृष्टि से 'ग्राम्या' निश्चित रूप से पंत की प्रधान कृति है। इस संग्रह की अधिकांश अच्छी कविताएं इसी शैली की कविताए हैं। इनमें भी 'वह बुड्ढा' शीर्षक कविता सर्वश्रेष्ठ है और न केवल पंत की वरन् समस्त यथार्थवादी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए। इस कविता की चर्चा हम इस प्रबंध में पीछे कुछ विस्तृत ढंग से कर आए हैं। यहां इतना ही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि 'वह बुड्ढा' की यथार्थवादिता को समझने के लिए साम्यवादी दृष्टि पर्याप्त नहीं है, उसकी यथार्थवादिता 'भैंसागाड़ी' जैसी कविताओं की यथार्थवादिता से बहुत आगे की चीज है। और जब हम ऐसा कह रहे हैं तो यह स्वीकार करके चल रहे हैं कि स्वयं 'भैंसागाड़ी' यथार्थवादी ढंग की उत्कृष्ट रचना है। पर जहा भैंसागाड़ी में केवल 'यथार्थ' है, वहां 'वह बुड्ढा' में यथार्थ की भयावहता का सीधा साक्षात्कार है। इस कविता के अंतिम अंशों में आने वाली पंक्ति, 'काली नारकीय छाया वह छोड़ गया निज मेरे भीतर' के लिए 'भयावह' से छोटा कोई विशेषण उपयुक्त नहीं हो सकता। अनुभूति और अभिव्यक्ति की ईमानदारी का यह कविता श्रेष्ठ निदर्शन है। इसीलिए हमने कहा कि साम्यवादी दृष्टि से इसे नहीं समझा जा सकता। इसे समझने के लिए कवि के अपने दारुण अनुभव से होकर गुजरना होगा।

'वह बुड्ढा' के अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेखनीय कविताएं 'वे आंखें', 'गांव के लडके', 'ग्राम वधू', 'चमारों का नाच', 'ग्राम देवता', 'संध्या के बाद' आदि हैं।

'वे आंखें' एक बेदखल किसान का चित्र उपस्थित करती है जो अब अपने स्वाधीन कृषक जीवन की स्मृति से संतप्त और कातर है। सारा चित्र अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उकेरा गया है। किसान को अपने खेतों की, अपनी बैलों की जोड़ी की, कारकुनों की, लाठी का शिकार बने बेटे की तथा कोतवाल द्वारा लूटी जाकर आत्महत्या करनेवाली बहू की याद आती है। बीच में ये पंक्तियां आती हैं :

खैर, पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,
पर जवान बेटे की सुध कर
सांप लोटते, फटती छाती।

ऊपर की दो पंक्तियां कविता के बीच में यूं ही, बिना किसी तैयारी के, आ जाती हैं। इतनी निर्मम तटस्थता के साथ कवि ने औसत भारतीय ग्रामीण के स्त्री-विषयक दृष्टिकोण को रख दिया है कि पढ़नेवाले को अचानक धक्का लगता है। इनके बाद पुनः कविता उसी ढंग से अपने गंभीर, सहानुभूतिपूर्ण स्वर में चलती रहती है। इन पंक्तियों मे व्यंग्य नहीं है, सहज तथ्य-कथन की मुद्रा है और यह मुद्रा व्यंग्य की अपेक्षा बहुत अधिक पैनी है

'गाव के लडके' वह बुड्ढा' की तरह की कविता है पैनी और ईमान

दार। इसकी दो पंक्तियां देखें :

ये सुखी या दुखी ? पशुओं-से
जो सोते जगते सांझ प्रात।

यहां सिर्फ सोने और जगने में निरर्थकता का जो भाव व्यक्त हुआ है वह देखने लायक है। ग्राम्य जीवन में कवि को केवल जड़ता दिखाई देती है, जीवन का स्पंदन नहीं दिखाई देता। उसे लगता है कि यहां नवीनता की कोई इच्छा या आकांक्षा नहीं है, न ऐसी किसी इच्छा के लिए कोई अवकाश है। जीवन के साधारण राग-विराग तक अपनी जीवन्तता खोकर ग्रामीण अभ्यास से चलनेवाले हो गए हैं। कोई सचमुच कुछ महसूस नहीं करता। एक विकट ढंग की जड़ता यहां व्याप्त है। उन्हीं भावों की अभिव्यक्ति पुनः हम 'ग्रामवधू' शीर्षक कविता में पाते हैं :

नहीं आंसुओं से आंचल तर
जन बिछोह से हृदय न कातर,
रोती वह रोने का अवसर,
जाती ग्रामवधू पति के घर।

'चमारों का नाच' चमार चौदस के उत्सव पर चमारों के नृत्य और स्वांग का चित्र खींचती है। चित्र अद्भुत रूप से जीवंत और स्वाभाविक बना है। चमारों के उद्धत नृत्य, अशालीन परिहास आदि का यथार्थ चित्रण इस कविता में हुआ है। इस कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि यह सही माने में यथातथ्य है। कवि यहां पूर्णतः तटस्थ है। अपनी ओर से वह केवल इतना कहता है :

वर्णों के पद दलित चरण ये
मिटा रहे निज कसक औ कुढ़न,
कर उच्छृंखलता उद्धतपन।

चमारों के उच्छृंखल और सस्ते नृत्य में वह न तो अशिक्षा, असंस्कृति आदि ही देखता है न 'कहारों का रुद्र नृत्य' की तरह 'जन संस्कृति का ही निम्न स्फीत सौंदर्य' ही। वह कुछ दृश्य-चित्र प्रस्तुत कर देता है और संतोष कर लेता है। और फिर भी उन दृश्य-चित्रों से अनायास हजार-हजार सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न झांक-झांक जाते हैं।

इस क्रम की दो अन्य महत्त्वपूर्ण कविताएं—'ग्राम देवता' और 'संध्या के बाद' कई दृष्टियों से कुछ भिन्न हैं। ये दोनों ही कविताएं अपेक्षाकृत लंबी हैं और विभिन्न स्तरों पर एक निश्चित कथ्य की कविताएं हैं। (कथ्य को यहां हम वर्ण्य विषय से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त कर रहे हैं।)

'ग्राम देवता' में कवि ग्राम देवता को सामंती संस्कारों द्वारा परिचालित ग्राम-जीवन का प्रतीक बनाकर संबोधित करता है। गांवों के जीवन को पहली बार निकट से देख-समझकर पंत का जैसा मोहभंग हुआ, उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने इन पंक्तियों में की है :

अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप, मोहित कवि मन,
नभ के नीलम संपुट में तुम मरकत शोभन !

पर, खोल आज निज अंत:पुर के पट गोपन
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव ! तुमने यह जन ।

फिर कवि ग्राम-जीवन की रूढ़िग्रस्तता, गत युग की जड़ नैतिकता आदि पर आक्रमण करता है और यह उद्घोष करता है—'अब मनुष्यता को नैतिकता पर पानी जय'। कविता के तीसरे अंश में व्यंग्य-भाव और कटु आलोचना का स्वर है। अंतिम भाग में कवि नवीन जन-संस्कृति के आगमन का उद्घोष करते हुए ग्राम देवता को 'रूढ़ि रीति की अफीम खाकर चिर विराम' लेने की सलाह देता है। पूरी कविता में कहीं व्यंग्य, कहीं आक्रोश, कहीं कटुता और कहीं निर्माण के उत्साह के स्वर अलग-अलग उभरे हैं।

'संध्या के बाद' शीर्षक कविता का कथ्य बिल्कुल दूसरे प्रकार का है। उसमें कुछ उस ढंग का 'सिनिसिज्म' व्यक्त हुआ है जैसा 'पांच कहानियां' में जगह-जगह दिखाई पड़ता है। कविता संध्या-वर्णन से प्रारंभ होती है। बीच में हमारा परिचय छोटी-सी बस्ती के एक बनिये से कराया जाता है जिसे हम चाहें तो इस कविता का नायक मान लें। रात के आते ही बनिये को अपनी तुच्छ स्थिति का ध्यान हो आता है। वह विचार करने लगता है कि उसकी दशा इतनी दयनीय क्यों है, वह भी शहरी बनियों की तरह धनाढ्य और बड़ा क्यों नहीं हो सकता। फिर उसकी चिंतनधारा कुछ समाजवादी राह पर चलने लगती है। वह सोचने लगता है कि अपने-अपने घरौंदों में सीमित जन ऐसे सामूहिक जीवन के निर्माण के लिए प्रयत्नशील क्यों नहीं होते जिसके धन पर समाज का अधिकार हो और सभी को अपने कर्म और गुण का उचित पुरस्कार मिले। इसी बीच एक ग्राहक बुढ़िया आ जाती है :

टूट गया वह स्वप्न वणिक का
आई जब बुढ़िया बेचारी
आधा पाव आटा लेने—
लो, लाला ने फिर डंडी मारी।

कविता का अंत इन व्यंजक पंक्तियों के साथ होता है :

चीख उठा घुग्घू डालों में,
लोगों ने पट दिये द्वार पर,
निगल रहा बस्ती को धीरे
गाढ़ अलस निद्रा का अजगर।

इस कविता के साथ ग्राम्या की यथार्थवादी कविताओं की चर्चा समाप्त होती है। वैसे 'ग्राम्या' में इस पद्धति की और भी कविताएं हैं जिनमें कई बहुत सुंदर भी हैं। पर ऊपर की कविताओं की ही चर्चा यहां इसलिए की गई है कि वे सभी किसी-न-किसी रूप में अलग और विशिष्ट हैं।

पंत के यथार्थ-बोध और उनकी यथार्थवादी शैली की चर्चा 'पांच कहानियां' के बिना पूर्ण नहीं हो सकती। 'पांच कहानियां' यथार्थवादी शैली की कृति है। इसकी कहानियां दैनन्दिन जीवन की वास्तविकताओं से साक्षात्कार करती हैं। इस दृष्टि से 'पानवाला' और 'दम्पति' कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। 'दम्पति' यथार्थवादी शैली की

दृष्टि से इस सग्रह की सवश्रेष्ठ कहानी है। कहानीकार इसम एक दम्पनि क परिपक्व म लकर वृद्धावस्था तक क जीवन का वणन अत्यत सपाट, खुली और हलक सि.निसिज्म से युक्त जिस शैली में करता है वह कभी-कभी मोपासां की याद दिलाती है।

इस प्रसंग को समाप्त करने के पूर्व एक बात की ओर ध्यान दिला देना आवश्यक है। पंत मूलतः आदर्शवादी कलाकार हैं। इसलिए छायावादी काल की रहस्यवादी प्रवृत्ति की तरह युगवाणी और ग्राम्या की यथार्थवादी प्रवृत्ति भी बाह्य प्रभावों का परिणाम है। परंतु दोनों में एक मूलभूत अंतर भी है। जहां रहस्यवादी प्रवृत्ति पंत की वास्तवोन्मुखी वृत्ति को ग्राह्य नहीं हुई वहां यथार्थवादिता उसके बहुत अनुकूल पड़ी। इसी कारण यह प्रवृत्ति उनके काव्य में अपेक्षाकृत अधिक काल तक चल सकी। यह अलग बात है कि कोरी यथार्थ-दृष्टि से पंत के आदर्शवादी मन का संतोष नहीं हुआ और ग्राम्या के बाद वह पुनः इसके ऊपर उठ गया, पर इतना निश्चित है कि जब तक वे इस दृष्टि को अपनाये रहे तब तक यह उन्हें खूब रास आई। पंत के काव्य में जितना सर्वोत्कृष्ट है उसमें यथार्थवादी रचनाओं का भी निश्चित भाव है, इसमें संदेह नहीं।

आदर्श-दृष्टि

पत मूलत: आदर्शवादी कलाकार हैं। पीछे उनके व्यक्तित्व और काव्य का अध्ययन करते हुए हम बार-बार पंत की आदर्शवादिता की ओर लौटते रहे हैं। इस उपखंड में हम पंत के आदर्शवाद का क्रमिक विकास दिखाने का प्रयास करेंगे।

पंत की आदर्शवादिता के प्रथम स्पष्ट दर्शन हमें गुंजन में होते हैं। गुंजन के आदर्शवाद का स्वरूप बहुत सीधा है। कवि ने यहां सुख और दुःख को अन्यान्य संबंधित तथा समभाव से सहज स्वीकार्य बताया है। जीवन की सहजता को साध पाना सबसे बड़ी साधना है। केवल सुखेच्छा जीवन-विमुखता का पर्याय है। जीवन को स्वीकार करना उसके सुख-दुःख को स्वीकार करता है। परंतु यहां कवि गीता के 'सुखदुःखे समे कृत्वा' का उपदेश नहीं कर रहा है। वह सुख में सुखी होने और दुःख में दुःखी होने को स्वाभाविक मानकर चलता है। मनुष्य को अपने स्वभाव के विपरीत आचरण करने का परामर्श वह नहीं देता। इसके बदले वह दुःख को भी उसी प्रकार सहज ढंग से ग्रहण करने का उपदेश करता है, जैसे सुख को :

> हंसने ही में तो है सुख
> यदि हंसने को होवे मन,
> भाते हैं दुख में आते
> मोती-से आंसू के कण।

और

> जीवन के नियम सरल हैं
> पर है चिर-गूढ़ सरलपन।

गुंजन की कविता 'झर गई कली' में कवि ने यह आदर्श उपस्थित किया है कि व्यापक जीवन-व्यापार में सभी का नियत स्थान है। इसलिए स्वत्व की एक अनिवार्य समष्टिगत

भूमिका भी है

है लेन-देन ही जग-जीवन
अपना पर सबका अपनापन।

इस संग्रह की एक अन्य कविता में कवि ने मानव-जीवन में पूर्णता की स्थापना की आकांक्षा व्यक्त की है :

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष-विमर्षों का,
लगता अपूर्ण मानव-जीवन
मैं इच्छा से उन्मन-उन्मन।

गुंजन के बाद पंत की आदर्श-दृष्टि पूर्णता की खोज और जीवन के हर्ष-विमर्षों के सहज आकर्षण की इसी दुहरी भूमिका में उतरती है। ज्योत्स्ना में पूर्णता की खोज भी है और जीवन के व्यक्त सौंदर्य का आग्रह भी। पूर्णता को नित्य-जीवन में उतारने का आग्रह पंत की पूर्णता की खोज को एक दूसरा ही रंग दे देता है। 'यह रूप-रंग रेखा का संसार ही मुझे सबसे अधिक प्रिय है', उषा की इस उक्ति में यही आग्रह व्यक्त हुआ है। उषा ज्योत्स्ना मे नवीन पूर्ण जीवन का प्रतीक बनकर आई है।. उसका रूप-रंग रेखा के संसार के प्रति आग्रह व्यक्त करना ऊपर उल्लिखित दुहरी आदर्श-भूमि का ही संधान प्रदर्शित करता है।

ज्योत्स्ना का आदर्श आंतरिक जीवन का पुनर्गठन है। भूतवाद से आक्रांत मानव-चेतना में आंतर सौंदर्य को उद्घाटित करना तथा जीवन के बहुविध वैषम्यों का इस आंतर सौंदर्य के आलोक में परिहार करना ज्योत्स्ना का नाटकीय 'कार्य' है। संक्षेप मे, यहां आंतर जीवन के समायोजन द्वारा बाह्य जीवन के समायोजन का अंकन किया गया है। बाह्य जीवन को समेटकर भी, परंतु, ज्योत्स्ना की क्रांति का स्वरूप मूलतः सांस्कृतिक है, वह नायिका ज्योत्स्ना के शब्दों में, 'जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर' अग्रसरण है।

रूप से भाव की ओर अग्रसरण का क्रम युगवाणी में उलट जाता है :

आज भाव से बनो वस्तु भव
चेतनता से रूप गंध रस ॥

अथवा

विजय भाव की सदा रूप पर
भाव रूप पर निर्भर।

वास्तव में, युगांत, युगवाणी और ग्राम्या में सामाजिक दृष्टि सांस्कृतिक दृष्टि की अपेक्षा प्रधान है। जगह-जगह संस्कृति का पंत ने इन कृतियों में तिरस्कार किया है, क्योंकि अपने रूढ़ अर्थ में संस्कृति एक सामन्ती मूल्य-संकाय है—यह वे अनुभव करने लगे थे। इसीलिए उन्होंने मानवीय पूर्णता की खोज करने वाले सांस्कृतिक सिद्धांत—'सत्यं शिवं सुन्दरं' का युगवाणी में तीव्र निषेध किया है। इस प्रकार इन संग्रहों की

कविताएं लगभग उसी प्रकार समाज के बाह्य पुनर्गठन की कविताएं हैं, जैसे ज्योत्स्ना अंतःसंगठन की कृति है। जहां ज्योत्स्ना में नवीन क्रांति का मार्ग अंतः से बाह्य की ओर है, वहां इन कृतियों में उसका मार्ग बाह्य से अंतः की ओर निरूपित किया गया है।

परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि पंत ने इन कृतियों में अर्थ या राजनीति को संस्कृति के ऊपर स्थापित किया है। इसकी अपेक्षा इनमें प्राचीन सामंती संस्कृति के ऊपर नवीन जन-संस्कृति की स्थापना है। ज्योत्स्ना में जिस सांस्कृतिक क्रांति का अंकन हुआ है वह स्वप्न और कल्पना के माध्यम से आती है, अतः स्वभावतः उसमें एक प्रकार की वायवीयता और अयथार्थता है। अपनी यथार्थवादी कृतियों (युगांत, युगवाणी, ग्राम्या) में पंत इस वायवीयता को समाप्त करते हैं। वे अनुभव करते प्रतीत होते हैं कि सामान्य जन के दुःख-दैन्य, उसकी दरिद्रता, अशिक्षा, जड़ता, शोषण आदि का नाश किसी वायवी सांस्कृतिक क्रांति द्वारा संभव नहीं है। इसलिए वे जन-केंद्रीय नवीन सांस्कृतिक क्रांति का आह्वान करते हैं जिसमें मानवीय मांस का सहज स्वीकार हो :

'अब मनुष्यता को नैतिकता पर पानी जय'।

पर यह समझ लेना गलत होगा कि ज्योत्स्ना और ग्राम्या-युगवाणी की आदर्श-दृष्टि में परस्पर विरोध है। वास्तव में इनमें केवल बल या 'इम्फ़ैसिस' का अंतर है। एक का बल आंतर मूल्यों पर है, दूसरी का बाह्य मूल्यों पर। परंतु दोनों मूल्यों की सहस्थिति दोनों ही ढंग की कृतियों में देखी जा सकती है। ज्योत्स्ना की पंक्ति 'यह रूप-रंग, रुचि-रेखा का संसार ही मुझे सबसे अधिक प्रिय है' (पृष्ठ १८४) तथा युग-वाणी की उक्ति 'मुझे लुभाता रूप-रंग-रेखा का यह संसार' का स्पष्ट साम्य दोनों सोपानों की आदर्श-चेतना का संबंध द्योतित करता है। ज्योत्स्ना में जहां आंतर मूल्यों की बाह्य अभिव्यक्ति पर प्रभूत बल दिया गया है वहां युगवाणी और ग्राम्या में भी आंतर मूल्यों का महत्व स्थापित करने वाली उक्तियां बहुत हैं। युगवाणी की कविता 'उन्मेष' तथा ग्राम्या की कविता 'संस्कृति का प्रश्न' में स्पष्टतः आंतर मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है।

इन पंक्तियों में स्पष्टतः ही आंतर क्रांति द्वारा बाह्य क्रांति का संदेश दिया गया है। वास्तव में आंतर और बाह्य की समानांतर चेतना पंत के काव्य में सदैव रही है। उनका सामंजस्यवादी मन जीवन के अंतःसूत्र को कभी नहीं छोड़ता तथा उनकी वास्तवोन्मुखता बाह्य को बराबर कसकर पकड़े रहती है। ग्राम्या तक की कृतियों में कभी बल अंतर्मूल्यों पर रहा है, कभी बाह्य मूल्यों पर। आगे के काव्य में इस प्रकार का एकांगी बल समाप्त करके अंतः और बाह्य, ऊर्ध्व और समतल, स्वप्न और तथ्य का व्यापक सामंजस्य घटित करने का प्रयास किया गया है।

इस व्यापक सामंजस्य की भूमिका 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में दिखाई देती है।

व्यक्ति की ऊर्ध्व चेतना की महत्ता को स्वीकार करके पंत उसकी सामाजिक भूमिका पर बल देते हैं। ऊर्ध्व चेतना को अस्वीकार करना मनुष्य की महत्तर वृत्तियों को नकारना होगा, उसी प्रकार जीवन के यथार्थ तथा सामाजिकता का अस्वीकार किसी

भी जीवनादर्श की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा देगा। अतएव यहां आकर पंत क्रमश: एक ऐसे वृहत्तर आदर्श की स्थापना करने में प्रवृत्त होते हैं जिसमें जीवन के अंत: और बाह्य का सामंजस्य हो। इस जीवन-दर्शन का कुछ पुष्ट रूप 'उत्तरा' में दिखाई देता है। अपने पूर्ण रूप में इसका उद्घाटन 'लोकायतन' में हुआ है। 'लोकायतन' जीवन के सर्वांगीण उन्नयन की महागाथा है। इसमें कवि की दृष्टि एक ओर आर्थिक-सामाजिक सुव्यवस्था पर है तो दूसरी ओर भावना, संवेग और मानसिक विचार के समायोजन पर। इस सर्वांगीण उन्नयन का आयोजन कवि ने किसी असामान्य भूमि पर न करके सामान्य जीवन के राग-विरागों के बीच किया है। इस प्रकार यह नवीन जीवनादर्श साधारण होकर भी असाधारण और अपनी असाधारणता में भी साधारण हो सका है। मुक्ति मन से जीवन का ग्रहण ही इस सामंजस्य के मूल में है—मृत संस्कृति के बंधनों में बंधा लोक-मन जीवन की मुक्त ग्रहण नहीं कर पाता, इसीलिए संकीर्णताएं हैं, संघर्ष हैं, दैन्य हैं, बन्धन हैं। एक बार जीवन को इस प्रकार स्वीकार कर लेने पर मनुष्य का हृदय व्यापक राग-भावना का क्रीड़ास्थल हो जाता है। उसी तरह उसका बाह्य जीवन समता और सौहार्द का आगार हो जाता है। अपने नवीन आदर्श के रूप में पंत इससे जटिल या दुरूह कुछ भी नहीं देते :

आओ, हम सीधे संयुक्त
करें मन को जीवन से,
धरा कर्म में निरत,
न बिलगावें शाश्वत को क्षण से

(समाधिता)

पंत की नवीन आदर्श दृष्टि की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में अत्यंत सुंदर ढंग से हुई है :

ऊंचाइयों को
समतल में बिछा,
गहराइयों को
समजल में डुबा,
इन्द्रधनुषी तिनकों का
नीड़ बसा
कलख बरसाऊंगा,—
नील हरी छाहों में छिप
स्वप्नों के पंख खोल
धरती को सेऊंगा।

(कला और बूढ़ा चांद)

ऊपर हमने पंत की संवेदना-भूमियों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। वैसे, जैसा कि प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया गया है, किसी समर्थ कवि की संवेदना इकहरी होती है, उसका विभाजन प्राय: सरल नहीं होता। पंत के काव्य की केंद्रीय संवेदना ऊपर उल्लिखित संवेदना-भूमियों का जोड़ नहीं है- वरन् ये संवेदना-भूमियां ही

र केंद्रीय संवेदना का प्रतिभासित करती हैं। इस केंद्रीय संवेदना का
वतत्व के संदभ मे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यहा इतना
प्ति है कि यदि हमें उपर्युक्त छः संवेदना-भूमियों में से ही किसी को
दना का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुनना हो तो हम 'आदर्श दृष्टि'
ानतः और मूलतः एक आदर्शवादी कलाकार हैं।

पंत का शिल्प

पंत जिस प्रकार एक संवेदनशील कलाकार हैं उसी प्रकार उनका शिल्प-पक्ष भी पुष्ट है। उनके काव्य में अधिकतर संवेदना और शिल्प का उचित संतुलन परिलक्षित होता है। यद्यपि पंत की कला उस प्रकार की कतई नहीं है जिसे 'कॉशस' कला कहते हैं, फिर भी जिस मात्रा में कला-पक्ष पर ध्यान देना एक समर्थ कवि के लिए अनिवार्य होता है, उसमें उन्होंने कोई कमी नहीं की है। छायावाद का आन्दोलन, जिससे पंत अपने काव्यकाल के प्रारंभ में ही संबद्ध हुए, जहां एक ओर विषय-वस्तु के स्तर पर घटित हुआ वहां शिल्प के स्तर पर भी उसने अपनी एक पहचान बनाने का प्रयास किया। इसके पीछे का स्पष्ट तर्क यह था कि नवीन विषय नवीन शिल्प की माग करते हैं। पंत ने भी इस नवीन शिल्प के निर्माण में अपना प्रभूत योग दिया। बाद मे जब वे स्वयं छायावाद के क्षेत्र से निकलकर यथार्थवाद की भूमि पर आ गए तो उन्होंने पुनः शिल्प के स्तर पर भी अपने इस नवीन संक्रमण को घटित करने का प्रयास किया। प्रगतिवाद से चेतनावाद की भूमि में उनका संक्रमण भी इसी प्रकार विषय और शिल्प के स्तर पर घटित हुआ है। इस प्रकार एक समर्थ रचनाकार की तरह पंत ने जब भी अपनी संवेदन-भूमि बदली, उन्होंने नवीन संवेदन को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए नवीन प्रकार का शिल्प भी अपने लिए तैयार किया। लेकिन यहां इतना और समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार विभिन्न संवेदना-भूमियों पर पंत का संक्रमण आकस्मिक ढंग से नहीं घटता उसी प्रकार उनके शिल्प मे भी कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं परिलक्षित होता। यह समझना भूल ही होगी कि पंत ने छायावादी कविता के लिए एक प्रकार के शिल्प का प्रयोग किया, प्रगतिवादी काव्य के लिए बिल्कुल दूसरे प्रकार के शिल्प का और चेतनावादी काव्य के लिए उससे भी भिन्न ढंग के शिल्प का, ऐसा नहीं है। रचनाकार का शिल्प उसकी अपनी विशिष्ट सौंदर्य-दृष्टि, कल्पना के उत्कर्ष और भाषा के स्वरूप आदि की उपज होता है। वह रातोंरात नहीं बदल जाया करता, प्रत्युत वह अपनी विशिष्ट पहचान को सुरक्षित

रखते हुए अपने को विभिन्न विषयों के अनुकूल बनाता चलता है इस प्रकार की एड प्टिबिलिटी पंत के शिल्प में है हमारा इतना ही वक्तव्य है।

आगे हम पंत के शिल्प के विभिन्न आयामों का उसी क्रम से अध्ययन करेंगे जिस क्रम से पीछे हमने उनके काव्य का अध्ययन किया है, अर्थात् छायावादी काव्य, प्रगतिवादी काव्य आदि के क्रम से। इससे हमें जहां एक ओर पंत के शिल्प के स्वरूप को समझने का अवसर मिलेगा वहीं उसके विकास-क्रम को भी समझना आसान हो जाएगा।

पंत का छायावादी शिल्प

प्रगीतात्मकता : पंत के छायावादी काव्य पर दृष्टिपात करते ही जिस बात पर सबसे पहले ध्यान जाता है वह यह कि लगभग सारा का सारा प्रगीत काव्य है। इसलिए पंत के छायावादी काव्य का शिल्प मूलतः और प्रधानतः प्रगीत काव्य का शिल्प है। प्रगीत के अनेक रूप शिल्प तथा विषय के स्तर पर इस काव्य में प्रकट हुए हैं। इनमें सबसे बड़ी संख्या संभवतः संबोधनगीतियों की है। संबोधनगीतियों को हम अंग्रेजी 'ओड' का प्रभाव मान सकते हैं। इस प्रकार की संबोधनगीतियां वीणा में 'वहां और भी तो अंतर', 'आज वेदने आ तुझको भी,' 'मम जीवन की प्रमुदित प्रात', 'कौन कौन तुम परिहत वसना', 'इस पीपल तरु के नीचे', 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि', पल्लव में 'वीचि विलास', 'मधुकरी', 'अनंग', 'छाया', 'नारी रूप', 'नक्षत्र', 'सोते का गान', 'परिवर्तन' तथा गुंजन में 'विहग के प्रति', 'अप्सरा' आदि हैं। परंतु इन सभी गीतियों को 'ओड' समझ लेना भूल होगी। 'ओड' में किसी प्राकृतिक वस्तु, व्यापार या किसी भाव, विचार आदि को संबोधित करके कवि अपने भावों और विचारों की उत्कट अभिव्यंजना करता है। इस दृष्टि से 'अनंग', 'परिवर्तन', 'अप्सरा' आदि कुछ ही कविताएं 'ओड' की श्रेणी में आ सकती हैं। शेष अधिकांश में 'ओड' के उपयुक्त विषय और शैली का अभाव है। इनमें से अधिकांश सीधी गीतियां हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने की है। पंत में प्रकृति या अन्य किसी वस्तु अथवा व्यापार के माध्यम से अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है। प्रायः वे तत्तत् वस्तुओं के रूपात्मक सौंदर्य पर इतने मुग्ध रहते हैं कि उसी के बहुआयामी स्वरूप की व्यंजना अनेकानेक अप्रस्तुतों और उत्प्रेक्षाओं की सहायता से करते चले जाते हैं। अंत में कहीं उनका व्यक्तिगत भाव अंतिम पंक्तियों में गौण रूप से लगा चला आता है। इसलिए प्राकृतिक वस्तु आदि के माध्यम से व्यापक, संश्लिष्ट पद्धति पर अपने भाव-विचार आदि को गरिमापूर्ण शैली में प्रस्तुत करने की जो शैली 'ओड' कहलाई, वह पंत के बहुत अनुकूल नहीं पड़ती। उन्नीसवीं शती के रोमैंटिक कवियों द्वारा जिस अव्यवस्थित 'ओड' का प्रचलन किया गया, उसमें भी चिन्तन, भाव आदि का संश्लेषण तथा शैली की गरिमा का तत्त्व निश्चित रूप से था। शैली की 'ओड टू द वेस्ट विंड' तथा कीट्स की 'ओड टू द नाइटिंगेल' अव्यवस्थित ओड के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। स्पष्टतः ही इन कविताओं की श्रेणी में पंत की 'परिवर्तन' को छोड़कर शायद ही अन्य कोई कविता आ सके। अतएव जिन कविताओं का नाम हमने ऊपर लिया है

उन्हें हम सामान्य रूप से संबोधनगीतियां कह रहे हैं, 'ओड' नहीं। वैसे 'ओड' शब्द के लिए 'संबोधनगीति' शब्द का प्रयोग कभी-कभी किया गया है, पर हम इस शब्द का प्रयोग केवल संबोधनपरक गीतों के अर्थ में कर रहे हैं। संबोधन की शैली पंत में बहुत व्यापक स्तर पर प्रयुक्त हुई है। अन्य छायावादियों में भी यह दिखाई पड़ती है। यह संभवत: 'ओड' का प्रभाव कहा जाएगा। वैसे संबोधन की शैली सदैव 'रोमैंटिसिज़म' से जुड़ी भी रही है।

संबोधनगीतियों के अतिरिक्त पंत में गीत (प्रगीत के एक संगीताश्रित भेद के रूप में), चतुर्दशपदी गीति, शोकगीति आदि प्रगीत-रूपों के उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं। 'ज्योत्स्ना' के उत्कृष्ट गीत, 'वीणा' की शोकगीति 'तिलक! हा! भाल-तिलक!' 'गुंजन' की चतुर्दशपदी गीति 'देखूं सबके उर की डाली' आदि सामने रखे जा सकते हैं, पर इन सभी विभाजनों का जमाव न करके हम केवल यह कहना चाहते है कि पंत की अधिकांश छायावादी कविताएं गीतियां हैं। उनमें से हम प्रयास करके 'सानेट', 'ओड' आदि के उदाहरण भी निकाल सकते हैं। पर प्राय: इन पाश्चात्य काव्य-रूपों का पंत पर बहुत कम प्रभाव है। इनकी अपेक्षा पंत पर स्वच्छंदतावादी साहित्य के व्यापक गीति तत्त्व का ही अधिक प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य गीति-रूपों का निर्वाह न उन्होंने किया है, न ऐसा करना उन्हें अभिप्रेत है। इसलिए पंत के छायावादी प्रगीतों का कोई वर्गीकरण यदि आवश्यक है तो वह उनके अपने काव्य के अन्दर से करना होगा, पाश्चात्य गीति-रूपों के आधार पर नहीं। विषय के आधार पर ऐसा एक स्पष्ट वर्गी-करण हमें दिखाई देता है—प्रकृति-संबंधी गीतियां, प्रेम-गीतियां, रहस्य गीतियां तथा जीवनादर्श-संबंधी गीतियां। प्रकृति गीतियां वीणा और पल्लव में प्रमुखत: हैं। प्रेम-गीतियों में पल्लव की आंसू और उच्छ्वास तथा गुंजन की अनेक प्रेम-गीतियां आती हैं। रहस्य गीतियां वीणा में सबसे अधिक हैं। पल्लव की मौन निमंत्रण, विसर्जन आदि भी इसी कोटि में आती हैं। अंतिम प्रकार की गीतियों में वीणा की 'स्नेह चाहिए सत्य सरल', 'उस विकसित वासित-वन में', 'मरु भी होगा नंदन-वन', गुंजन की अनेक शुरू की कविताएं तथा ज्योत्स्ना के गीत आदि आते हैं। इन चार मोटे विभेदों के अलावा कुछ और भी छोटी-मोटी कोटियां बन सकती हैं, पर मुख्यत: विषय की दृष्टि से यही चार कोटियां बनती हैं। इनमें भी शैली की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है। कहीं शैली भाव-प्रधान है (जैसे आंसू में), कहीं विचारपुष्ट (उदाहरणार्थ गुंजन की कविताओं मे), कहीं चित्र-प्रधान (जैसे 'बादल', 'नक्षत्र', 'अप्सरा' आदि कविताओं में) तथा कहीं ओज-पूर्ण (परिवर्तन में)। इनमें अंतिम प्रकार की शैली पंत के छायावादी काव्य की प्रति-निधि शैली नहीं मानी जा सकती।

इस विषय तथा शैलीगत वैविध्य के बावजूद पंत के छायावादी प्रगीत की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं जो कमोबेश सभी प्रकार के प्रगीतों में पाई जाती हैं और पंत के छायावादी शिल्प की एक अलग पहचान बनाती हैं। आगे हम इन विशेषताओं को एक-एक करके लेंगे, परंतु इसके पहले हम पंत के छायावादी काव्य की कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण रचनाओं पर विचार कर लें जो प्रगीत के अंतर्गत नहीं आतीं। ये रचनाएं 'ज्योत्स्ना'

(नाटक), और ग्रंथि (खंडकाव्य) हैं। ज्योत्स्ना का गठन कवि ने नाटक की अपेक्षा काव्य के स्तर पर अधिक किया है। नाट्य-कला के नियमों की अपेक्षा इस कृति में कवि का ध्यान आदर्शवादी जीवन-दृष्टि तथा काव्यात्मक शैली पर ही विशेष रूप से है। इसलिए नाट्यकृति की अपेक्षा काव्यकृति के रूप में ही उसका मूल्यांकन अधिक समीचीन है। काव्यरूपों में भी 'ज्योत्स्ना' की शैली प्रगीत के सबसे अधिक निकट है। ज्योत्स्ना के आकार को देखते हुए यह बात कुछ विचित्र लग सकती है, पर है यह सत्य। ज्योत्स्ना के प्रगीतात्मक (गद्य-रूप में होने के बावजूद) वर्णनों और कथोपकथनों को जोडने वाले क्षीण कथा-सूत्र को तथा उसकी आदर्शवादी योजना को निकाल दिया जाय तो ज्योत्स्ना अनेक गद्य-गीतों का संग्रह ही रहेगी। इसके अतिरिक्त उसमें अनेक उत्कृष्ट गीत भी हैं।

'ग्रंथि' को हम खंडकाव्य की अपेक्षा लंबा प्रगीत अधिक समझते हैं। जोड-तोडकर उसे खंडकाव्य सिद्ध भी कर दिया जाय तो भी उसकी अनिवार्य प्रगीतात्मकता से इनकार नहीं किया जा सकता। उसे खंडकाव्य से कुछ अलग करनेवाली दो बातें हैं—स्मरण-शैली तथा आत्मकथात्मकता। इसके बावजूद यदि ग्रंथि को खंडकाव्य माना ही जाय तो उसे कालिदास के मेघदूत की शैली का खंडकाव्य मानना होगा जिसमें एक निश्चित प्रगीत तत्त्व रहता है, न कि मैथिलीशरण गुप्त के 'सिद्धराज' की तरह का खडकाव्य जिसमें वर्णनात्मकता प्रधान हो।

अब हम पंत की छायावादी प्रगीत-शैली की विशेषताओं का निरूपण करने में प्रवृत्त हो सकते हैं। ये विशेषताएं चित्रात्मकता, कल्पना का उत्कर्ष, काव्यभाषा का नवीन स्वरूप, छंद की रागवादी दृष्टि आदि हैं। हम इन पर क्रम से विचार करेंगे।

चित्रात्मकता : चित्रात्मकता छायावाद की प्रमुख विशेषता, बल्कि कभी-कभी एकांत लक्षण के रूप में स्वीकार की गई है। पंत के काव्य में इस चित्रात्मकता का स्वरूप दो प्रकार से प्रकट हुआ है—एक तो बिंब-विधान के द्वारा और दूसरे भाषा के चित्रात्मक प्रयोग द्वारा। अपने बिंब-विधान में पंत ने प्रायः प्रकृति, स्त्री-सौंदर्य के उपादानों तथा भावनाओं का उपयोग किया है। वे प्रायः प्राकृतिक सौंदर्य के अंकन के लिए स्त्री-सौंदर्य के बिंबों का तथा स्त्री-सौंदर्य के लिए प्राकृतिक बिंबों का सहारा लेते पाये जाते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य का इस प्रकार का एक बिंबात्मक अंकन गुंजन से द्रष्टव्य है :

सैकेत शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।
तापस-बाला-सी गंगा कल शशिमुख से दीप्ति मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल।

इन पंक्तियों में ग्रीष्म की गंगा का चित्र तन्वंगी, क्लांत तापस-बाला के अप्रस्तुत द्वारा उपस्थित किया गया है। इस संपूर्ण चित्र का एक-एक अंश ध्यान देने योग्य है। पहले किनारे की सिकता को दुग्ध-धवल शय्या कहा गया है। 'दुग्ध-धवल' कह देने से चांदनी मे दूधिया हो आई बालू का चित्र उभरता है। इस दूधिया शय्या पर सोई गंगा को कवि

तापस-बाला से उपमित करता है। पानी म प्रतिबिंबित चद्रबिंब के लिए कवि की उत्प्रेक्षा है कि वह मानो तापस-बाला का मुख है जिसे हथेली पर टिकाए वह निश्चल लेटी है। इस चित्र में हथेली पर मुख टिकाये लेटी हुई बाला के नीरव चित्र में एक करवट लेटने का जो भाव अंतर्निहित है उसमें नदी की क्षीणता मानो अपने-आप व्यंजित हो गयी है। ग्रीष्म की विरल धार गंगा का करवट लेटी बाला के रूप में अंकन करके कवि ने अत्यंत सूक्ष्म व्यंजकता उत्पन्न की है। सीधे लेटने में फैलाव का भाव जैसे अपने-आप आ जाता है, वैसे ही करवट लेटने में नदी की क्षीणता का रूप जैसे अपने-आप साकार हो गया है। सच्ची काव्यात्मक कल्पनाशीलता का ये पंक्तियां अद्‌भुत नमूना हैं। अंतिम पंक्ति 'लहरें उर पर कोमल कुंतल' भी सूक्ष्म व्यंजना-शक्ति की परिचायक है। लहरों की सिहरन में केशराशि की कोमलता का जो भाव कल्पित किया गया है वह ध्यातव्य है। साथ ही 'उर पर कोमल कुंतल' से क्लांत लेटी तापस-बाला के स्वरूप में जो एक और निखार आ गया है, उस पर भी ध्यान जाता है।

अब हम प्राकृतिक बिंब के माध्यम से स्त्री-सौंदर्य के अंकन का एक उदाहरण देखें :

नवल मधुऋतु निकुंज में प्रात
प्रथम कलिका-सी अस्फुट-गात,
नील नभ-अन्तःपुर में तन्वि।
दूज की कला सदृश नवजात।

सुबह की पहली कली से नायिका की उपमा देने से निर्मल, अछूते कैशोर सौंदर्य की अद्‌भुत व्यंजना संभव हुई है। उसी प्रकार नील नभ-अन्तःपुर में नई जन्मी दूज की कला से नायिका के अस्फुट यौवन की नव दीप्ति (जिसे उसी प्रकार फैलने से नहीं रोका जा सकता जैसे आकाश का अन्तःपुर दूज की चंद्रकला का प्रकाश नहीं छिपा पाता) की अच्छी व्यंजना हो सकी है।

स्त्री-सौंदर्य और प्रकृति के बिंबों के अनंतर भावनाओं से संबंधित बिंबों का भी एक उदाहरण देखें :

इन्द्रचाप-सी व्योम भृकुटि पर
लटक मौन चिंता से घोर,
घोष भरे विप्लव भय-से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर।

पहली दो पंक्तियों में चिंता के भाव का पूर्ण व्यापार प्रदर्शित किया गया है। चिंता की तरह कहकर बादलों की वाष्पजन्य गुरुता की व्यंजना की गई है, साथ ही बादलों से इंद्रधनुष के बनने के प्राकृतिक सत्य का भी निर्वाह हो गया है। अगली पंक्तियों में फैल-कर छा जाने वाले बादलों के लिए घोषभरे विप्लवमय का उपमान लाया गया है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि जहां वाष्प-गुरु बादलों के लिए (जो काफी नीचे उतर आते हैं) कवि ने चिंता का उपमान ढूंढा है वहां शीघ्रतापूर्वक भागकर फैल जाने वाले बादलों के लिए भय का इन दोनों भावों से सतत् प्राकृतिक चित्र घनिष्ठत संबद्ध है

जहां चिंता में भारीपन का भाव अपने आप आ जाता है वहां भय में एक त्वरा और भाग-भागकर फैल जाने या तितर-बितर हो जाने का भाव भी स्पष्टतः निहित है। भावों को गोचर रूपों में कल्पित कर सकने की पंत की यह प्रतिभा ज्योत्स्ना में खूब साफ सामने आई है।

यहां तक हमने बिंबों के माध्यम से प्रायः वस्तु-वर्णन का ही अध्ययन किया। अब पंत के भाव-निरूपण पर भी कुछ विचार कर लें। भाव-निरूपण के लिए पंत ने सबसे अधिक प्राकृतिक बिंबों का प्रयोग किया है। प्रतीक्षा और विप्रलम्भ की मिली-जुली अनुभूति के लिए यह प्राकृतिक बिंब दर्शनीय है :

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से
संध्या उदास फिर आती
सूने गृह के आंगन से।

भाव-निरूपण के लिए इतने सादे और साथ ही इतने कल्पनाशील प्राकृतिक बिंब स्वयं पंत ने भी कम ही दिये हैं। उषा के रोज-रोज आकर झांक जाने में जो व्यंजकता है, बाद की दो पंक्तियों में उससे भी बड़ी व्यंजकता दिखाई पड़ती है। दिन-भर आंगन में बढ़ती-फैलती धूप मानो किसी को ढूंढ़ती रही है और संध्या के आने के साथ धीरे-धीरे मानो अनिच्छापूर्वक, उदास लौट जा रही है—'संध्या के उदास लौट जाने' से कुछ ऐसा ही भाव ध्वनित हो रहा है।

प्राकृतिक बिंब का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है :

मुसकरा दी थीं क्या तुम प्राण!
मुसकरा दी थी आज विहान?
आज गृह-वन-उपवन के पास।
लौटता राशि-राशि हिम हास,
खिल उठी आंगन में अवदात
कुंद कलियों की कोमल प्रात।

इन पंक्तियों में प्रिया के स्मित के सौंदर्य का वर्णन नहीं है, न यहां 'नारी का रूप-लावण्य विच्छुरित होकर प्रकृति-सौंदर्य के रूप में चतुर्दिक् फैल' ही गया है। यहां सीधा भाव-वर्णन है। कवि का प्रणय भाव यहां 'फैंसी' की पद्धति पर व्यक्त हुआ है। अपने भावों के आवेग को अथवा अपने चित्त पर पड़े प्रिया के सौंदर्य के प्रभाव के संवेगात्मक स्वरूप को अभिव्यक्ति देने के लिए कवि एक अत्युक्तिमूलक बिंब की आयोजना करता है। पर यहां बिहारी की 'पत्रा ही तिथि पाइयत' इत्यादि वाली उक्ति जैसी अत्युक्ति नहीं है। इसका कारण यह है कि 'पत्रा ही तिथि पाइयत' मूलतः रूप-वर्णन है और यह कविता संवेग का निरूपण करती है।

स्त्री-सौंदर्य-संबंधी बिंबों का प्रयोग जितना वस्तु-वर्णन के लिए हुआ है, उतना भाव-वर्णन के लिए नहीं परंतु कहीं-कहीं प्राकृतिक उपादानों और नारी-सौंदर्य के मेल से अद्भुत भाव बिंबों की सृष्टि हुई है इस प्रकार का एक बिंब

(पल्लव से)

देखता हूं जब पतला
इंद्रधनुषी हलका
रेशमी घूंघट पर बादल का
खोलती है कुमुद कला,
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे तब करता अंतर्धान।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अन्य बिंब भी पंत के छायावादी काव्य में आये हैं। नेम्नलिखित उदाहरण में ध्वन्यात्मक बिंब का उत्तम प्रयोग द्रष्टव्य है :

पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों की भारी झर् झर्,
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों का गुरु गंभीर घहर,
बिंदुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर,
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल पावस के प्रश्नोत्तर।

इसी प्रकार शब्द-बिंब, वर्ण-बिंब, विशेषण निर्भर बिंब, गत्यात्मक बिंब, मिश्र ऐंद्रियबोधों पर आधारित बिंब आदि बिंब की अनेक कोटियां पंत के छायावादी काव्य में देखी जा सकती हैं। उन सभी का विवेचन न यहां संभव है न अभिप्रेत। हम ऊपर के संक्षिप्त विवेचन के आधार पर यहां केवल दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। पहली बात तो यह कि पंत के अधिकांश बिंब प्रकृति और स्त्री-सौंदर्य के क्षेत्र से आते हैं। लगभग इन्हीं क्षेत्रों से प्रसाद, निराला और महादेवी के प्रतीक भी आते हैं। इसके बावजूद पंत में प्रतीक अत्यंत विरल, लगभग शून्य हैं। पंत ने इन क्षेत्रों से बिंब ही ग्रहण किये, जैसा कि अन्य छायावादियों ने किया। कुछ जोड़-तोड़कर हम दस-पांच प्रतीक उनकी छायावादी कविता में से निकाल भी लें तब भी वे प्रसाद आदि की तुलना में नगण्य ही होंगे। अन्य छायावादियों से पंत का यह अंतर बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके कारणों का कुछ विवेचन हम पहले अध्याय में प्रकृति-कविताओं की चर्चा करते हुए कर चुके हैं। यहां इतना ही उल्लेख कर देना पर्याप्त है कि प्रकृति, प्रेम और रहस्य-भावना के उस काल में भी पंत का प्रतीकों की ओर न जाना यह सिद्ध करता है कि पंत मूलत: वस्तुन्मुखी कलाकार हैं। छायावाद काल में वे प्रतीक-विधान के दो मुख्य स्रोतों—प्रकृति और नारी-सौंदर्य—के प्रति सीधे अभिमुख थे। उनकी वस्तुन्मुखी दृष्टि ने इन दोनों का ही रूपात्मक ग्रहण किया। इनका प्रतीकात्मक ग्रहण बाद के काव्य में ही संभव हुआ, जब पंत इन क्षेत्रों से हटकर मानव-जीवन, ऊर्ध्व चेतना आदि के क्षेत्रों में आ गए। हमारी दृष्टि में यह एक बात पंत के काव्य-व्यक्तित्व का एक बहुत बड़ा वैशिष्ट्य प्रतिपादित करती है यह इस बात का भी प्रमाण है कि पंत का छायावादी शिल्प उनकी आतरिक

प्रवृत्तियों और रुचियों (संक्षेप में व्यक्तित्व) से बहुत गहरे जुड़ा हुआ है, वह बाह्य प्रभावों के अंतर्गत ही निर्मित नहीं हुआ। दूसरी बात जिसकी ओर हमारा ध्यान जाना है, वह यह कि पंत अरूप के लिए रूपात्मक अप्रस्तुतों की योजना में जितने कुशल है, उतने स्थूल रूप के लिए अरूपात्मक अप्रस्तुतों की योजना में नहीं। इनमें से पहली शैली के उदाहरण हम नारी-सौंदर्य और प्रकृति के बिंबों में देख आये हैं। दूसरी शैली का एक उदाहरण हम 'बादल' से देख चुके हैं। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए हम नक्षत्र' शीर्षक कविता से ऐसा एक अन्य उदाहरण लेंगे :

ऐ अनंत की अगम कल्पना
ऐ अशब्द भारति अविषय
आदि नग्न सौंदर्य निरामय।
मुग्ध दृष्टि की चरम विजय।

इन पंक्तियों में नक्षत्र के लिए 'अनंत की अगम कल्पना', 'अशब्द अविषय वाणी' आदि उपमान अनुमानानित और ऊपरी हैं, सच्ची भावुक कल्पना का संस्पर्श इनमें नहीं है। 'बादल' की ऊपर उद्धृत पंक्तियों के अप्रस्तुत विधान से इनका एक तात्त्विक अंतर भी है। बादल की पंक्तियों में जहां गुरुता की व्यंजना के लिए चिंता का अथवा तितर-बितर होने की प्रक्रिया के लिए भय का उपमान जुटाया गया है वहां चिंता तथा भय के गोचर स्वरूप को ध्यान में रखा गया है। कहें तो कह सकते हैं कि पहले सामान्य प्रतीति के आधार पर चिंता आदि भावों, गुरुता आदि स्थूल गुणों का आरोप किया गया है, फिर उन्हें गुरुता आदि के उपमान-स्वरूप लाया गया है। 'कमलवत् कर' से इस प्रकार की उपमान-योजना का कोई तात्त्विक अंतर नहीं है, क्योंकि जिस तरह कमल को हम साधारणतया कोमलता या सौंदर्य से संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार चिंता को गुरुत्व या भारीपन से। परंतु इन पंक्तियों में ऐसा कोई आधार नहीं है। प्रत्युत यहां 'फैन्सी' की उडान है। इस प्रकार की उड़ान प्रसाद के काव्य में अधिक सफल रूप में आती है। पंत इसमें प्रायः असफल ही रहते हैं। 'नक्षत्र' की ही इन पंक्तियों में उपमान अपेक्षाकृत अधिक गोचर एवं रूपात्मक हैं :

ऐ अज्ञात देश के नाविक,
ऐ अनंत के हृत्कंपन,
नव प्रभात के अस्फुट अंकुर
निद्रा के रहस्य कानन।

ये उपमान अधिक अच्छे बन सके हैं। इनमें से कम से कम दो ('अनंत के हृत्कंपन' और 'नव प्रभात के अस्फुट अंकुर') तो निश्चित रूप से श्रेष्ठ हैं।

इन दो प्रधान विशेषताओं (जो तत्त्वतः एक ही हैं और पंत की केंद्रीय वस्तून्मुखता से संबंध रखती हैं) के अतिरिक्त पंत के छायावादी बिंब-विधान की एक छोटी-सी कमी का उल्लेख करके हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। कभी-कभी पंत की बिंब-प्रधान कविताओं में केंद्रीय चेतना शून्य अथवा अत्यंत न्यून रह जाती है और बिंब ही सब कुछ हो जाते हैं। इस केंद्रीय चेतना के अभाव के कारण इन कविताओं में जहां

चित्रात्मकता बहुत ऊपरी हो जाती है वहीं बिंबों में पारस्परिक संबद्धता भी प्राय: नहीं रहती। इस प्रकार का स्खलन पल्लव की 'बादल' और नक्षत्र कविताओं में अत्यंत स्पष्ट है। इसी संग्रह की 'छाया' भी इसी दोष से बहुत कुछ ग्रस्त है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों को लें :

> ऐ शाश्वत स्मिति, ऐ ज्योतित स्मृति,
> स्वप्नों के गतिहीन विमान।
> गाओ हे, हां, व्योम विटप से
> गाओ खग! निज नीरव गान।

ये पंक्तियां 'नक्षत्र' की हैं। इन पंक्तियों में नक्षत्र के लिए चार अप्रस्तुत लाये गये हैं, पर इनमें किसी प्रकार की कोई पारस्परिक संगति खोज पाना असंभव है। पहले दो तो अंतिम अप्रस्तुत से प्रकृत्या भी सर्वथा भिन्न हैं—ये अरूप हैं जबकि वह स्थूल है। इस प्रकार के उदाहरण पंत के छायावादी काव्य से अनेक दिये जा सकते हैं। पल्लव की अपेक्षा गुंजन में यह प्रवृत्ति बहुत विरल है।

पीछे हमने भाषा की चित्रात्मकता का उल्लेख किया है। वैसे भाषा की चित्रात्मकता पर सभी छायावादियों ने बल दिया है, पर वहां इससे उनका अभिप्राय बिंब, प्रतीक, ध्वनि, अलंकार, अंतःस्फूर्ति आदि सभी से होता है। हमारा अभिप्राय यहां अत्यंत सीमित है। भाषा की चित्रात्मकता से हमारा तात्पर्य भाषा की उस शक्ति से है जिससे केवल शब्दों के प्रयोग द्वारा ही कवि चित्र खड़ा करने में समर्थ होता है। वास्तव में यह भी बिंबात्मकता का ही एक रूप है और इसका बहुत-सा भाग शब्द-बिंब, ध्वनि-बिंब आदि बिंब-प्रकारों में आ सकता है। पर यहां हम शास्त्रीय विभाजनों के चक्कर में न पड़कर भाषा की चित्रात्मकता से पंत-काव्य के उन सभी स्थलों को ग्रहण करना चाहते हैं जहां पंत केवल भाषिक प्रयोग के कौशल के कारण कोई चित्र खड़ा करने में समर्थ हुए हैं। इस विषय की कुछ विस्तृत चर्चा आगे छायावाद की काव्यभाषा के संदर्भ में करेंगे। यहां भाषा की चित्रात्मकता के कुछ उदाहरण देकर इस चर्चा को समाप्त करेंगे :

> १. अरी सलिल की लोल हिलोर!
> यह कैसा स्वर्गीय हुलास?
> सरिता की चंचल दृग कोर!
> यह जग को अविदित उल्लास।
>
> २. मुग्धा की सी मृदु मुसकान
> खिलते ही लज्जा से म्लान
>
> ३. मिलता जब कुसुमित जन-समूह
>
> ४. शशि की रेशमी विभा से भर
> सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर।

पहले उदाहरण में हिलोर और हुलास की ध्वनि-मैत्री से जो उल्लास का रूप खड़ा होता है उसे लोल सलिल आदि का अनुप्रास तीव्र करता है। यह शब्दों की ध्वनि

पर आधारित चित्रात्मकता का उदाहरण है। दूसरे उदाहरण में 'म्लान' शब्द पर ही समस्त चित्र का सौंदर्य अवलंबित है। खिलने की तुलना में म्लान सर्वथा उपयुक्त तो है ही, साथ ही लज्जा से म्लान की अपनी संगति भी सुंदर है। यह उदाहरण सही शब्द के प्रयोग से उत्पन्न चित्रात्मकता का उदाहरण है। तीसरा उदाहरण वास्तव में एक बहुत ही ढीले किस्म के बिंब का अंग है। इससे उद्धृत करने का तात्पर्य केवल यह दिखाना है कि अकेले 'कुसुमित जन समूह' ही अनेक बिंबों पर भारी है। कुसुमित शब्द में अद्भुत व्यंजना है। अंतिम उदाहरण में यदि 'रेशमी' शब्द को हटा दिया जाय तो लहरों की मृदुलता, कोमलता या मसृणता का भाव एकदम तिरोहित हो जाय। चांदनी और जल की लहरियों के संयोग से जिस मसृणता का भाव मन में जगता है उसे इस चित्र में केवल 'रेशमी' शब्द से व्यक्त कर दिया गया है। 'रेशमी' शब्द बिंब-विधान द्वारा उत्पन्न चित्रात्मकता के बीच अपनी एक अनोखी, नई चित्रात्मकता पैदा कर देता है। ये उदाहरण बिना किसी योजना के पल्लव और गुंजन से उठा लिए गये हैं। ऐसे पचासों उद्धरण इन संग्रहों से दिए जा सकते हैं। भाषिक प्रयोगों द्वारा चित्रात्मकता पैदा करने में पंत किसी सीमा तक 'कॉशस' कलाकार की भूमिका अदा करते हैं। छायावादियों में केवल निराला ही इस दृष्टि से उनके समकक्ष रखे जा सकते हैं।

कल्पना का उत्कर्ष : सौंदर्यशास्त्रियों ने काव्य में कल्पना के दो व्यापार माने हैं—एक तो वह स्वयं स्रष्टा कवि के लिए बाह्य आलंबन के प्रथम आनंद का ग्रहण कराती है और दूसरे, वह कवि की अनुभूति को संवेद्य या संप्रेष्य बनाती है। इनमें से दूसरे व्यापार से ही यहां हमारा संबंध है। छायावादी काव्य में चित्र-विधायिनी कल्पना का प्राचुर्य उसे उसके पूर्व के काव्य से अलग करता है। चित्रात्मकता पर विचार करते हुए हम पंत-काव्य में चित्र-विधायिनी कल्पना का उत्कर्ष कुछ देख आये हैं। यहां हमें यह देखना है कि कल्पना का तात्त्विक स्वरूप क्या है।

कुछ आलोचकों ने पंत की छायावादी कविता में 'फैंसी' का प्रचुर उपयोग दिखाया है। उनका यह मत प्रतीत होता है कि कम से कम छायावाद काव्य में पंत शुद्ध कल्पना की अपेक्षा फैंसी की ओर अधिक उन्मुख हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि छायावादी पंत में वस्तुगत आधार, अनुभूति, पर्यवेक्षण इत्यादि की अपेक्षा तक, अनुमान आदि का प्राधान्य है। हमारे विचार में इस प्रकार की धारणा का आधार यह है कि रोमैंटिक कवियों में स्वभावतः कल्पना की अपेक्षा 'फैंसी' कुछ प्रबल रहती है और आलोचकों ने माना है कि यह पंत में अन्य छायावादी रोमैंटिक कवियों की अपेक्षा अधिक प्रबल है। इस प्रकार की धारणा का कोई आधार नहीं है। वस्तु, अनुभूति आदि का आग्रह और पर्यवेक्षण का प्राचुर्य पंत में अन्य सभी छायावादियों की अपेक्षा अधिक है। प्रसाद के आंसू जैसी शुद्ध 'फैंसी' की पंक्तियां पंत में शायद ही कहीं मिलें :

> चंचला स्नान कर आवे
> चंद्रिका पर्व में जैसी,
> उस पावन तन की शोभा
> आलोक-मधुर थी वैसी।

पंत-काव्य से 'फैंसी' के जो उदाहरण आलोचकों ने दिए हैं, वे सभी ठीक नहीं हैं। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियों में वे शुद्ध 'फैंसी' देखते हैं :

धुधुकती है जलदों से ज्वाल
बन गया नीलम व्योम प्रवाल
आज सोने का संध्याकाल
जल रहा ऋतुगृह-सा बिकराल

इन पंक्तियों में अतिकल्पना का उपयोग मानने का कारण संभवत: यह है कि दूसरी पंक्ति में नीलम का प्रवाल होना बताया गया है। वस्तुत: यहां नीलम और प्रवाल के विरोधाभास द्वारा कवि ने शुद्ध पारम्परिक ढंग का चमत्कार प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। 'फैंसी' का क्षेत्र हम इतना फैला दें तो बड़े-बड़े वस्तुनिष्ठ कलाकारों में भी 'फैंसी' की प्रचुरता ढूंढ़ी जा सकेगी। फैंसी शब्द का प्रयोग मूर्ति-विधायिनी कल्पना से भिन्न कल्पना की उन्मुक्त उड़ान के अर्थ में ही किया जाना चाहिए। ऐसी उड़ान पंत में स्वभावत: ही मिलती है, पर मूर्ति-विधायिनी कल्पना भी पंत में उससे कुछ अधिक ही मुख्य है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि 'फैंसी' का उपयोग करते-करते भी पंत बार-बार वस्तु-सम्पृक्ति की ओर लौट आते हैं।

यहां आलोचकों के इस मत का विरोध करने का हमारा कुल तात्पर्य केवल यह है कि अन्य छायावादियों की अपेक्षा पंत में फैंसी का उपयोग अधिक देखना मात्र इस चिरपरिचित भ्रम से उत्पन्न हुआ है (और इसी का पोषण करता है) कि पंत एक अंतर्मुख, स्वप्नजीवी कलाकार हैं। पंत की यह 'इमेज' बहुत दिनों में सायास गढ़ी गई है। हम बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि यह 'इमेज' बिल्कुल गलत या कम-से-कम अधूरी है। पंत एक बहुत ही अधिक वस्तुनिष्ठ कलाकार हैं। छायावाद युग में एक रोमैंटिक की हैसियत से पंत को यही एक बात अन्य छायावादियों से अलग करती है। वे रोमैंटिक है, इसलिए उनमें रोमैंटिक काव्य की सारी विशेषताएं पाई जाती हैं। 'फैंसी' का प्रचुर उपयोग एक रोमैंटिक प्रवृत्ति है। पर यह कहना कि पंत ने औरों की अपेक्षा यह प्रवृत्ति अधिक प्रदर्शित की है, सरासर गलत है। पंत ने यह प्रवृत्ति प्रसाद की अपेक्षा बहुत कम प्रदर्शित की है, जैसे और जितने शुद्ध 'फैंसी' के उदाहरण प्रसाद से दिये जा सकते हैं, पंत से नहीं। वास्तव में 'फैंसी' के कवि के रूप में प्रसाद को हम पंत से आगे बढ़ा स्वीकार करेंगे। 'फैंसी' का एक उदाहरण 'कामायनी' से देखें :

आशा की आलोक किरन से
कुछ मानस से ले मेरे,
लघु जलधर का सृजन हुआ था
जिसको शशि-लेखा घेरे—
उस पर बिजली की माला-सी
झूम पड़ी तुम प्रभा-भरी
और जलद वह रिमझिम बरसा
मन वनस्थली हुई हरी।

अब 'गुंजन' से भी एक उदाहरण लें :

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार
लालसा की लौ से उठ लाल।

पहले उद्धरण की दूसरी पंक्ति ध्यान देने योग्य है—'कुछ' में प्रसाद की कोई रुचि नहीं है। सारा का सारा व्यापार वस्तु-सम्पृक्ति से विहीन, अनुमानाश्रित है। अंतिम पंक्तियों में बादल का बरसना भी बिजली के झूम पड़ने से दिखाया गया है, जो पुनः अनुमानाश्रित है। अंतिम पंक्ति 'मन वनस्थली हुई हरी' भी 'जलद वह रिमझिम बरसा' के तुरंत बाद सहसा आती है और उसका समीपी व्यापार नहीं लगती। बादल बरसने के तुरंत बाद वनस्थली का धुल जाना, कुछ लहक जाना आदि तो ठीक है, पर एकदम से हरा हो जाना कुछ ठीक नहीं जंचता। ठीक जंचने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि प्रसाद का ध्यान वस्तु-सापेक्ष बिंब-रचना पर है ही नहीं। यह संपूर्ण चित्र 'फैंसी' की उन्मुक्त उड़ान से बना है।

इसके विपरीत पंत की पंक्तियों में उड़ान बंधी-बंधी-सी है। पहली दो पंक्तियों में 'फैंसी' की सीधी उड़ान है। पर बाद की दो पंक्तियां पहली दो के लिए जैसे वस्तु-पीठिका इकट्ठी करती हैं। इसलिए अंततः वे (पहली दो) पंक्तियां भी अतिकल्पना की उड़ान की पंक्तियां नहीं रह जातीं। इसी कविता की आगे की पंक्तियों में भी 'फैंसी' और रचनात्मिका या मूर्ति-विधायिनी कल्पना का ऐसा ही संयोग जगह-जगह दीख पड़ता है। वास्तव में, जिस प्रकार पंत के छायावादी काव्य-व्यक्तित्व में वैयक्तिकता और वस्तुनिष्ठता का मेल दिखलाई पड़ता है वैसे ही उनके छायावादी शिल्प में कल्पना और फैंसी का मेल दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि जिस तरह पंत में अंततः वस्तून्मुखता व्यक्ति-निष्ठता से अधिक प्रबल है, वैसे ही उनके शिल्प में 'फैंसी' की अपेक्षा मूर्तिविधायिनी, रचनात्मिका कल्पना अंततः अधिक प्रबल है। नीचे 'फैंसी'-गर्भित कल्पनात्मकता का एक सुंदर उदाहरण गुंजन से देकर इस संक्षिप्त विवेचन को समाप्त करेंगे :

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारदा हासिनि,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

नवीन काव्यभाषा का स्वरूप : पंत ने पल्लव की भूमिका में काव्य की भाषा पर कुछ विस्तार से विचार किया है। हम यह मानकर चल सकते हैं कि कम-से-कम पंत के छायावादी काव्य की भाषा का स्वरूप इस भूमिका में व्यक्त विचारों से निर्धारित हुआ है। निष्कर्ष के रूप में पंत के विचारों के संबंध में हम कहते हैं कि—

प्रत्येक शब्द का अपना एक ——— संगीत होता है जो उसके स्थूल अर्थ से संबद्ध होने पर भी उससे स्वतंत्र रहता है उदाहरणार्थ मत्स्य मीन और मछली का

पंत-काव्य से 'फैंसी' के जो उदाहरण आलोचकों ने दिए हैं, वे सभी ठीक नहीं हैं। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियों में वे शुद्ध 'फैंसी' देखते हैं :

> धुधुकती है जलदों से ज्वाल
> बन गया नीलम व्योम प्रवाल
> आज सोने का संध्याकाल
> जल रहा जतुगृह-सा विकराल

इन पंक्तियों में अतिकल्पना का उपयोग मानने का कारण संभवतः यह है कि दूसरी पंक्ति में नीलम का प्रवाल होना बताया गया है। वस्तुतः यहां नीलम और प्रवाल के विरोधाभास द्वारा कवि ने शुद्ध पारम्परिक ढंग का चमत्कार प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। 'फैंसी' का क्षेत्र हम इतना फैला दें तो बड़े-बड़े वस्तुनिष्ठ कलाकारों में भी 'फैंसी' की प्रचुरता ढूंढ़ी जा सकेगी। फैंसी शब्द का प्रयोग मूर्ति-विधायिनी कल्पना से भिन्न कल्पना की उन्मुक्त उड़ान के अर्थ में ही किया जाना चाहिए। ऐसी उड़ान पंत मे स्वभावतः ही मिलती है, पर मूर्ति-विधायिनी कल्पना भी पंत में उससे कुछ अधिक ही मुख्य है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि 'फैंसी' का उपयोग करते-करते भी पंत बार-बार वस्तु-सम्पृक्ति की ओर लौट आते हैं।

यहां आलोचकों के इस मत का विरोध करने का हमारा कुल तात्पर्य केवल यह है कि अन्य छायावादियों की अपेक्षा पंत में फैंसी का उपयोग अधिक देखना मात्र इस चिरपरिचित भ्रम से उत्पन्न हुआ है (और इसी का पोषण करता है) कि पंत एक अंतर्मुख, स्वप्नजीवी कलाकार हैं। पंत की यह 'इमेज' बहुत दिनों में सायास गढ़ी गई है। हम बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि यह 'इमेज' बिलकुल गलत या कम-से-कम अधूरी है। पंत एक बहुत ही अधिक वस्तुनिष्ठ कलाकार हैं। छायावाद युग में एक रोमैंटिक की हैसियत से पंत को यही एक बात अन्य छायावादियों से अलग करती है। वे रोमैंटिक हैं, इसलिए उनमें रोमैंटिक काव्य की सारी विशेषताएं पाई जाती हैं। 'फैंसी' का प्रचुर उपयोग एक रोमैंटिक प्रवृत्ति है। पर यह कहना कि पंत ने औरों की अपेक्षा यह प्रवृत्ति अधिक प्रदर्शित की है, सरासर गलत है। पंत ने यह प्रवृत्ति प्रसाद की अपेक्षा बहुत कम प्रदर्शित की है, जैसे और जितने शुद्ध 'फैंसी' के उदाहरण प्रसाद से दिये जा सकते है, पंत से नहीं। वास्तव में 'फैंसी' के कवि के रूप में प्रसाद को हम पंत से आगे बढ़ा स्वीकार करेंगे। 'फैंसी' का एक उदाहरण 'कामायनी' से देखें :

> आशा की आलोक किरन से
> कुछ मानस से ले मेरे,
> लघु जलधर का सृजन हुआ था
> जिसको शशि-लेखा घेरे—
> उस पर बिजली की माला-सी
> झूम पड़ी तुम प्रभा-भरी
> और जलद वह रिमझिम बरसा
> मन वनस्थली हुई हरी।

अब 'गुंजन' से भी एक उदाहरण लें :

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के बन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार
लालसा की लौ से उठ लाल।

पहले उद्धरण की दूसरी पंक्ति ध्यान देने योग्य है—'कुछ' में प्रसाद की कोई रुचि नहीं है। सारा का सारा व्यापार वस्तु-सम्पृक्ति से विहीन, अनुमानाश्रित है। अंतिम पंक्तियों में बादल का बरसना भी बिजली के झूम पड़ने से दिखाया गया है, जो पुन अनुमानाश्रित है। अंतिम पंक्ति 'मन वनस्थली हुई हरी' भी 'जलद वह रिमझिम बरसा' के तुरंत बाद सहसा आती है और उसका समीपी व्यापार नहीं लगती। बादल बरसने के तुरंत बाद वनस्थली का घुल जाना, कुछ लहक जाना आदि तो ठीक है, पर एकदम से हरा हो जाना कुछ ठीक नहीं जंचता। ठीक जंचने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि प्रसाद का ध्यान वस्तु-सापेक्ष बिंब-रचना पर है ही नहीं। यह संपूर्ण चित्र 'फैंसी' की उन्मुक्त उडान से बना है।

इसके विपरीत पंत की पंक्तियों में उड़ान बंधी-बंधी-सी है। पहली दो पंक्तियों मे फैंसी' की सीधी उड़ान है। पर बाद की दो पंक्तियां पहली दो के लिए जैसे वस्तु-पीठिका इकट्ठी करती हैं। इसलिए अंततः वे (पहली दो) पंक्तियां भी अतिकल्पना की उडान की पंक्तियां नहीं रह जातीं। इसी कविता की आगे की पंक्तियों में भी 'फैंसी' और रचनात्मिका या मूर्ति-विधायिनी कल्पना का ऐसा ही संयोग जगह-जगह दीख पडता है। वास्तव में, जिस प्रकार पंत के छायावादी काव्य-व्यक्तित्व में वैयक्तिकता और वस्तुनिष्ठता का मेल दिखलाई पड़ता है वैसे ही उनके छायावादी शिल्प में कल्पना और फैंसी का मेल दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि जिस तरह पंत मे अंततः वस्तून्मुखता व्यक्ति-निष्ठता से अधिक प्रबल है, वैसे ही उनके शिल्प में 'फैंसी की अपेक्षा मूर्तिविधायिनी, रचनात्मिका कल्पना अंततः अधिक प्रबल है। नीचे 'फैंसी'-गर्भित कल्पनात्मकता का एक सुंदर उदाहरण गुंजन से देकर इस संक्षिप्त विवेचन को समाप्त करेंगे :

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारदा हासिनि,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

नवीन काव्यभाषा का स्वरूप : पंत ने पल्लव की भूमिका में काव्य की भाषा पर कुछ विस्तार से विचार किया है। हम यह मानकर चल सकते हैं कि कम-से-कम पंत के छायावादी काव्य की भाषा का स्वरूप इस भूमिका में व्यक्त विचारों से निर्धारित हुआ है। निष्कर्ष के रूप में पंत के विचारों के संबंध में हम कहते हैं कि—

प्रत्येक शब्द का अपना एक आभ्यंतर संगीत होता है जो उसके स्थूल अर्थ से संबद्ध होने पर भी उससे स्वतंत्र रहता है उदाहरणार्थ मत्स्य मीन और मछली का

स्थूल अर्थ एक होने पर भी उनमें संगीत-भेद है। अपने आभ्यंतर संगीत के कारण ही शब्द भाव से जुड़ते हैं। इसी कारण मत्स्य, मीन और मछली से व्यक्त होनेवाले भाव भिन्न-भिन्न हैं। पंत ने अपनी भूमिका में इस प्रकार के कई अन्य शब्दों का उल्लेख किया है।

कविता के लिए चित्रमयी भाषा आवश्यक होती है, अर्थात् ऐसी भाषा जिसके शब्दों की आभ्यंतर ध्वनि द्वारा कवि के भावों को ठीक-ठीक अभिव्यक्ति या रूपात्मकता प्राप्त होती हो।

भाषा का जो रूप संबद्ध भावों को सबसे अधिक सफाई से व्यक्त कर सके उसी का प्रयोग होना चाहिए। सत्तत् भावों के लिए भाषा के सत्तत् शब्द ही उपयुक्त होंगे, अन्य नहीं—यह संवेदना कवि को होनी चाहिए। जहां कवि को व्याकरण के स्थूल नियमों के उल्लंघन से भाषा में कोई भाव सधता दीखता हो, वहां इस प्रकार का उल्लंघन उचित एवं वांछनीय है।

पंत भाव और भाषा के बीच में एक स्वर-संगति की कल्पना करते हैं। यही स्वर-संगति चित्रात्मकता है। चित्रात्मकता कोई बाह्य गुण नहीं होता, शब्दों की आत्मा की सही पहचान से अपने-आप आता है। इसी स्वर-संगति का संधान और साधन कवि के लिए अनिवार्य है। इस प्रकार पंत ने काव्य की ध्वन्यात्मकता का एक नया रूप खड़ा किया जो, 'कूलन में, केलित में, कुंजन, कछारन में' की बाह्य ध्वन्यात्मकता या संगीतात्मकता से अधिक गहरी चीज थी और काव्य के प्राणतत्त्व से घनिष्ठत: संयुक्त थी।

शब्दों की संगीतात्मकता की यह पहचान पंत के छायावादी काव्य में शब्दों की आभ्यंतर ध्वन्यात्मकता तथा बाह्य नादात्मकता के रूप में व्यक्त हुई है। भाषा की राग-शक्ति का विवेचन करते हुए पंत ने तुक, अलंकार, छंद आदि पर भी विचार किया है। इनमें से छंद पर हम आगे विचार करेंगे। तुक और अलंकार को इसी संदर्भ में देखेंगे।

भाषा की आभ्यंतर ध्वन्यात्मकता पंत के छायावादी काव्य में प्राय: बाह्य नादात्मकता की अपेक्षा प्रधान रही है। यह ध्वन्यात्मक शब्दों के सही चुनाव और संयोजन से उत्पन्न होती है। भाषा की चित्रात्मकता की चर्चा करते हुए हम इस प्रकार के कुछ उदाहरण दे आये हैं। दो अन्य उदाहरण (एक पल्लव से तथा एक गुंजन से) द्रष्टव्य है

१. विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृंगार,
पूजता हूं मैं तुम्हें कुमारि।
मूंद दुहरे दृग द्वार।

२. आज चंचल-चंचल मन-प्राण,
आज रे शिथिल-शिथिल तन भार।
आज दो प्राणों का दिनमान
आज संसार नहीं संसार!

प्रथम उदाहरण में विधुर शब्द में हृदय का सूनापन 'कुमारि' संबोधन में प्रेम की पवित्रता तथा 'दुहरे' शब्द में मूंदने की क्रिया की दृढ़ता तथा एकांत की स्थिरता का भाव सफाई

से व्यक्त हुआ है। 'विधुर' शब्द के बाद 'कुमारि' शब्द तथा पूजा की क्रिया के साथ द्वार मूदने की क्रिया परस्पर अद्भुत चमत्कार का सृजन करते हैं। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'चंचल' शब्द की आवृत्ति में उमगने का तथा 'शिथिल' शब्द की आवृत्ति मे वातावरण की मादकता के प्रभाव की व्यंजना हुई है। तीसरी पंक्ति प्राणों का दिनमान प्रेम के क्षणों में काल की सत्ता समाप्त हो जाने की ओर संकेत करता है। चौथी पंक्ति मे संसार शब्द की आवृत्ति में विस्मृति और खो जाने का भाव व्यक्त हुआ है। ये दोनो ही उदाहरण आभ्यंतर शब्द-संगीत या शब्द-ध्वनि की आंतरिक पहचान के अद्भुत उदाहरण हैं।

ध्वन्यात्मकता के आभ्यंतर और बाह्य स्वरूपों का अवतरण पंत के छायावादी काव्य में देखने के बाद अब हम इस काव्य में तुक और अलंकार की अवस्थिति पर विचार करेंगे। तुक को पंत भाषा के संगीत का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। इसे उन्होंने 'राग का हृदय' कहा है। पर साथ ही अतुकांत कविता का भी स्थान वे स्वीकार करते है। उनका तर्क है कि कर्म 'एक्शन' का प्राधान्य जिस प्रकार जीवन में तुक को भग करता है उसी प्रकार कविता में भी। इसलिए अतुकांत कविता कर्म-संकुलता और 'अश्रांत दौड़' की कविता है। गीतिकाव्य भावपूर्ण, शांत संगीतमयता का काव्य है, इसलिए उसमें तुक बहुत आवश्यक है। अपने छायावादी काव्य में पंत ने सर्वत्र तुक का प्रयोग किया है।

अलंकारों को भी पंत ने राग-दृष्टि से ही संयोजित किया है। वे लिखते है— "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।" अलंकार के संबंध में इतनी संवेदना-प्रधान दृष्टि रखने के कारण पन ने अलंकारों का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति को अधिक प्रखर या व्यंजक बनाने के लिए ही किया है। पंत के छायावादी काव्य से सांगरूपक का एक प्रसिद्ध उदाहरण निम्नलिखित है :

अहे वासुकि सहस्रफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर।
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुंडल
दिङ् मंडल !

छंद की रागवादी दृष्टि छद के विषय मे सभी छायावादियो की तरह पत की दृष्टि भी यही प्रतीत होती है कि छद मे भावो के उतार चढ़ाव के लयात्मक सयोजन पर अधिक ध्यान होना चाहिए, शास्त्रीय बंधनों पर कम। इस प्रकार मति-यति और लघु-गुरु की रूढ़ियों का पालन करने का कोई प्रयास पंत में नहीं दिखाई देता। इसकी अपेक्षा वे छद की गति को भावों के अनुकूल ही मोड़ते दिखाई देते हैं।

पल्लव की भूमिका में पंत ने छंद पर विस्तार से विचार किया है। यहां उन्होने वर्णिक की अपेक्षा मात्रिक छंदों को हिंदी की प्रकृति के अधिक अनुकूल मानकर उन्हें वरीयता दी है। मात्रिक छन्दों में भी उन्होंने छन्दों के भावानुकूल प्रयोग पर बल दिया है, उदाहरणार्थ, पीयूषवर्षण, रूपमाला, सखी और प्लवंगम को करुण रस के, राधिका को क्रीड़ा के भाव के तथा अरिल्ल को कल्-कल् छल्-छल् करती गति के उपयुक्त उन्होंने स्वीकार किया है। पंत ने स्वच्छंद छंद पर भी विचार किया है। इस छंद को वे इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि वह 'आंतरिक ऐक्य, भाव जगत् के साम्य को ढूढता है, उसमें छंद के चरण भावानुकूल ह्रस्व-दीर्घ हो सकते हैं। अपने छायावादी काव्य मे पंत ने रोला, रूपमाला, राधिका पीयूषवर्षण, पद्धरि, अरिल्ल, सखी इत्यादि छंदो के साथ युक्त छंद का भी प्रयोग किया है।

इसके साथ ही पंत के छायावादी शिल्प का यह संक्षिप्त विवेचन समाप्त होता है। यदि एक शब्द में इस शिल्प की समस्त विशेषताओं को समेटना हो तो वह शब्द होगा—चित्रात्मकता। यहां यह दुहरा देना भी उचित होगा कि पंत के लिए चित्रात्मकता तथा 'भाव एवं भाषा का स्वरैक्य परस्पर समानार्थी हैं।'

पंत का प्रगतिवादी शिल्प

पत की प्रगतिवादी ढंग की कृतियों की शैली यथार्थवादी कही जा सकती है। 'यथार्थवादी शैली' कहने से केवल शिल्प का एक विशेष प्रकार ही द्योतित नहीं होता वरन् इससे बोध का एक स्वतंत्र स्वरूप भी द्योतित होता है। यथार्थवाद बोध के स्तर पर सामान्य, दैनन्दिन, ऐहिक तथा स्थूल का महत्त्व सर्वोपरि स्थापित करता है। शैली के स्तर पर वह इसी प्रकार सूक्ष्म रेखाओं के सौंदर्य के स्थान पर 'बोल्ड' रेखाओं की दुर्दम प्रभविष्णुता को स्थापित करता है। शिल्प के स्तर पर यथार्थवाद तरल और सूक्ष्म बिंबो की अपेक्षा ठोस बिंबों को (जहां संभव हो वहां बिंबों की अपेक्षा सीधी कथन-शैली को), कलात्मक बुनावट की अपेक्षा यथार्थ अंकन को, भाषिक आभिजात्य की अपेक्षा बोलचाल के मुहावरे को, रहस्यवादी प्रतीकों की अपेक्षा सीधे (डायरेक्ट) प्रतीकों को तथा कल्पना की अपेक्षा तथ्यात्मकता पर बल देता है।

युगांत से पंत अपनी सौंदर्यवादी भूमि से यथार्थवाद की भूमि पर संक्रमित होते दिखाई देते हैं। 'ज्योत्स्ना' के उच्च सांस्कृतिक सामंजस्यवाद के अनंतर 'युगांत' मे वे अपेक्षाकृत बहुत समतल भूमि पर विचार करते प्रतीत होते हैं। युगांत की मिट्टी के ढेले को लक्ष्य करके लिखी गई कविता मानो कवि के समतल संचरण का प्रतीक है। युगात की अपेक्षा युगवाणी और ग्राम्या में यथार्थवादी शैली बहुत अधिक स्पष्ट है। ग्राम्या के

छद की रागवादी दृष्टि छद के विषय मे सभी छायावादियो की तरह पत की दृष्टि भी यही प्रतीत होती है कि छद मे भावो के उतार चढ़ाव के लयात्मक सयाजन पर अधिक ध्यान होना चाहिए, शास्त्रीय बंधनों पर कम। इस प्रकार मति-यति और लघु-गुरु की रूढ़ियों का पालन करने का कोई प्रयास पंत में नहीं दिखाई देता। इसकी अपेक्षा वे छद की गति को भावों के अनुकूल ही मोड़ते दिखाई देते हैं।

पल्लव की भूमिका में पंत ने छंद पर विस्तार से विचार किया है। यहां उन्होंने वर्णिक की अपेक्षा मात्रिक छंदों को हिंदी की प्रकृति के अधिक अनुकूल मानकर उन्हें वरीयता दी है। मात्रिक छन्दों में भी उन्होंने छन्दों के भावानुकूल प्रयोग पर बल दिया है, उदाहरणार्थ, पीयूषवर्षण, रूपमाला, सखी और प्लवंगम को करुण रस के, राधिका की क्रीड़ा के भाव के तथा अरिल्ल को कल्-कल् छल्-छल् करती गति के उपयुक्त उन्होंने स्वीकार किया है। पंत ने स्वच्छंद छंद पर भी विचार किया है। इस छंद को वे इन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि वह 'आंतरिक ऐक्य, भाव जगत् के साम्य को ढूढता है, उसमें छंद के चरण भावानुकूल ह्रस्व-दीर्घ हो सकते हैं। अपने छायावादी काव्य मे पंत ने रोला, रूपमाला, राधिका पीयूषवर्षण, पद्धरि, अरिल्ल, सखी इत्यादि छंदो के साथ युक्त छंद का भी प्रयोग किया है।

इसके साथ ही पंत के छायावादी शिल्प का यह संक्षिप्त विवेचन समाप्त होता है। यदि एक शब्द में इस शिल्प की समस्त विशेषताओं को समेटना हो तो वह शब्द होगा—चित्रात्मकता। यहां यह दुहरा देना भी उचित होगा कि पंत के लिए चित्रात्मकता तथा 'भाव एवं भाषा का स्वरैक्य परस्पर समानार्थी हैं।'

पत का प्रगतिवादी शिल्प

पंत की प्रगतिवादी ढंग की कृतियों की शैली यथार्थवादी कही जा सकती है। 'यथार्थवादी शैली' कहने से केवल शिल्प का एक विशेष प्रकार ही द्योतित नहीं होता वरन् इससे बोध का एक स्वतंत्र स्वरूप भी द्योतित होता है। यथार्थवाद बोध के स्तर पर सामान्य, दैनन्दिन, ऐहिक तथा स्थूल का महत्त्व सर्वोपरि स्थापित करता है। शैली के स्तर पर वह इसी प्रकार सूक्ष्म रेखाओं के सौंदर्य के स्थान पर 'बोल्ड' रेखाओं की दुर्दम प्रभविष्णुता को स्थापित करता है। शिल्प के स्तर पर यथार्थवाद तरल और सूक्ष्म बिबो की अपेक्षा ठोस बिबों को (जहां संभव हो वहां बिबों की अपेक्षा सीधी कथन-शैली को), कलात्मक बुनावट की अपेक्षा यथार्थ अंकन को, भाषिक आभिजात्य की अपेक्षा बोलचाल के मुहावरे को, रहस्यवादी प्रतीकों की अपेक्षा सीधे (डायरेक्ट) प्रतीकों को तथा कल्पना की अपेक्षा तथ्यात्मकता पर बल देता है।

युगांत से पंत अपनी सौंदर्यवादी भूमि से यथार्थवाद की भूमि पर संक्रमित होते दिखाई देते हैं। 'ज्योत्स्ना' के उच्च सांस्कृतिक सामंजस्यवाद के अनंतर 'युगांत' मे वे अपेक्षाकृत बहुत समतल भूमि पर विचार करते प्रतीत होते हैं। युगांत की मिट्टी के ढेले को लक्ष्य करके लिखी गई कविता मानो कवि के समतल संचरण का प्रतीक है। युगात की अपेक्षा युगवाणी और ग्राम्या में यथार्थवादी शैली बहुत अधिक स्पष्ट है। ग्राम्या के

बाद की कृतिया मे वह नही मिलती।

पीछे हम सौंदर्यवादी शैली के परिपार्श्व में यथार्थवादी शैली के कुछ महत्त्वपूर्ण घटकों का उल्लेख कर आए हैं। पंत ने अपनी यथार्थवादी शैली का स्वरूप, इन्हीं घटकों को अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न मात्राओं में अपनी कथन-भंगी में उतारकर, खड़ा किया। क्रम से हम पंत की यथार्थवादी शैली के विभिन्न घटकों को 'बिंब-योजना का नया स्वरूप', 'सीधी कथन-शैली', 'नवीन भाषिक संरचना' तथा 'प्रतीकात्मकता का अभिनव तत्त्व' कहेंगे। आगे हम क्रम से इन घटकों को विवेचित करने का प्रयास करेंगे।

बिंब-योजना का नया स्वरूप : अपनी प्रगतिवादी ढंग की कृतियों में पंत बिंब-योजना के नये उपादानों की खोज में प्रवृत्त दिखाई देते हैं। सौंदर्यवादी ढंग की बिंब-योजना को छोड़कर अब वे यथार्थवादी ढंग की बिंब-योजना का उपयोग करते दिखाई देते हैं। युगवाणी से 'गंगा की सांझ' शीर्षक कविता में बिंब के नवीन उपादानों का संग्रह द्रष्टव्य है :

अभी गिरा रवि, ताम्र कलश-सा
गंगा के उस पार
क्लांत पांथ, जिह्वाविलोल
जल में रक्ताभ प्रसार।
भूरे जलदों से धूमिल नभ
विहग छंदों-से बिखरे—
धेनु-त्वचा-से सिहर रहे
जल में रोओं-से छितरे।

यहा बिंब-रचना के समस्त उपादान छायावादी कविता की तुलना में बिल्कुल नये हैं। सध्या का सम्पूर्ण चित्र भी छायावादी काव्य के मुग्ध, सौंदर्याविष्ट चित्रों से बहुत अलग है। इससे कहीं यह भी प्रतीत होता है कि शुद्ध प्रकृति-सौंदर्य का प्रेमी कवि-मन मानवीय विषमताओं के संपर्क में आकर अब प्रकृति के प्रति वह सात्त्विक आकर्षण नहीं अनुभव कर पाता।

बिंब-रचना के इन नूतन उपादानों के संबंध में जिस बात पर सबसे पहले ध्यान जाता है वह यह कि ये बहुत अधिक समीपी और परिचित उपादान हैं, बहुत सूक्ष्म, तरल या 'फैंसीफुल' ढंग की बिंब-रचना यहां नहीं मिलती। ठोस, स्थूल परंतु आश्चर्यजनक रूप से जीवंत बिंबों की सृष्टि पंत के प्रगतिवादी काव्य की एक उपलब्धि है। नीचे के तीन उदाहरणों को देखें :

१. हंसते भू के अंग अंग
हरित हरित रंग!
२. तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्धक्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,

नत मस्तक
तरु तल निवासिनी।
३. बदली छंटने पर लगती प्रिय
ऋतुमती धरित्री सद्यस्नात।

पहले उदाहरण में नवीन विकास के उल्लास का अंकन है। दो छोटी पंक्तियो मे बडी खूबी के साथ यह भाव व्यक्त हो गया है। हरित रंग हरियाली, विकास आदि का चिर-परिचित उपादान है, इसलिए यह चित्र सहज ग्राह्य हो सका है। 'हरित' शब्द की आकृति से कुछ इस प्रकार की ध्वनि निकलती है जैसे नवयौवना भू के अंगो स लिपटा हरे रंग का वस्त्र नवयौवना के अंगों के उतार-चढ़ाव के कारण कई-कई झलकें मार रहा हो। इस प्रकार इस शब्द-बिंब द्वारा विकास की अनेकमात्रता और अनेकायामिता भी अच्छी तरह व्यक्त हो गई है। दूसरे उदाहरण में भारतमाता को 'तरु तल निवासिनी' कहकर उसके समस्त दैन्य और संताप को अभिव्यक्त कर दिया गया ह। इसके अतिरिक्त यह बिंब विलक्षण देशीय गंध का बिंब है। 'पेड़ के तले रहना' निःस्वत्व या अकिंचनता के प्रतीक के रूप में लोकगीतों में बार-बार आता है। तीसरा बिंब बदली छटने के बाद की धरती को ऋतुकाल के अनंतर सद्यःस्नाता स्त्री से उपमित करता हे। अत्यंत व्यंजक होने के साथ ही इस बिंब में भी देशीय गंध अत्यंत स्पष्ट है। ऋतुमती के लिए शृंगार आदि न करने के भारतीय विधि-निषेधों से अपरिचित व्यक्ति इस बिंब की पूरी व्यंजना को ठीक-ठीक ग्रहण नहीं कर सकेगा।

पंत के प्रगतिवादी काव्य में ध्वनि-बिंबों की प्रचुरता पर सहज ही ध्यान जाता हे। ये ध्वनि-बिंब कभी विभिन्न ध्वनियों के आधार पर और कभी शब्द-ध्वनि के आधार पर गठित किए गए हैं। पहले प्रकार के ध्वनि-बिंबों के उदाहरण युगवाणी की 'घननाद', 'झंझा में नीव' तथा ग्राम्या की 'धोबियों का नृत्य', 'चमारों का नाच' आदि कविताओ मे मिलते हैं। दूसरे प्रकार के ध्वनि-बिंब युगवाणी की 'पुण्य प्रसू' तथा ग्राम्या की 'चरखा गीत' जैसी कविताओं में देखे जा सकते हैं।

कथन-शैली की प्रचुरता पंत के प्रगतिवादी काव्य में दिखाई देती है। जहां कही कथन-शैली के बीच शब्द बिंबात्मक हो गए हैं वहां सुंदर शब्द-बिंबों की सृष्टि हुई है। पंत के प्रगतिवादी काव्य में इस प्रकार के शब्द-बिंब संख्या में बहुत अधिक हैं और प्रायः यथेष्ट प्रभावोत्पादकता रखते हैं। शब्द-बिंबों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

बिदा फुआ से ले हाहा कर,
सखियों से रो धो बतिया कर,
पड़ोसिनों पर टूट रंभाकर।
जाती ग्रामवधू पति के घर।

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के बिंबों की कुछ प्रमुख कोटियों का उल्लेख ऊपर किया गया है, परंतु इन संग्रहों की बिंब-योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य उनके बाह्य संयोजन में नहीं वरन् उनकी समस्त सार्थकता में उभरता है। इन कृतियों में बिंब का प्रयोग अपने संगठनात्मक सौंदर्य के कारण उतना प्रभावित नहीं करता जितना अपने

पीछे सक्रिय कठोर और निर्मम यथार्थ के कारण। सारे के सारे बिंब भिन्न-भिन्न विषय संवेदनाओं से उपजते और उन्हीं की सशक्त अभिव्यक्ति करते हैं। उनका आंतरिक गठन सदैव छायावादी बिंबों की तरह पूर्ण नहीं है, पर अपनी खालिस सशक्तता में वे छायावादी बिंबों को बहुत पीछे छोड़ जाते हैं। अनेक आग्रहों के कारण प्राय: पंत के यथार्थवादी शिल्प का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका है। प्राय: यह माना जाता रहा है कि पंत की प्रगतिवादी कृतियां कम से कम शिल्प के स्तर पर एक निश्चित ह्रास सूचित करती हैं। सत्य यह है कि इन कृतियों (और विशेषत: ग्राम्या) की-सी सशक्त, प्रभविष्णु बिंब-योजना छायावादी काव्य में बहुत विरल है। ग्राम्या से बिंब का और उदाहरण देख लेना इस प्रसंग में उचित होगा :

गंजी को मार गया पाला
अरहर के फूलों को झुलसा,
हांका करती दिन भर बंदर
अब मालिन की लड़की तुलसा।

खेती को पाला मार गया है, इसलिए खेत रखाने की क्रिया अब बंदर हांकने की क्रिया-मात्र हो गई है—निरर्थक और बेमानी। निरर्थकता के भाव की अभिव्यक्ति इस सहज बिंब से बड़ी सफाई से हो सकी है। इसी प्रकार ग्राम-जीवन में व्याप्त जड़ता का अंकन इस चित्र के माध्यम से अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग से संभव हुआ है :

किस महारात्रि तम में निद्रित
ये प्रेत ?—स्वप्नवत् संचालित।
किस मोह मंत्र से रे कीलित।
ये दैव दग्ध, जग के पीड़ित॥

सीधी कथन-शैली : युगवाणी से कविता की कथन-शैली पंत के काव्य में कुछ प्रमुख होने लगती है। तब से लेकर अंत तक यह शैली पंत-काव्य में महत्त्वपूर्ण रही है। इस शैली के भी दो रूप पंत के यथार्थवादी काव्य में दिखाई पड़ते हैं—एक तो वह जहां सीधा सिद्धांत कथन या उपदेश है, और दूसरा वह जहां किसी वस्तु या स्थिति का वर्णन सीधे वर्णनात्मक ढंग से किया गया है। इनमें पहली प्रकार की कविताएं युगवाणी की 'युग उपकरण', 'नवसंस्कृति', 'उद्‌बोधन', 'मार्क्स के प्रति', 'भूत दर्शन', 'साम्राज्यवाद', 'समाजवाद-गांधीवाद', 'संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति', 'मध्यवर्ग' तथा ग्राम्या की 'आधुनिका', 'नारी', 'द्वंद्व प्रणय', 'संस्कृति का प्रश्न', 'सांस्कृतिक हृदय', 'भारत ग्राम', 'अहिंसा', 'उद्‌बोधन' आदि हैं। इन कविताओं की संख्या काफी बड़ी है और वस्तुत: पंत के समस्त छायावादोत्तर काव्य-संग्रहों में इस ढंग की दस-पांच कविताएं अवश्य ही हैं। अधिकतम सहानुभूति के साथ विचार करके भी हम इन्हें अत्यंत सामान्य कविता कह सकते हैं। वैसे कविताओं के रूप में इनकी चर्चा करना निरर्थक प्रयास ही कहा जाएगा। यहां मात्र उनके स्वरूप का कुछ अनुमान कराने के लिए कुछ पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं :

साम्यवाद ने दिया विश्व को नव भौतिक दर्शन का ज्ञान,
अर्थशास्त्र-औ-राजनीति-गत विशद ऐतिहासिक विज्ञान।

साम्यवाद ने दिया जगत् को सामूहिक जनतंत्र महान,
भव जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण।

इन पंक्तियों में एक भी ऐसी बात नहीं है जिसे गद्य में अधिक अच्छी तरह न कहा जा सके। 'तुकबंदी' से बड़ा कोई शब्द इनके लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। इसलिए, यद्यपि पंत-साहित्य में इस प्रकार की अति सामान्य कविताएं बहुत हैं, फिर भी हम पंत की काव्य-शैली में उनको कोई स्थान नहीं दे सकते।

दूसरे प्रकार की कथन-शैली की कविताएं उच्चकोटि की साहित्यिक कृतिया है और यहां उन्हीं से हमारा विशेष अभिप्राय है। इस प्रकार की 'दो लड़के', 'वह बुड्ढा', 'वे आंखें' इत्यादि अनेक कविताओं की चर्चा हम पिछले अध्याय में यथार्थ-बोध के संदर्भ में कर आए हैं। हम देख आए हैं, किस प्रकार इन कविताओं में पंत ने रूमानी प्रगतिशीलो के बीच लोकप्रिय क्रांतिधर्मा जनगण की अयथार्थ और काल्पनिक मूर्ति को भंग करके अशिक्षित, मूढ़, जड़, निर्धन और अपने ही जड़ संस्कारों से जनगण का वास्तविक स्वरूप उद्घाटित किया। इन कविताओं में कवि प्रायः सीधी वर्णन-शैली का आश्रय लेता है। वर्ण्य विषय का बिंबात्मक ग्रहण कराने के स्थान पर वह उसका यथातथ्य अभिधात्मक अंकन करता है। पर ध्यान से देखें तो इस प्रकार की कविताओं में भी एक सूक्ष्म बिंबात्मक तत्त्व सर्वत्र रहता है। जिन कविताओं में यह तत्त्व नहीं है वे प्रायः बेजान-सी लगती है। इस प्रकार की एक कविता ग्राम्या की 'नहान' है। इस कविता में मकर संक्रांति के स्नानार्थी ग्रामीणों का अंकन है। पूरी कविता सीधी वर्णन-शैली में चलती है :

जन पर्व मकर संक्रांति आज
उमड़ा नहान को जन समाज
गंगा तट पर, सब छोड़ काज।

ο ο ο

गा रहीं स्त्रियां मंगल कीर्तन,
भर रहे तान नवयुवक मगन,
हंसते बतलाते बालक गण।

ο ο ο

ये छोटी बस्ती में कुछ क्षण
भर गए आज जीवन स्पंदन,
प्रिय लगता जनगण सम्मेलन।

सारी कविता बेजान लगती है। इसके अन्य भी कई कारण हो सकते हैं, पर इसका एक प्रधान कारण यह है कि इसमें पंत की चिरपरिचित व्यंजकता का अभाव है। ये पंक्तिया वर्णन करने के बावजूद कुछ नहीं कहतीं। इसके विपरीत लगभग इसी शैली में लिखी गई इन पंक्तियों को देखें :

खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढांचे पर

ऊपर से देखने पर ये पंक्तियां भी सीधी वस्तुवर्णन की अभिधात्मक पंक्तियां लगती हैं, पर ध्यान से देखें तो 'जीवन का बूढ़ा पंजर' तथा 'चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी' में सुंदर व्यंजनाएं मिलेंगी। 'जीवन का बूढ़ा पंजर' जैसे बुड्ढे के रक्त-मांसहीन, शुष्क, रसहीन, शरीर को उसके चुक आए जीवन का प्रतीक बना देता है, उसी प्रकार 'चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी' में 'चिमटी' शब्द से बुड्ढे की अनपेक्षित, अभागी, बेहया जीवन-लालसा अपनी सारी करुणता के साथ व्यक्त हुई है। ये पंक्तियां, इस प्रकार, वर्णनात्मक होते हुए भी एक सूक्ष्म प्रकार की बिंबात्मकता से समन्वित हैं।

कथन-शैली की बहुत-सी कविताओं में तो बिंब बीच-बीच में सीधे आ गए हैं। इनमें से कई के सर्वश्रेष्ठ स्थल ये बिंबात्मक स्थल ही हैं। इस प्रकार के कुछ स्थल कथन-शैली की प्रसिद्ध कविताओं 'वह बुड्ढा', 'गांव के लड़के' तथा 'ग्राम देवता' से उद्धृत किए जाते हैं :

१. काली नारकीय छाया वह
छोड़ गया निज मेरे भीतर
पैशाचिक सा कुछ—

२. ये सुखी या दुखी ? पशुओं-से
जो सोते-जगते सांझ प्रात।

३. हे ग्राम देवता, रूढ़िधाम !
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्ण काम,
जड़वत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम

पहले उदाहरण को यदि अभिधात्मक ढंग से ग्रहण किया जाय तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इसके विपरीत बिंबात्मक ढंग से ग्रहण करने पर इन पंक्तियों से कवि के संवेदनशील मन की विरक्ति और क्षोभ बड़ी अच्छी तरह व्यक्त होते हैं। अकिंचन, भिखमंगे बुड्ढे को देखकर कवि का अपना मन कहीं बहुत गहरे जीवन की विषमताओं और कुरूपताओं (जिन्हें सीमित स्वार्थों और शोषणवादी व्यवस्था ने जन्म दिया है) से आक्रांत होता है। इस आक्रांति को वह 'काली नारकीय छाया' और 'पैशाचिक सा कुछ' कहकर व्यक्त करता है। दूसरे उदाहरण में सोने-जगने की दैनन्दिन क्रिया के बिंब द्वारा ग्रामीण जीवन की पंगु, जीवन्मृत जड़ता को व्यंजित किया गया है। अंतिम उदाहरण के 'पुरुष पुरातन', 'देव सनातन', 'कल्प शत एक याम' आदि पौराणिक बिंब औसत भारत-वासी की मध्ययुगीन नैतिक दृष्टि का अंकन करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि पंत में शुद्ध अभिधात्मक कविताओं के अच्छे उदाहरण हैं ही नहीं। 'युगवाणी' की 'कृषक' शीर्षक कविता इस प्रकार की कविता का श्रेष्ठ उदाहरण है। कुल मिलाकर हम यही कहना चाहते हैं कि पंत शिल्प के स्तर पर बिम्ब-वादी अभिरुचि के कवि हैं। संख्या की दृष्टि से भी और काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी बिम्बात्मक ढंग की कविताओं का उनके काव्य में प्राधान्य है। इसलिए जब कभी वे सपाटबयानी पर उतरते हैं तब वे वहीं तक स्तरीय रह पाते हैं जहां तक कि बिम्बात्म-कता, सूक्ष्म या प्रकट रूप में उसके साथ संयुक्त रहती है, अन्यथा उनकी सपाटबयानी

प्राय. स्तरहीन कवित्व का रूप ग्रहण करती है। वास्तव में, सपाटबयानी की भाषा का पंत के पास अभाव है। छायावादियों में सच्ची सपाटबयानी की भाषा अकेले निराला आविष्कृत कर सके थे।

नवीन भाषिक संरचना : छायावाद की तरल भाषा गुंजन तक आते-आते ही जमकर कुछ ठोस होने लगी थी। प्रगतिवादी रचनाओं में इसी भाषा का और भी ठोस, अपेक्षाकृत परुष रूप सामने आया। नवीन काव्य-वस्तु के अनुरूप पंत ने इन रचनाओं में भाषा का भी पुन: संस्कार किया है और उसे अनपेक्षित कोमलता से मुक्त करके कठोर वास्तव की अभिव्यक्ति के योग्य बनाया है। भाषा की यह काट-छांट युगांत में बहुत स्पष्ट नहीं है। युगवाणी से हम नवीन भाषिक संरचना का स्वरूप कुछ प्रकट होता पाते हैं। युगवाणी की 'कृषक' शीर्षक कविता इस नवीन भाषा का पूरा आभास देती है। ग्राम्या में तो इसका पूर्ण विकास ही दिखाई देता है, विशेषत: 'वह बुड्ढा', 'धोबियों का नृत्य' और 'चमारों का नाच' शीर्षक कविताओं में।

ऐसा नहीं है कि पंत ने नवीन यथार्थ के लिए एक अधिक साधारण या सामान्य भाषा की खोज कर ली है। ऊपर से देखने पर उनकी भाषा अब भी उतनी ही संस्कृत-निष्ठ और सामान्येतर दिखाई पड़ती है, परंतु अंदर की संरचना बिल्कुल बदल गई है। वर्णों और शब्दों के संगीत और राग तथा कोमलता पर अब वह बल नहीं है। नये शब्द और उनका नवीन संगठन जीवन के यथार्थ को झेलने लायक बनाए गए हैं। इसलिए संस्कृत शब्दों की प्रचुरता के बावजूद यह भाषा नवीन काव्य-वस्तु के साथ असंगत नहीं लगती। कहीं-कहीं तो भाषा का बाहरी स्वरूप भी इतना स्पष्ट बदला हुआ लगता है कि प्रतीत होता है जैसे पंत काव्य-आभिजात्य का बंधन तोड़ने के करीब पहुंच गए हों, जैसे निम्नलिखित उदाहरणों में :

१. ....झुरियों का
झांझर मुख निकला बाहर
२. बंधा चाम का तंग पीठ पर,
पहुंचे पर बद्धी का हंटर,
लिये हाथ में ढाल, टेढ़ुही
दुमुहा-सी बलखाई सुंदर।—
इतराता वह वन मुरलीधर।

परंतु साधारणत: अपने प्रगतिवादी काव्य में भी पंत ने काव्य-आभिजात्य से मुक्ति का वैसा प्रयास नहीं किया जैसा, उदाहरणार्थ, निराला ने। निराला अपनी यथार्थवादी रचनाओं में सामान्य का चित्रण ही नहीं करते हैं, वरन् अपनी भाषा को भी सामान्यता के स्तर तक उतारते हैं। इसके विपरीत पंत का भाषिक आभिजात्य यहां भी बरकरार रहता है। वास्तव में निराला का व्यक्तित्व ही आभिजात्य और सामान्यता का ऐसा विचित्र मिश्रण था कि उनके लिए साथ-साथ आभिजात और सामान्य हो लेना बहुत कठिन नहीं था। पंत में, इसके विपरीत, आभिजात्य केन्द्रीय है, सामान्यता नहीं। इसलिए उनकी भाषिक संरचना उस प्रकार दुहरे स्तरों पर नहीं विकसित हुई जिस तरह

निराला की। 'राम की शक्तिपूजा' तथा 'कुकुरमुत्ता' को एक ही कवि की रचना के रूप में अनभिज्ञ पाठक नहीं स्वीकार करेगा। इसके विपरीत पंत की भाषा को गुंजन और ग्राम्या में साथ-साथ पहचाना जा सकता है। पंत की काव्य-भाषा का विकास इकहरा है। अपनी छायावाद-कालीन काव्य-भाषा को ही उन्होंने अपनी नवीन संवेदनाओं की आंच में तपाकर नवीन काव्य-भाषा का स्वरूप खड़ा किया। इसलिए आभिजात्य का एक अनिवार्य तत्त्व उसमें रह गया है।

पंत की प्रगतिवादी काव्य-भाषा के बुनियादी आभिजात्य को स्वीकार करके भी हम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि इससे उनकी अभिव्यक्ति कमजोर या कम प्रभावोत्पादक हो गई है। वास्तव में, हमारी दृष्टि में, पंत ने जहां अपनी स्वाभाविक शैली बरकरार रखी है वहां वे सम्बद्ध वस्तुओं और स्थितियों के प्रति अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं अधिक अच्छी तरह व्यक्त कर सके हैं। काव्य की भाषा जिस प्रकार विषय-वस्तु से निर्धारित होती है उसी प्रकार कवि-व्यक्तित्व से भी। पंत ने अपनी प्रगतिवादी काव्य-भाषा में इस प्रकार का संतुलन स्थापित किया है जिससे नवीन विषय-वस्तु के साथ भी न्याय हो सके और उनका व्यक्तित्व भी अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उभरे। जहां कहीं उन्होंने भाषा में सामान्यता का गुण सायास उत्पन्न करने का प्रयास किया है, वहां बहुत अच्छा प्रभाव नहीं उत्पन्न होता, उदाहरणार्थ ग्राम्या की निम्नलिखित पंक्तियों में :

बिना दवा दर्पन के गृहिनी
स्वरग चली,—आंखें आतीं भर

ये पंक्तियां बिल्कुल नकली लग रही हैं, जबकि युगवाणी की निम्न पंक्तियों की अभिजात और संस्कृतनिष्ठ भाषा पंत को अधिक ईमानदारी से व्यक्त कर पाती हैं :

युग युग का वह भारवाह, आकृति नत मस्तक
निखिल सभ्य संसार पीठ का उसके स्फोटक !
वज्र मूढ़, जड़ भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक।

प्रतीकात्मकता का अभिनव तत्त्व : प्रतीकात्मकता को पंत के प्रगतिवादी काव्य का अभिनव तत्त्व कहने से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि वह इस ढंग की कृतियों में सहसा प्रकट हुई है। जैसा कि हम पीछे प्रकृति-कविताओं के संदर्भ में देख आये हैं, प्रतीकात्मकता का कुछ आभास 'वीणा' में ही मिल जाता है। परंतु पंत की छायावादी कृतियों में प्रतीकात्मकता बहुत ही विरल, प्रायः नगण्य है। युगांत में यह पहली बार कुछ स्पष्ट होकर उभरती है। युगांत की पहली कविता में ही पतझर का प्रतीक लाया गया है। इसी संग्रह की एक अन्य कविता में प्रतीकात्मकता द्रष्टव्य है :

वे डूब गए—सब डूब गए
दुर्दम, उदग्र शिर अद्रि शिखर।
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में।
लो, स्वर्ण-स्वर्ण अब सब भूधर।

इसी प्रकार ग्राम्या की 'स्वीट पी के प्रति' में प्रतीकात्मकता स्पष्ट है :

क्या न बिछाओगी जन पथ पर
स्नेह सुरभिमय
पलक पंखड़ियों के दल ?
स्निग्ध दृष्टि से जन मन हर
आंचल से ढंक दोगी न शूल चय
जर्जर मानव पदतल ?

इसी प्रकार अन्य कई कविताओं में विभिन्न वस्तुओं-व्यापारों को कभी प्राचीन जीर्ण संस्कृति और कभी नवयुग इत्यादि के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अनेक कविताओं की प्रतीकात्मकता उतनी पुष्ट नहीं है, कवि प्रतीकों से तत्काल रूपकों पर उतरता दिखाई देता है। पर एकाध कविताओं में प्रतीकात्मकता अंशतः पुष्ट है। फिर भी प्रगतिवादी काव्य की अनिवार्य वस्तुपरकता के कारण प्रतीक यहां स्थूल और प्रकट हैं। बाद में चेतनावादी काव्य में जिस प्रकार के प्रतीक सामने आये उनसे इन प्रतीकों का कोई संबंध स्थापित करना उचित नहीं होगा। युगवाणी से प्रतीकात्मकता का एक और उदाहरण देकर हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे :

निर्मित करो मांस का जीवन
जीवन मांस करो निर्माण ।

यहां 'मांस' स्थूल, दैनन्दिन बाह्य जीवन का प्रतीक बनकर आया है।

इस संक्षिप्त चर्चा का सिंहावलोकन करते हुए हम पंत के प्रगतिवादी शिल्प की कुछ सामान्य विशिष्टताओं को आकलित कर सकते हैं। पहली बात तो यह सामने आती है कि यह काव्य प्रधानतः बिम्बात्मक शैली का काव्य है। बिम्बात्मकता से हमारा अभिप्राय केवल बिम्बों से ही नहीं वरन् कथन-शैली की मूलगत सूक्ष्म बिंबकता से भी है। सीधी कथन-शैली या सपाटबयानी की भाषा इस काल में भी पंत विकसित नहीं कर सके। दूसरे, इन कृतियों में शिल्प का आंतरिक गठन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है, वह यथार्थ-बोध का वाहन बनकर आया है। तीसरे, भाषिक प्रयोगों में राग, शब्द-संगीत आदि की अपेक्षा शक्ति (फोर्स) पर अधिक ध्यान रखा गया है। चौथे, अपेक्षाकृत ठोस होने के बावजूद भाषा में आभिजात्य का गुण पूर्ववत् वर्तमान है। अंतिम बात, जिस प्रकार छायावादी शिल्प को हमने मूलतः पंत के कविव्यक्तित्व की उपज बताया था उसी प्रकार अब हम उनके प्रगतिवादी शिल्प को भी मूलतः उनके कवि-व्यक्तित्व की उपज बताना चाहेंगे, बाह्य प्रभावों की नहीं।

अंत में यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इस विवेचन में हमने सम्बद्ध संग्रहों की उन्हीं कविताओं को लिया है जिनमें छायावादी शिल्प से एक स्पष्ट अलगाव दिखाई दिया है। इन संग्रहों में ऐसी बहुत-सी कविताएं हैं जो शिल्प के स्तर पर इस अलगाव को उतना स्पष्ट प्रदर्शित नहीं करतीं या कभी-कभी बिल्कुल भी नहीं करतीं। इस प्रकार की कविताओं की संख्या काफी बड़ी है युगांत की मंजरित छाया में वह विजन चांदनी की घाटी शुक्र तितली आदि कविताओं का शिल्प स्पष्टतः

छायावादी है। युगवाणी की कुसुम के प्रति आवेश इत्यादि कविताओं का शिल्प गुंजन की याद दिलाता है। ग्राम्या की 'खिड़की से', 'संस्कृति का प्रश्न' आदि अनेक कविताएं आदर्शवादी ढंग की कविताएं हैं। वास्तव में पंत में आदर्शवाद सदैव प्रबल रहा है। उनके सबसे अधिक यथार्थवादी संग्रह 'ग्राम्या' में भी यथार्थवादी शैली के साथ-साथ आदर्शवादी शैली दिखाई दे जाती है। ग्राम्या की कुछ कविताओं का शिल्प तो पंत के नवीनतम संग्रहों की कुछ कविताओं से आश्चर्यजनक ढंग से मेल खाता है। इस प्रकार की एक कविता 'सांस्कृतिक हृदय' का उल्लेख यहां किया जा सकता है। उन्हें हमने विवेचन का विषय नहीं बनाया है।

पंत के चेतनावादी काव्य का शिल्प

पीछे हम देख चुके हैं कि ग्राम्या के बाद पंत पुनः अपनी प्रिय सांस्कृतिक मनोभूमि पर लौट आते हैं, परंतु इस बार उनकी आध्यात्मिक-सांस्कृतिक दृष्टि छायावादी काल से बहुत भिन्न है। अपने पुष्ट रूप में इस दृष्टि के अंतर्गत मानव-जीवन-मन के उच्च एवं समदिक दोनों स्तरों की संस्कृत, संतुलित, व्यापक सामाजिकता तथा नव मानवता के तत्त्व वर्तमान हैं, परंतु इतनी पूर्ण जीवन-दृष्टि सहसा नहीं आई है। स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि से लेकर लोकायतन तक इसके विकास का एक सूक्ष्म क्रम निर्धारित किया जा सकता है। प्रारंभ में पंत ग्राम्या आदि की बाह्य-जीवनोन्मुख दृष्टि के स्थान पर आंतर-जीवनोन्मुख दृष्टि की स्थापना में प्रवृत्त दिखाई देते हैं। अपने नवीन आभ्यंतर सत्य को वे नवचेतना या अंतश्चेतना का नाम देते हैं। धीरे-धीरे पंत इस नवचेतना का दायरा कुछ बढाते जाते हैं और अंततः वह सर्वदिक् सामंजस्य का समानार्थी बनकर आती है।

पंत की नवीन चेतनावादी काव्य-वस्तु को संक्षेप में पुनः निर्दिष्ट कर देने से हमारा अभिप्राय इस बात की ओर ध्यान दिलाने का है कि किस प्रकार पंत का नवीन शिल्प इस काव्य-वस्तु की अनिवार्य मांगों से उद्भूत हुआ। यह सहज ही देखा जा सकता है कि यह काव्य-वस्तु तत्त्वतः अरूप है। पर अपनी जीवनोन्मुखता, वास्तुनोन्मुखता और मानवतावाद के कारण पंत इसके अरूपात्मक स्वरूप से बिल्कुल संतुष्ट नहीं हैं। वे इसका रूपात्मक प्रतिफलन जीवन-जगत् में देखना चाहते हैं। अरूप को रूपात्मकता प्रदान करने की पंत की यह वासना उनके चेतनावादी शिल्प में कई भूमियों पर सक्रिय है। कभी वे उसे प्रतीकों के माध्यम से दृष्टिगोचर करते दिखाई देते हैं, कभी सूक्ष्म बिंबों के माध्यम से और कभी सीधी कथन-शैली या प्रतिपादन शैली के माध्यम से। अंत में 'लोकायतन' में रूपात्मकता की छटपटाहट एक विराट् रूपक के माध्यम से अपनी संतुष्टि प्राप्त करती है। पंत के चेतनावादी शिल्प के विभिन्न पहलुओं पर हम आगे क्रम से विचार करेंगे।

प्रतीक-योजना : पंत की चेतनावादी कृतियों का कोई भी पाठक उनमें प्रतीकों के व्यापक प्रयोग को लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता। ये प्रतीक अधिकांशतः कवि-सृष्ट और अंशतः अरविंद-दर्शन की शब्दावली या उसके प्रतीकों से प्रभावित हैं। अधिकांश में इनका प्रयोग अंतश्चेतना और उसके आनुषंगिक अन्य तत्त्वों से संबंधित है।

अतिचेतन या स्वयंप्रभ चेतनापुंज के लिए प्रयुक्त सर्वप्रथम प्रतीक 'स्वर्ण' का है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्णधूलि' तथा 'सौवर्ण' के शीर्षकों में आने के अतिरिक्त 'स्वर्ण' स्वर्णकिरण की 'स्वर्ण निर्झर', 'स्वर्णिम पराग', 'स्वर्णोदय', स्वर्णधूलि की 'स्वर्णधूलि', प्रीति निर्झर इत्यादि कविताओं से लेकर 'कला और बूढ़ा चांद' की अनेक कविताओं में किसी-न-किसी रूप में आया है। एक अन्य प्रतीक रजतशिखर (शुभ्रचित शक्ति का प्रतीक), जो एक रूपक का शीर्षक बनकर आया है, भी इसी तरह व्यापक स्तर पर प्रयुक्त हुआ है। चेतना की शुभ्रता की व्यंजना के लिए रजत तथा ऊर्ध्वता के लिए शिखर के प्रतीक अलग-अलग भी आये हैं। स्वर्णपर्वत का प्रतीक भी चेतना की ऊर्ध्वता तथा उज्ज्वल रूपान्तरितता का आभास देने के लिए आया है। एक अन्य प्रतीक अग्नि, चेतना के साक्षात्कार की दुःसाध्यता या नव सृजनात्मक चेतना के प्रभावों का आभास देने के लिए बार-बार प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'सरिता', सीता, शरद चेतना, चंद्रमुखी, वैदेही (उत्तरा), 'सोनजुही की बेल' (अतिमा) शुभ्र नीलिमा, चन्द्रकला, अंतःशिखर (कला और बूढ़ा चांद) आदि अनेक प्रतीक अन्तश्चेतना के किसी न किसी रूप को उद्घाटित करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। प्रायः चेतना के लिए नारी (अधिकतर प्रेयसी) का प्रतीक लाया गया है। वास्तव में पंत की इस काल की अनेक सुंदरतम प्रतीक-योजनाएं नारी-संबंधी हैं। चेतना से संबंधित अनेक अन्य सूक्ष्म वस्तुओं और व्यापारों की प्रतीकात्मक अभि-व्यक्ति भी अनेक प्रकार के प्रतीकों को जन्म देती है। उदाहरण के लिए निम्न उदाहरणों मे ऊर्ध्वचेतना के गहन अनुभव तथा उसके मानव-जीवन में अवरोहण आदि के व्यापारों से सबंधित अतिमा एवं कला और बूढ़ा चांद के कुछ प्रतीकों की योजना द्रष्टव्य है :

....

मन से उठ ऊपर,
पंख खोल शोभा क्षितिजों पर,
स्वर्ण नील आरोहों को तर,
गंध शुभ्र रज सांसों में भर,
गीतों के निःस्वर झरनों में
स्वप्न द्रवित सुरधनु वर्णों में
अन्तर शिखरों को नहलाती !

यहां शांति की
स्वच्छ सरसी में
प्रीति नहाती है,
सुनहला परिधान खिसका
मुक्ति में डूबी !

इन उदाहरणों में शोभा-क्षितिज, स्वर्णनील आरोह (चेतना के ऊर्द्ध आरोहण), गंधशुभ्र रज, (पार्थिवता का पवित्र होना), अन्तर शिखर (आंतरिक उच्चता), सरसी, (चैत्यरस) सुनहला परिधान- मुक्ति आदि प्रतीक चेतना के व्यापारों से संबंधित हैं।

कहीं-कहीं किसी संपूर्ण व्यापार का ही प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है :

धू-धू कर जलता जीर्ण जगत
लिपटा ज्वाला में जन अन्तर,
तम के पर्वत पर टूट रही
विद्युत् प्रपात-सी ज्योति प्रखर।

चेतना और उससे संबद्ध तत्त्वों के अलावा पंत ने अन्य प्रकार के तत्त्वों सत्य, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, संस्कार, मोह आदि के लिए भी प्रतीकों का प्रयोग किया है। नीचे इस प्रकार के कुछ उदाहरण अतिमा और कला और बूढ़ा चांद से दिये जाते हैं :

१. ये छूंछे केंचुल, जड़ केंचुल
दृष्टि भयावह, पर जीवन-मृत,—
कौन सत्य वह रीढ़ हीन जो
बाह्य तथ्य को रखता जीवित !

२. ओ चपले,
धृष्टे,
प्रेम से डर !
वह कभी न बुझने वाली
आग है।
तेरे आंचल में
उड़ेल दूं तो
देह मन प्राण
सब
भस्म हो जायेंगे।

३. मैं सूर्य की किरणें दूं
तुम चांद की।
मैं तुम्हें प्रकाश दूं
तुम प्यार !

पहले उदाहरण में 'केंचुल' को नव-चेतना के अवतरण के पूर्व के विगत युग-मूल्यों का प्रतीक बनाया गया है। दूसरे उदाहरण में चपला को देह-वासना का और तीसरे उदाहरण में सूर्य की किरणों को ज्ञान का तथा चन्द्रमा की किरणों को प्रेम-तत्त्व का प्रतीक बनाया गया है। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' से लेकर 'वाणी' और 'कला और बूढ़ा चांद' तक की रचनाओं में देखे जा सकते हैं। वास्तव में पंत के समस्त चेतनावादी काव्य में प्रतीकात्मकता इतने व्यापक स्तर पर प्रयुक्त हुई है कि सभी प्रतीकों का उल्लेख कर देना भी हमारे संक्षिप्त विवेचन में संभव नहीं है। हम केवल उन सामान्य दिशाओं का कुछ अनुमान करने का प्रयास कर रहे हैं जिनमें पंत की चेतनावादी प्रतीक-योजना सक्रिय है। हम कह चुके हैं कि इस काव्य के समस्त प्रतीक या तो चेतना और उसके तमाम अनुषंगों से संबंधित हैं या देह-बोध, स्थूल नैतिकता

आदि उन मूल्यों से जिनको पंत मध्ययुगीन मानते हैं और जिनके विनाश की कल्पना वे बार-बार करते हैं।

पीछे हम स्त्री-लावण्य के प्रतीकों का उल्लेख कर आये हैं। इस प्रकार के प्रतीक पंत के चेतनावादी काव्य में प्रभूत हैं और प्रायः विवादास्पद रहे हैं। हमारी दृष्टि में इन प्रतीकों का औचित्य विवाद का विषय नहीं होना चाहिए क्योंकि इनके माध्यम से पंत की नवीन राग-दृष्टि की उत्कट अभिव्यंजना हुई है। पंत स्वयं अपने काव्य में इस प्रकार के स्थलों को 'दीप्त लावण्य' के स्थल कहते हैं। ऐसे स्थल 'स्वर्णकिरण' और 'उत्तरा' में काफी हैं। इनके एकाध उदाहरण हम पीछे चेतनावादी काव्य की चर्चा करते हुए देख चुके हैं। अभी हम स्त्री-लावण्य के एक सीधे-सादे प्रतीक को लेंगे—कला और बूढ़ा चांद से :

किरणों की
सुनहली आभा में
लिपटा नील
तुम्हारा उत्तरांग
और
तरंगित सागर
मुक्ताफेन जड़ी
हरी रेशमी साड़ी पहने
तुम्हारी
कटि तक डूबी आधी देह है।

इस प्रतीक के संबंध में एक लक्ष्य करनेवाली बात यह है कि इसका गठन कुछ-कुछ बिंब के धरातल पर हुआ है। चेतनावादी काव्य में प्रतीकात्मकता के प्राधान्य के बावजूद बिम्बात्मकता प्रायः अनेक प्रतीक-योजनाओं में साथ लगी चली आई है। एक अन्य उदाहरण कला और बूढ़ा चांद से द्रष्टव्य है :

उत्तर दिशा को
ज्ञात शिखर की
अनंत चकाचौंध में
देह मान लेकर
अकेले न जाना,
भामिनी,
वहां कोई नहीं,
कोई नहीं है।

यहां उत्तर दिशा के ज्ञान शिखर, अनंत चकाचौंध, देह मान, आदि सभी को प्रतीकात्मक कहा जाएगा। परंतु 'देह मान लेकर', 'अकेले न जाना' तथा 'वहां कोई नहीं' के संयोग से जो भाव व्यक्त हुआ है उस र ही कहा जाएगा चेतना के क्षेत्र में देह-बोध का कोई स्थान नहीं है इस कथ्य को व्यक्त करने के लिए मानो इस प्रतीक के बीच से

एक ऐसी रतिकांक्षिणी का बिम्ब उभरता है जो किसी निर्जन प्रदेश में अपनी रति-कामना की तुष्टि चाह रही हो।

इस प्रकार 'सौवर्ण' की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतीक-योजना कुछ-कुछ उप-मान योजना के धरातल पर आ गई है :

> रक्त कमल, श्वेत कमल,
> खुले ज्योति पलक नवल !
> रक्त कमल जीवन स्मित,
> श्वेत कमल शांति जनित,
> खोल रहे रश्मि स्फुरित
> मानस में ज्वाला दल !
> नील कमल श्रद्धानत,
> स्वर्ण कमल भक्ति प्रणत,
> कर्दम में खिले सतत
> प्रीति मधुर अंतस्तल !

इस प्रकार की पंक्तियों से हम यह नहीं दिखाना चाहते कि बिम्बात्मकता पंत के इस प्रकार के काव्य में प्रतीकात्मकता के ऊपर स्थित है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इस काव्य में प्रतीकात्मकता और बिंबकता के बीच की दूरी बहुत कम है। इसका एक कारण तो यही है कि कवि-सृष्ट होने के कारण इन प्रतीकों में अनम्यता (रिजिडिटी) अधिक नहीं है। दूसरे, प्रतीक के उपादानों के प्रति पंत का आकर्षण बिम्बात्मक ढंग का है, जिस प्रकार बिंब में तत्तत् उपादानों का प्रकृत स्वरूप सुरक्षित रहता है, उस प्रकार पंत ने प्रतीक में भी प्रायः रखा है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों को देखें :

> मुझे ज्ञात है,
> तुम
> जो नवीन दिगंतों में
> स्वर्णिम प्रभात हो,
> तुम्हीं
> मेरे मानस में
> शुभ्र पद्म कली बन
> खिली हो।

इन पंक्तियों में नवीन दिगंत, स्वर्णिम प्रभात, पद्मकली सभी प्रतीकात्मक हैं। लेकिन कथ्य का सम्यक् प्रकाशन यहां इनके प्रकृत स्वरूप को लेकर निर्मित संपूर्ण बिंबकता से हुआ है। इन पंक्तियों की प्रतीकात्मकता को एक क्षण के लिए निकाल दिया जाय तो इनमें से प्रभात में कमलों के खिलने का एक बिंब उभरता है। इससे वह दुहरा भाव व्यक्त हुआ है कि व्यापक नव-चेतना के संस्पर्श से व्यक्ति-चेतना का स्फुरण होगा तथा यह कि दोनों तत्त्वतः एक ही हैं (क्योंकि खिलने वाली पद्मकली और खिलाने वाले प्रभात को एक ही कहा गया है)। इस सूक्ष्म बिम्बकता के अतिरिक्त मानस की स्थूल श्लेसमूलक

बिम्बकता और कली की सीधी बिम्बकता (व्यापक चेतना की तुलना में व्यक्ति-चेतना के ऊपरी लघुत्व के उपमान के रूप में) पर भी हमारा ध्यान जाता है। यदि हम इस सम्पूर्ण व्यापार का प्रतीकात्मक उपयोग भी स्वीकार कर लें तब भी इसकी अनिवार्य बिम्बकता से हम मुक्त नहीं हो सकते।

किन्हीं-किन्हीं कविताओं में बिंब और प्रतीक साफ-साफ मिलकर आते हैं। एक उदाहरण उत्तरा से :

> तुम चंद्रज्वाला सी सुलग रहीं
> जीवन लहरों में चिर चंचल,
> स्वर्गिक स्पर्शों में अंत:स्मित
> कंप-कंप उठता चल मानस जल।

इन पंक्तियों में प्रतीक और बिंब की मिलावट बहुत साफ है, फिर भी 'चंद्रज्वाल' के प्रतीक की कुछ व्याख्या आवश्यक है। चंद्रज्वाल सुनने में कुछ अद्‌भुत लगता है और इसलिए विलक्षण या वैचित्र्यमूलक प्रतीकात्मकता का उदाहरण लगता है। 'चंद्रज्वाल' के साथ ,जीवन की लहरें' (ज्वाला और जल) किसी के लिए कबीरदास की उलटबांसियों का आकर्षण भी उत्पन्न कर सकता है। पर ध्यान से देखें तो चंद्रज्वाल का प्रकृत आधार स्पष्ट हो जाएगा। पानी की लहरों में बिंबित चांदनी प्रतिबिंबों के उतार-चढ़ाव के कारण स्वभावत: कुछ अधिक प्रखर और चमकीली लगती है। ज्वाला के रूप में उसकी कल्पना इसी प्राकृतिक तथ्य से निकली है। इस बात को समझ लेने से उपर्युक्त पंक्तियों में अर्थ का जितना स्वाभाविक विस्तार आता है उतना ज्वाला और जल के कल्पित सान्निध्य की जादूगरी से नहीं आ सकता। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। और इसी के आधार पर हम यह कहना चाहते हैं कि पंत के काव्य-शिल्प में बिंबात्मकता जिस तरह केन्द्रीय है, प्रतीकात्मकता उस तरह नहीं है। वह विषय या काव्य-वस्तु की अनिवार्य आवश्यकताओं के कारण लाई गई है।

बिंब-विधान : प्रतीकों की चर्चा में हम सूक्ष्म बिंबकता का संधान अभी कर रहे थे। पंत के चेतनावादी काव्य में यह सूक्ष्म बिंबकता साधारणतया जिसे बिंब-विधान कहते है उससे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वैसे काव्यकला में बिंब का निश्चित स्थान सदैव रहता है—प्रधानत: कथन-शैली अथवा प्रतीक-शैली के कवियों का काव्य भी बिंबों के बिना चल ही नहीं सकता। अत: पंत के इस अपेक्षाकृत प्रतीकवादी काव्य में भी स्वतंत्र बिंब-रचना के अनेक स्थल आते हैं।

सीधा बिंब-विधान चूंकि चेतनावादी काव्य की मुख्य शैली नहीं है इसलिए जिस प्रकार यथार्थवादी काव्य में बिंब-विधान के नव-नवीन उपादानों की खोज की गई है उस प्रकार यहां नहीं। इस काव्य की खोज प्रतीकों की दिशा में विशेषत: दिखाई देती है, यह हम ऊपर देख चुके हैं। इस कारण स्वतंत्र (प्रतीक-योजना के साथ संयुक्त उपरिलिखित प्रकार की बिंबकता से भिन्न) बिंबों की सृष्टि के लिए प्राय: पुराने उपादानों का ही प्रयोग दिखाई देता है। दो बिंब 'स्वर्णधूलि' से उद्धृत हैं :

१. झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरती बूंदें तरुओं से छन के!
चम चम बिजली चमक रही रे उर में घन के,
थम थम दिन के तम में सपने जगते मन के।

२. धूमिल नभ के सामने अड़े
हाड़ मात्र तुम प्रेत से बड़े
मुझे डराते हिला हिला सर
बीस मूंड़ औ बांह नचाकर।

ये दोनों ही सुंदर बिंब-विधान के उदाहरण हैं। विशेषतः पहले उदाहरण की अंतिम पंक्ति तथा दूसरे उदाहरण की पहली तथा अंतिम पंक्तियों में सुंदर व्यंजकता है; परन्तु ये दोनों ही बिंब पिछली कविताओं की ही याद दिलाते हैं, अपनी नई पहचान स्थापित नहीं करते। इस प्रकार के और भी बहुत-से उदाहरण दिए जा सकते हैं।

कहीं-कहीं नवीन प्रकार की बिंब-योजना भी दिखाई दे जाती है; परंतु सामान्य रूप से, स्वतंत्र बिंब-योजना जितनी है उसके उपादान छायावादी और प्रगतिवादी काव्य से ही गृहीत हुए हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि अनेक प्रकार से पंत के चेतनावादी काव्य-काल की सम्वेदना छायावाद और प्रगतिवाद के काल से कई स्तरों पर जुड़ी हुई है। यह लक्ष्य करने की बात है कि जहां पंत चेतना और उससे संबंधित व्यापारों का अंकन नहीं कर रहे होते हैं वहां वे उसी ढंग की आदर्शवादी उक्तियां रखते हैं जैसी 'गुंजन', 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में प्रचुर हैं। इन उक्तियों का प्रतिपाद्य चाहे कुछ नवीन हो गया हो, पर स्वर लगभग वैसा ही है जैसा पीछे की ऐसी उक्तियों का है। इस संदर्भ में यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि चेतनावादी काव्य-शिल्प की प्रतिनिधि रचनाओं में इस प्रकार की सभी रचनाओं को ग्रहण करना आवश्यक नहीं है। चेतनावादी ढंग की रचनाएं वही समझी जानी चाहिए जिनमें नवचेतना या अन्तश्चेतना को काव्य-वस्तु बनाया गया है। इन रचनाओं में अधिकांश प्रतीकात्मक ढंग की रचनाएं हैं। जैसा कि हम कह आए हैं, इस प्रतीकात्मकता से जुड़ी एक सूक्ष्म प्रकार की बिंबात्मकता भी सर्वत्र व्याप्त है। चेतनावादी काव्य की बिंबात्मकता से इसी सूक्ष्म बिंबकता का ग्रहण होना चाहिए। जिस बिंब-विधान की चर्चा हमने प्रस्तुत उपशीर्षक के अन्तर्गत की है, वह इस काव्य में गौण ही समझा जाना चाहिए।

सीधी कथन-शैली : यथार्थवादी काव्य-शिल्प की चर्चा करते हुए हम इस बात का उल्लेख कर आए हैं कि पंत के समस्त गुंजनोत्तर साहित्य में वक्तव्यात्मकता एक निश्चित तत्त्व के रूप में आती है। चेतनावादी काव्य में भी सीधी कथन-शैली की कविताएं 'स्वर्ण-धूलि' से लेकर 'वाणी' तक व्याप्त हैं। अकेली कृति, जो इस प्रकार की कविताओं से लगभग मुक्त है, 'कला और बूढ़ा चांद' है। महाकाव्य कृति 'लोकायतन' में भी वक्तव्यात्मकता अनेक जगह अत्यंत स्पष्ट है।

हम स्पष्ट कर चुके हैं कि इस प्रकार की कविताओं को काव्य की, कम से कम श्रेष्ठ काव्य की, कोटि में रखना असंभव है। इनमें से कुछ अपनी वचन-भंगी के कारण

पाठ्य है पर अधिकांश कविताओं के रूप में नितांत दुष्पाठ्य है ऐसी एक कविता स्वर्णधूलि से द्रष्टव्य है :

जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि गरीयसी !

जिसे राम-लक्ष्मण औ सीता
बना गए पद धूलि पुनीता,
जहां कृष्ण ने गाई गीता
बजा अमर प्राणों की वंशी।
शांति निकेतन जहां तपोवन
ध्यानावस्थित हों ऋषि-मुनि गण
चिद् नभ में करते थे विचरण
जहां सत्य की किरणें बरसीं।

इन पंक्तियों को कविता मानने का कोई कारण नहीं है। इस प्रकार की पंक्तियां 'स्वर्णधूलि' की 'लोक सत्य', 'मनुष्यत्व', '१५ अगस्त १९४७', 'स्वर्णकिरण' की 'इन्द्रधनुष', 'पंडित जवाहरलाल नेहरू जी के प्रति', 'श्री अरविन्द दर्शन', 'उत्तरा' की 'उद्बोधन 'रंगमंगल', 'वाणी' की 'कवीन्द्र के प्रति', 'आत्मिका' इत्यादि अनेक कविताओं से उद्धृत की जा सकती हैं।

भाषा : चेतनावादी काव्य की भाषा में हम एक बार पुनः तरलता और सूक्ष्मता को नये सिरे से उभरता पाते हैं। प्रगतिवाद के काल में विषय के ठोसपन के कारण भाषा में भी जो एक ठोसपन दिखाई देता है वह यहां नई काव्यवस्तु के संस्पर्श से पिघलकर पुनः एक विलक्षण नूतन द्रवत्व में परिणत हो जाता है। इस प्रकार की भाषा विशेषत. 'अतिमा', 'उत्तरा' और 'कला और बूढ़ा चांद' में प्रयुक्त हुई है। महाकाव्य 'लोकायतन' की वस्तु चूंकि संवेदना और भाव की अपेक्षा विचार और नव-निर्माण से सम्बन्धित है, अतएव उसकी भाषा में पुनः एक ठोसपन दिखाई देता है।

भाषित आभिजात्य पंत के चेतनावादी काव्य में भी उसी तरह कायम है, बल्कि कुछ बढ़े हुए रूप में। संस्कृतनिष्ठ, कोमल, सांस्कृतिक पदावली का व्यवहार सभी संग्रहों में हुआ है। परन्तु हमारे मत में इस भाषिक आभिजात्य का जो स्वरूप 'कला और बूढ़ा चांद' में प्रकट हुआ है वही इसका उत्कृष्ट स्वरूप है। इसके साथ कवि के अभिजात, 'एस्थीट' मन का योग है। परन्तु जो भाषिक आभिजात्य पंत के महाकाव्य 'लोकायतन' में प्रकट हुआ है वह उनकी संवेदना का योग न पा सकने के कारण उसका कुछ निचला स्वरूप ही है।

लोकायतन का महाकाव्यत्व : पाश्चात्य तथा भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य के अनेक लक्षण निरूपित किये हैं। उनमें से सभी आधुनिक महाकाव्यों पर लागू नहीं हो सकते। परन्तु इन समस्त लक्षणों के अन्तरवर्ती दो सिद्धान्तों का महाकाव्य में अवश्य निर्वाह होना चाहिए : एक तो यह कि महाकाव्य की काव्यवस्तु महत्त्वपूर्ण और विशद होनी चाहिए तथा दूसरा यह कि उसकी शैली उदात्त होनी चाहिए। आगे इन दोनों आधारों पर हम 'लोकायतन' के महाकाव्यत्व की चर्चा करेंगे।

'लोकायतन' की विषय-वस्तु निश्चित रूप से व्यापक महत्त्व की है। लोकायतन मूलतः एक प्रत्यय (आइडिया) का काव्य है। कवि प्रतीकात्मक पद्धति पर इतिहास, नीति और संस्कृति द्वारा स्थापित गत युग के मूल्यों की व्याख्या करता हुआ संस्कृति नामक शाश्वत तत्त्व के हृदय में प्रवेश करता है। इस नवीन संधान में वह उस शाश्वत राग-तत्त्व को प्राप्त करता है जो भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है और जो सदियों की धुध में इतना खो चुका है कि हम स्वयं ही इसे नहीं पहचानते। इस नवीन राग-संस्कृति की आयोजना वह अपने काव्य में सुन्दरपुर नामक एक ग्राम के माध्यम से करता है। इस संस्कृति के प्रभाव में क्रमशः जाति, धर्म, संस्कार, रीति-नीति तथा अर्थ और समाजगत अनेक वैषम्य तिरोहित हो जाते हैं और एक व्यापक रागात्मक सामंजस्य उद्घाटित होता है। प्रसाद ने अपनी 'कामायनी' में केवल मनोभूमि का सामंजस्य अंकित किया था, पंत ने अपने महाकाव्य में बाह्य और आंतरिक, आत्मिक और भौतिक जीवन का सामंजस्य घटित किया है। अपने उद्दाम, आशावादी आदर्शवाद और विषय की विराट् व्यापकता में 'लोकायतन' निश्चित रूप से अपनी सानी नहीं रखता। कम-से-कम, इस दृष्टि से, हम उसे महाकाव्य मानने को बाध्य हैं।

लेकिन शैली के औदात्य का प्रश्न कुछ टेढ़ा है। ऊपर से देखने पर तो 'लोकायतन' की शैली बड़ी भव्य लगती है। प्रांजलता और आभिजात्य में 'लोकायतन' की भाषा पंत के अन्य सभी काव्यग्रंथों से आगे बढ़ी लगती है। परंतु भाषा का आंतरिक सौंदर्य लोकायतन में नहीं है। पंत भव्यता के कवि नहीं हैं, इसलिए उनकी काव्यभाषा में यह भव्यता सायास उत्पन्न की हुई है, कभी-कभी दुर्बोधता और क्लिष्टता की सीमा तक जाकर भी। 'लोकायतन' का भाषिक आभिजात्य नकली है। लोकायतन में पंत की संवेदना का योग नहीं है इसलिए विचारों को वहन करती हुई भाषा अकसर खाली बजती लगती है :

> निश्चेतन तम में जगता जीवन ईश्वर
> घन कृष्ण नील तन, मदिरारुण अभ्यंतर !
> वह तम का पर्वत, स्फुरित तड़ित् रुचि मण्डित,
> अंधियाली के स्वप्निल प्रकाश-सा चित्रित !

जहां कहीं पंत अपने काव्य-ग्रंथ की महाकाव्यता के प्रति उतने सचेत नहीं हैं वहां मनोरम उक्तियां रची जा सकी हैं। 'लोकायतन' से इस प्रकार की अनेक उक्तियां उद्धृत की जा सकती हैं, पर इतने बड़े महाग्रंथ में उनकी संख्या उत्साहवर्द्धक कतई नहीं है। सामान्य रूप से लोकायतन को बहुत अच्छी कविता का उदाहरण नहीं कहा जाएगा। इसलिए हमारा मत है कि 'लोकायतन' में काव्यत्व बहुत सीमित है। आकार में कामायनी की तिगुनी होने के बावजूद वह कामायनी की अपेक्षा बहुत सामान्य कोटि की काव्य-रचना है।

जैसा कि हम पीछे भी कई बार कह आए हैं, 'लोकायतन' पर काव्य के उपकरणों के माध्यम से विचार करना उसके साथ अन्याय है। वास्तव में 'लोकायतन' का वास्तविक महत्त्व उसके विराट् जीवन-दर्शन में है। इतने विशाल फलक को ग्रहण करने का साहस सभी को नहीं हो सकता। इस महाकाव्य में पंत की जीवनव्यापी साधना एक ऊंचे धरा-

तल पर उभरकर समग्र युग के बिखराव को समेटती और सजोती हुई अपनी सिद्धि को महाकाल के परिप्रक्ष्य मे लाकर खड़ा कर देती है। पत की वर्तमान को पार कर शाश्वत को देखने वाली यह दृष्टि, महाकाव्यात्मक है। अपने कमजोर काव्यत्व के बावजूद, इस-लिए 'लोकायतन' एक महाकाव्य है। काव्य-कला की दृष्टि से उसका मूल्यांकन उसका सही मूल्यांकन नहीं है। उसी प्रकार उसे श्रेष्ठ काव्य-कृति के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह भी ईमानदार आलोचना नहीं है।

अंत में हम यह कहे बिना भी नहीं रह सकते कि पंत के चेतनावादी काव्य-शिल्प का उत्कर्ष 'लोकायतन' में नहीं, 'कला और बूढ़ा चांद' में व्यक्त हुआ है। 'लोकायतन' पंत के काव्य-शिल्प के स्वाभाविक विकास से कुछ कटी-कटी जीवन-दर्शन-प्रधान काव्य-सृष्टि है। इसीलिए 'कला और बूढ़ा चांद' की अद्‌भुत, पारदर्शी भाषा के बाद उसकी ठडी, बेजान भाषा को देखकर आश्चर्य होता है।

पंत के परिवर्ती काव्य का शिल्प

'लोकायतन' के बाद की कृतियां जिन्हें पंत विकासवादी काव्य कहना चाहते हैं, इनमे से कई का सन्दर्भ संवेदना के स्तर वाले अध्याय में आया है। यह संकेत किया जा चुका है कि संवेदना और कथ्य की भूमि पर ये रचनाएं चेतनावादी काव्य का ही फैलाव सूचित करती हैं, कोई नई भूमि उपलब्ध नहीं करतीं। स्वभावतः ही इनमें शिल्प के स्तर पर कोई नवीन दिशा आविष्कृत नहीं हुई है। इसलिए इन संग्रहों के शिल्प के विषय में एकाध बातों का उल्लेख करेंगे।

पहली बात जो इन संग्रहों के शिल्प के विषय में ध्यातव्य है वह यह कि इनके शिल्प में चेतनावादी काव्य के प्रतीक-प्रधान शिल्प का ही अनुसरण करने का प्रयास काफी दूर तक दिखाई देता है। पर प्रतीकात्मकता में न कोई नयापन है न विशिष्टता। 'पौ फटने से पहले' की तो सारी की सारी कविताएं ही अन्तश्चेतना को संबोधित हैं, अतः उससे कुछ नये प्रकार की प्रतीक-योजना की अपेक्षा हो सकती थी, परन्तु उसमे भी अधिकांशतः पुराने प्रतीक ही दुहराए गये हैं। इस कोटि के संग्रह 'किरण-वीणा' को चेतनावादी काल के अंतिम संग्रह 'कला और बूढ़ा चांद' के साथ रखकर देखें तो इसकी प्रेरणाशून्यता पर आश्चर्य होता है। जहां 'कला और बूढ़ा चांद' गहन, संगुम्फित प्रतीकात्मकता की कविताओं का उत्कृष्ट संग्रह सिद्ध होता है वहां 'किरण-वीणा' पिष्टपेषण का उबाऊ काव्य-ग्रंथ। प्रतीक-योजना को लेकर इसी प्रकार की प्रेरणाशून्यता लगातार 'समाधिता' तक पाई जाती है। 'समाधिता' में पंत पीछे के प्रतीकों की सूक्ष्मता को छोड़-कर अधिक ठोस प्रतीकों पर उतर आये हैं। संग्रह की अधिकांश कविताओं में ईश्वर, आत्मा आदि चिरपरिचित प्रत्ययों का प्रयोग पंत में एक हलके परिवर्तन की सूचना अवश्य देता है। भावभूमि तो 'समाधिता' की भी 'पौ फटने से पहले' या 'पतझर : एक भावक्रांति' इत्यादि अन्य विकासवादी संग्रहों से बहुत अलग नहीं है, पर बात को अधिक ठोस प्रतीकों के माध्यम से कहने की प्रवृत्ति अवश्य कुछ भिन्न लगती है। 'समाधिता' से प्रतीकात्मकता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

देव जन्म लेना जब भू पर
उसे घर लेते मिलकर
विद्वेष दानव,—
आत्मसात् कर असुरों को
नव अभिव्यक्ति पाता
नव युग का मानव।

यहां सत् और असत् के प्रतीकों के रूप में देव और दानव लाये गये हैं। ये अत्यंत सामान्य, परिचित और परम्परागत प्रतीक हैं। पिछले कवि-सृष्ट प्रतीकों से इनकी भिन्नता स्वीकार करनी पड़ेगी।

जिस प्रकार प्रतीकात्मकता में इसी प्रकार बिम्बात्मकता में भी कोई 'विकास-बादी' काव्य-संग्रह किसी शिल्पगत विकास का सूचक नहीं है। बिम्बों की गति कुछ बंधी-बधी-सी है। प्रायः बिम्ब-विधान के पुराने उपकरणों का ही प्रयोग है। बिम्ब-विधान कहीं-कहीं बहुत कमजोर भी है। उदाहरण के लिए 'समाधिता' की निम्न पंक्तियों को देखें :

भू की चौड़ी छाती पर
मैं लोट-पोट करता हूं
ईश्वर से चिर अविच्छिन्न मैं
नया चरण धरता हूं।

पहली दो पंक्तियों में एक अत्यन्त मनोरम बिम्ब आया है, पर बाद की दो पंक्तियां बिल्कुल रस-भंग की पंक्तियां हैं। 'भू की चौड़ी छाती पर लोट-पोट करने' से जो भाव व्यक्त होता है, बाद की वक्तव्यात्मक पंक्तियों से वह भाव नष्ट होता है। कुल मिलाकर बिम्बात्मक प्रभाव क्षीण हो जाता है। ऐसे उदाहरण इन सभी संग्रहों में देखे जा सकते हैं।

वास्तव में लोकायतन के बाद पंत जीवनद्रष्टा की अपनी भूमिका को कवि-भूमिका से अधिक महत्त्व देने लगते हैं। इस प्रकार के फालतू दायित्व-बोध से 'कला और बूढ़ा चांद' के बाद का उनका समस्त काव्य ग्रस्त है। कभी-कभी तो यह दायित्व-बोध काव्यात्मक औचित्य की समस्त सीमाएं लांघकर नितांत असह्य प्रकार की वक्तव्या-त्मकता को जन्म देता है।

वास्तव में जहां प्रतीकात्मकता और बिंबकता का विकासवादी काव्य में ह्रास हुआ वहीं कथन-शैली और वक्तव्यात्मकता का प्रचुर प्राधान्य भी सामने आया। वक्तव्य-शैली को हम एक प्रकार से इस काव्य की प्रतिनिधि शैली कह सकते हैं। इस शैली के कारण ही, अपने कवि की कारयित्री प्रतिभा के प्रति समस्त आश्वस्ति के बाव-जूद, हमें कहना पड़ता है कि 'किरण-वीणा' से 'समाधिता' तक का बहुत-सा काव्य उसी श्रेणी का है जिसे हम पीछे अति सामान्य श्रेणी का काव्य कह आये हैं।

पंत के शिल्प का यह संक्षिप्त विवेचन हम अब समाप्त करते हैं। इस विवेचन से जो अनेक निष्कर्ष निकलते हैं उनमें से दो को हम पंत के काव्य-शिल्प में केंद्रीय मानते हैं। पहली बात तो यह कि पंत मूलतः बिंबवादी रुचि के कलाकार हैं। उनमें प्रसाद की

प्रतीकात्मक अभिरुचि अथवा प्रगतिवादी निराला की सपाटबयानी का 'फोर्स' अपेक्षाकृत विरल है। जिस प्रकार अपनी संवेदना में यथार्थ और अध्यात्म के तत्त्वों के बावजूद पंत मूलत: न तो यथार्थवादी हैं, न अध्यात्मवादी या रहस्यवादी, प्रत्युत वस्तून्मुख आदर्श-वादी हैं, उसी प्रकार अपने शिल्प में वे तमाम प्रकार की शैलियों के व्यवहार के बावजूद अंतत: बिंब या चित्र-केंद्रित कला-शिल्प के कवि हैं।

दूसरा निष्कर्ष जिसे हम महत्त्वपूर्ण समझते हैं, वह भाषा का सार्वत्रिक आभि-जात्य है। पंत की भाषिक संवेदना प्रारंभ से ही एक विशेष प्रकार के काव्य-आभिजात्य से संचालित रही है। यहां हम अभिजात शब्द का प्रयोग 'क्लेसिकल' के अर्थ में नहीं कर रहे हैं, न उसी अर्थ में जिस अर्थ में यह शब्द हाल में अपशब्द का दर्जा पा चुका है। आभिजात्य शब्द से हम भाषिक सामान्यता का विरोधी अभिप्राय ग्रहण कर रहे हैं। भाषिक सामान्यता, जैसा कि हम कह चुके हैं, छायावादियों के बीच निराला ही आविष्कृत कर सके थे। कारण यह है कि जहां निराला की भाषिक संरचना निरंतर दुहरे-तिहरे स्तरों पर विकसित होती रही, वहां पंत की भाषा का विकास बहुत इकहरा है। यह कहकर हम निराला को पंत से बड़ा कलाकार नहीं सिद्ध कर रहे हैं, प्रत्युत इन दोनों कवियों की भाषिक संरचना के मूलभूत गुणात्मक अंतर को ही प्रतिपादित करने का प्रयास कर रहे हैं।

अंत में यह दुहरा देना भी आवश्यक है कि अंग्रेजी की प्रसिद्ध उक्ति (स्टाइल इज़ द मैन हिमसेल्फ) के अनुरूप, पंत का काव्य-शिल्प बहुत कुछ उनके कोमल, शालीन, अभिजात और सौंदर्य-संवेगी (ईसथीट) व्यक्तित्व का ही प्रतिफलन है। महत्त्व की दृष्टि से, हिंदी के आधुनिक शिल्प के शीर्षस्थ प्रणेताओं के बीच तो पंत का स्थान है ही, उसके आधुनिकतम उन्नायकों के बीच भी उनका प्रमुख स्थान है।

भौ
का
है।
के
त:
ग
द

पंत का गद्य

पंत का सृजनात्मक गद्य बहुत थोड़ा है। उन्होंने कुल तीन सृजनात्मक गद्य रचनायें दी हैं। इनमें से एक उपन्यास है (हार), एक कहानी-संग्रह (पांच कहानियां) तथा एक नाटक (ज्योत्स्ना)। इसके अतिरिक्त उनकी सैद्धांतिक-व्यावहारिक आलोचना से संबंधित दो कृतियां 'शिल्प और दर्शन' तथा 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' प्रकाशित हुई हैं। एन अन्य गद्य कृति—'साठ वर्ष : एक रेखांकन' आत्मकथात्मक है। इस तरह पंत की कुल छह गद्य-कृतियां प्रकाशित हुई हैं। इनमें से ज्योत्स्ना पर तो हम छायावाद के संदर्भ में विचार कर चुके हैं। शेष पांच कृतियों का परिचय हम इस परिशिष्ट में प्राप्त करेंगे।

औपन्यासिक कृति 'हार'

सन् '१६-'१७ के जाड़े की छुट्टियों में 'हार' लिखा गया था। वैसे यह प्रकाशित बहुत बाद में पंत की षष्टिपूर्ति के अवसर पर सन् '६० में हुआ।

उपन्यास का कथानक सीधा है। कथा दो मुख्य पात्रों—निमेष और भविष्य—तथा तीन मुख्य पात्रियों—विजया, सुफल और आशा—के इर्द-गिर्द घूमती है। सुफला का पति निमेष कथाक्रम में विजया पर आसक्त हो जाता है। उधर आशा, जो पहले भविष्य के प्रति उन्मुख थी, बाद में निमेष के प्रति आसक्त हो जाती है। इस तरह कथा-क्रम में उलझाव पैदा होता है। आगे क्रमशः इस उलझाव को सुलझाया जाता है। भविष्य आशा की मनोदशा जानकर अत्यंत दुखी होता है। इसी दशा में वह एक पुजारी की शरण में पहुंचता है। भविष्य और पुजारी के वार्तालाप के रूप में आसक्ति और प्रेम, क्षणिक सुख और शाश्वत सुख, विश्व-प्रेम आदि की मीमांसा की गई है। फिर सुफला के दुःख और आक्रोश का चित्रण है। अंत में निमेष विजया से क्षमा-प्रार्थना कर लेता है और आशा भविष्य से क्षमा-याचना कर उसके साथ ही विश्व-प्रेम का व्रत ले लेती है।

औपन्यासिक कृति के रूप में 'हार' का कुछ भी महत्त्व नहीं है। पर पंत के काव्य-व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से 'हार' का बड़ा महत्त्व है। इस प्रारंभिक कृति में

ही पंत की परवर्ती कृतियों में प्रकट होने वाली आदर्शवादी प्रवृत्तियां विश्व प्रेम सूक्ष्म नैतिक दृष्टि आदि दिखाई पड़ती हैं। एक बौद्धिक स्वर भी कभी-कभी झलक जाता है, उदाहरणार्थ प्रेम की यह व्याख्या द्रष्टव्य है—'वास्तविक प्रेम एक अलौकिक पदार्थ है। उसे पाने के लिए निष्काम मन चाहिए, विमल बुद्धि चाहिए, इंद्रिय-निग्रह चाहिए।' इस प्रकार के आदर्शवादी विचारों का बहुत-सा अंश निश्चित रूप से कुछ भाई से सुनकर और कुछ स्वयं पढ़कर जानी गई लोकमान्य की गीता और भर्तृहरि के शतक आदि पुस्तकों से आया होगा, पर इसमें कवि की स्वाभाविक आदर्शवादिता का पता तो चलता ही है।

उपन्यास की शैली बालोचित ही है। संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुर है। कहीं-कहीं श्लेष आदि से चमत्कार-सृजन का भी प्रयास है। पंत के अनुसार स्वयं 'हार' ही श्लेष है। शृंगार के—विशेषतः वियोग के—वर्णन काव्यात्मक हो गए हैं। पंत के अनुसार भाई से सुनी हुई रीतिकालीन कवियों की शृंगार-भावना, शकुंतला की प्रेम-कथा तथा मेघदूत की वियोग-कथा का काफी प्रभाव था। उपन्यास के शृंगार-वर्णन संभवतः इन्हीं प्रभावों की देन हैं।

आशा, भविष्य आदि में रूपाकात्मकता का आरोप करके इस उपन्यास में 'ज्योत्स्ना' का सूक्ष्म बीज ढूंढ़ा जा सकता है, यद्यपि इस बात पर अधिक जोर देना ठीक नहीं होगा। इसके अतिरिक्त आदर्शवादिता तथा भावनात्मकता की जो प्रवृत्तियां पंत के काव्य का मुख्य वैशिष्ट्य हैं वे भी इस प्रारंभिक कृति में स्फुट हैं। पंत की परिचित शैली को पहचानना इस कृति में भी कठिन नहीं है, यद्यपि वह अभी अत्यंत प्रारंभिक ही प्रतीत होती है।

औपन्यासिक कृति के रूप में 'हार' का जो भी मूल्यांकन किया जाय, उसके ऐतिहासिक मूल्य से इनकार नहीं किया जा सकता। पंत के विकसित काव्य-व्यक्तित्व का बीज 'हार' में ढूंढ़ा जा सकता है।

पांच कहानियां

उपन्यास के क्षेत्र में पंत के एकमात्र प्रयास का स्वतंत्र साहित्यिक मूल्य बहुत न्यून है, पर कहानियों के क्षेत्र में यही बात नहीं कही जा सकती। कहानियों में पंत अधिक सक्षम कथाकार के रूप में उभरे हैं। इसका एक स्पष्ट कारण तो यही है कि 'हार' की अपेक्षाकृत ये प्रौढ़ रचनायें हैं। ये सभी सन् '२५ के आस-पास लिखी गई थीं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस समय जब ये कहानियां लिखी जा रही थीं, पंत धीरे-धीरे मार्क्सवाद के प्रभावान्तर्गत जन-जीवन के यथार्थ की ओर मुड़ चुके थे। इसलिए जिस बदलाव की सूचना हमें युगांत में मिलती है, वह पांच कहानियां में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यहां पंत अधिक यथार्थ-सापेक्ष दिखाई पड़ते हैं।

पहली कहानी 'पानवाला' कहानी से अधिक शब्दचित्र है। यह एक ऐसे व्यक्ति पीताम्बर की कहानी है जो गरीबी में पैदा होकर भी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, रुचियों आदि में धनी परिवारों के लड़कों की तरह ही है। जवानी में उसने अपने स्वभाव, कौशल और व्यक्तित्व के बल पर धनी लड़कों का साथ किया तथा उनके साथ-साथ

उन्हीं की तरह जीवन बिताया। बाद में जब उसके धनी साथी उससे छूट गये और लतें और आदतें उसके साथ छोड़ गये तब वह कहीं का नहीं रह गया। अनेक प्रकार की ठोकरें खाकर वह पानवाला बन गया। इस प्रकार की यथार्थवादी शैली में कहानी चलती है। कहीं-कहीं तो लगभग चौंकानेवाले ढंग से लेखक के वर्णनों में 'सिनिसिज्म' की एक हल्की-सी झलक भी आ जाती है जो वर्णनों के यथार्थवादी स्वर को अधिक प्रखर और कुछ कटु बना जाती है। इस कहानी में चिंतन का स्वर सामाजिक हो गया है। पीताम्बर की दुरवस्था पर विचार करते हुए लेखक कहता है, "पर इस आत्म-संतोष के लिए धनी युवकों के पास जाना पीताम्बर की अनुभव-शून्यता एवं भ्रम था।...यह काम किसी एक व्यक्ति के करने का था भी नहीं। इसका संचालन या संपादक हो सकता है हमारा सुव्यवस्थित, सामाजिक या सामूहिक व्यक्तित्व।"

दूसरी कहानी 'उस बार' सतीश, सुबोध, नलिन, गिरीन्द्र, विजया, सरला आदि अनेक कथापात्रों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। प्रेम के विविध पक्षों को उद्घाटित करना ही लेखक का अभीष्ट जान पड़ता है। प्रस्तुत कहानी अपनी केंद्रीय धुरी से बार-बार विच्छिन्न हो जाती है। सुबोध के मसूरी-प्रवास के बाद ही घटनाओं का क्रम शुरू हो जाता है। प्रेम की पहली घटना सतीश और विजया के बीच घटित होती है। सतीश एक हंसमुख और 'स्मार्ट'-सा लड़का है। प्रेम का मतलब उसके लिए बहुत सीधा-सादा है। इसके ठीक विपरीत है सुबोध, जो अपनी विचारशील प्रवृत्ति के कारण प्रेम को अपेक्षाकृत ज्यादा गंभीरता से ग्रहण करता है। लेखक सुबोध को लेकर कुछ ज्यादा ही आग्रहशील है। दोनों के प्रेम के तत्त्वगत अंतर को स्पष्ट करने में पंत कहानीकार की नहीं, विचारक की मुद्रा अपना लेते हैं। किसी भी सक्षम एवं समर्थ कहानीकार की यह सबसे बड़ी कमजोरी है। लेखक का प्रतिपाद्य है कि प्रेम और कर्तव्य, श्रेय और प्रेय की समस्यायें भी मानव-जीवन की अन्य समस्याओं की तरह कभी न सुलझनेवाली समस्याओं में से हैं। मनुष्य की जिन्दगी न तो श्रेय और प्रेय के ज्ञान से निर्धारित होती है और न ही उसके उलझनपूर्ण सामंजस्य से, अपितु परिवेशजन्य यथार्थ ही नियति का निर्धारण करता है। पंत कथ्य के इस संगठन का निर्वाह नहीं कर सके हैं। उनका कवित्वपूर्ण भावुक, विचारक व्यक्तित्व बार-बार आड़े आ जाता है जिससे कथा की अंदरूनी बुनावट ही नहीं टूटती बल्कि उसका स्वाभाविक प्रवाह भी अवरुद्ध हो जाता है। कथा के किसी प्रसंग विशेष को अतिरिक्त रूप से चित्रित करने की मनोवृत्ति लेखक की कैशोर्यजनित भावुकता का ही साक्ष्य प्रस्तुत करता है। कहानी की संरचना में एक विशेष प्रकार की 'आत्मीय तटस्थता' अपेक्षित होती है, पंत में इसका नितांत अभाव है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, "विजया सावले रंग की, गदबदे सुडौल अंगों की रूपसी से अधिक मोहनी थी। उसकी उभरी छाती, पीठ, कटिप्रदेश सतीश के आनंद के दो संग्रहालय थे। उसके कोमल उरोज-स्तवकों पर गाल रखकर प्रेम की विस्मृति का सुख लूटने के स्वप्न सतीश प्रायः देखा करता था।" उपर्युक्त उदाहरण में रस लेकर वर्णन करने की मनोवृत्ति का स्पष्ट ही दर्शन होता है जो कहानी-कला की दृष्टि से एक दोष है। इस कहानी में निरर्थक उक्तियों को दार्शनिकता का जामा पहनाकर उपस्थित किया गया है। रचना-

तत्र की दृष्टि से यह कहानी एक असफल कृति है। कहानी के लघु परिवेश में बहुत सारी घटनाओं को जोड़ने का प्रयास किया गया है, संभवतः इसीलिए कहानी का 'टैक्सचर' शिथिल पड़ गया है। कहानी की रचनात्मक वलगा बार-बार लेखक के हाथों से छूट जाती है, उसकी 'ग्रिप' कमजोर पड़ जाती है। कहानी का अंत बहुत आकस्मिक और अस्वाभाविक है। ऐसा लगता है जैसे लेखक एक सटीक अंत की तलाश में ही लिखना बंद कर देता है और अंत के नाम पर एक खानापूरी कर देता है।

संग्रह की तीसरी कहानी है 'दम्पति'। निश्चय ही इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। पार्वती एक ग्राम-बाला है, उसकी शादी छोटी वय में ही हो जाती है। पार्वती के पति उससे अत्यंत स्नेह रखते हैं। उनके आकर्षण एवं विनोद की एकमात्र केंद्र पार्वती ही थी। पार्वती पति के इस व्यवहार से कृतकृत्य थी। पति के लिए पार्वती इतनी महत्त्वपूर्ण इसलिए भी हो उठी थी क्योंकि उन्हें स्त्रीत्व का स्पर्श ही काफी था, सौंदर्य की कोई खास परिकल्पना उनके दिमाग में नहीं थी। अल्पवयसा पार्वती के लिए भी 'पति' की कोई विशेष कल्पना नहीं थी। विवाह को लेकर उसके मन में एक अनिर्वचनीय भाव और पति-संसर्ग की एक लालसा हीन, अज्ञात, गुप्त सुख की भावना ही वह महसूस कर पाती थी। एक सामान्य व्यक्ति की तरह पार्वती के पति के लिए भी स्त्री की सुन्दरता एवं गुणों का बहुत ज्यादा मूल्य नहीं था, कोई कन्या उनकी पत्नी है, इस भाव से ही उन्हें परम संतोष प्राप्त था। पंत ने इस 'फीलिंग' को कहानी में उभार-कर एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रस्तुत किया है। निश्चय ही कहीं न कहीं हर पुरुष इस अधिकार-भाव को महसूस कर गौरवान्वित अनुभव करता है। किसी अत्यंत अपरिचिता का पूर्णतः समर्पित हो जाना, उसके अहंभाव को भी संतुष्ट करता है। स्त्री-मनोविज्ञान का भी अत्यंत ही सूक्ष्म एवं प्रामाणिक अंकन पंत ने इस कहानी में किया है। पुरुष पर एकाधिकार की लालसा स्त्री-स्वभाव है। पार्वती के पति स्त्री-परायण थे। यह स्थिति उसके लिए इतनी सुखकर थी कि उसे पति के घेरे में रहने की आदत पड़ गई थी। इस सुख को प्राप्त करने के लिए स्त्री-परवशता का कोई भी दश सहज स्वीकार कर लेती है। दाम्पत्य में प्रेम के समभाव की स्थिति आदर्श होती है किंतु पार्वती के प्रेम में समानता के भाव से अधिक आदर का ही भाव था। दाम्पत्य जीवन की सहज ऊष्मा, जिसके अंतर्गत कभी-कभार लड़ना, एक दूसरे को उत्तेजित करना एवं खिझाने का भाव जुड़ा रहता है, का पार्वती के दाम्पत्य जीवन में कोई स्थान नहीं था। इसका कारण है कुछ थोड़ा उपलब्ध कर बहुत कुछ खो देना। सामान्य व्यक्ति के प्रेम का परिपेक्ष्य बहुत ज्यादा व्यापक नहीं होता, उसमें किसी उच्च श्रेणी का असीम बन जाने का आनंद या भाववाचक उल्लास नहीं होता। संभवतः इसीलिए उनकी बातों में केवल वाणी होती है, शब्द होते हैं, मन की गर्मी और ठंडक होती है। साधारण व्यक्ति के दाम्पत्य जीवन में कला, संस्कृति एवं भाव-व्यंजना का स्थान नहीं होता, सभी कुछ नितांत 'अनएस्थीटिक लेवल' पर घटित होता रहता है, उसका कोई अपना वायवीय संसार नहीं होता, फिर भी एक सूक्ष्म, अलक्षित-सा तंतु होता है जहां आत्मीय साक्षात्कार की संभावनायें धीरे-धीरे, बहुत आहिस्ते से रूप ग्रहण करती हैं। काल के एक सुदीर्घ

खड म इस दपति को जो अब एक परिव र बा ध्र ल चुक ह अनक उ थान प का हष विषादज य स्थितिया स गुजरना पड़ता ह । पत न इन आवश्यक घटनाओ का कथा मे स्थान न देकर 'मानाटनी' से बचाया। इन प्रसंगों को अत्यंत कुशलता से नजरअंदाज करके कथा-सूत्र को आगे बढ़ाते हैं। पार्वती का युवा पुत्र, जिसका मस्तिष्क विकृत हो गया था, यक्ष्मा से संघर्ष करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। पार्वती निश्चय ही भीषण विपत्ति से कांप गयी, किंतु उसने बेटे के लिए जितने आंसू बहाये उतनी उसकी सेवा नहीं की। आखिर यह अंर्तविरोधी आचरण कैसे संभव हुआ ? लेखक ने इसका समाधान प्रस्तुत किया है। हमारा सामाजिक ढांचा कुछ ऐसा है कि पागल व्यक्ति मनुष्य तो समझा ही नहीं जाता और फिर यक्ष्मा जैसा राजरोग ! पार्वती इन बद्धमूल्य सामाजिक मान्यताओं से परे नहीं है। लेखक ने पार्वती के व्यक्तित्व को आदर्श प्रदान करने के लिए किसी प्रकार छद्म नहीं अपनाया है। उसकी यह कमजोरी ही उसे उच्च चरित्र की प्रतिष्ठा देती है। जैसे-जैसे दोनों प्रौढ़ होते जाते हैं, संबंधों की प्रगाढ़ता और तीव्र होती जाती है। पार्वती के पति एक विचित्र-सी मानसिक एवं शारीरिक असहायता से ग्रस्त हो जाते हैं। उनका प्रेम अब कहीं ज्यादा मुखर हो उठता है। पार्वती की सतत् सहानुभूति को अर्जित करने के लिए दयनीयता का आवरण वे हमेशा ओढ़े रहते है। परवशता अब उनका स्वभाव बन गया था। पार्वती पूर्ण तत्परता से उनकी सेवा मे रत रहती है। पति के अतिरिक्त रूप से मोह-प्रदर्शन से वह भीग-भीग जाती है, उसकी अनुरक्ति का उपयोग करती है। पति के हृदय को जीतने की उद्दाम लालसा अब भी उसके मन में बलवती है। लेखक ने पार्वती के गूंगे प्रेम की अपाहिज परिणति को प्रस्तुत करने में श्लाघनीय कौशल प्रदर्शित किया है। कुछ मिलाकर यह कहानी पंत की कहानियों में श्रेष्ठ रचना है। यह कहानी कहीं बहुत गहरे से मानवीय नियति की करुणा का स्पर्श करती है।

संग्रह की चौथी कहानी है 'बन्नू'। कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से इसे एक सामान्य कहानी मानना ही संगत होगा। पति की असामयिक मृत्यु के पश्चात् अपनी दो साल की बच्ची को लेकर कामना अपने जेठ दीनानाथ के पास पहुंची जो अपनी पत्नी की मृत्यु के कारण विरक्त-से होकर गहन कांतार में स्थित एकलिंग स्वामी की सेवा में जीवनयापन कर रहे थे। छोटी बच्ची का नामकरण 'कला' किया गया। धीरे-धीरे कला ने यौवन की दहलीज पर पांव रखा। एकलिंग स्वामी वृद्धत्व को प्राप्त हो चुके थे। उनका पट्ट शिष्य एव उत्तराधिकारी विनोदानन्द जिसका व्यक्तित्व बन्नू शब्द से अधिक स्पष्ट होता था। बन्नू शास्त्रपारंगत, स्वस्थ, प्रसन्न युवक था। बचपन से ही वन के एकांत से साक्षात्कार करते-करते वह वन के छाया-गंभीर विषाद से अपने मन को भरकर अपने को भूला रहता था। अपनी मां के साथ व्रत के दिनों कला प्राय: एकलिंग के दर्शनार्थ जाया करती थी। वसंत का उन्माद प्रकृति पर छाया हुआ था। नवयौवना कला प्रकृति की इस मादकता को स्वयं अपने अंदर महसूस कर रही थी। वन-भ्रमण के समय कला ने देखा कि बन्नू आत्मस्थ-सा एक नीम के नीचे लेटा हुआ है और एक लंबा, चितकबरा सर्प सिरहाने की ओर से उसकी ओर जा रहा है। इस भीषण दृश्य को देखकर कला चीख पड़ी। बन्नू

प्रकृतिस्थ होकर बैठा रहा। सर्प ने उसका स्पर्श तक नहीं किया। इस सुंदर निर्भीक युवक के प्रति कला अपने मन में अद्भुत आकर्षण महसूस करती है। बन्नू भी कला के अद्वितीय सौंदर्य को आत्मविस्मृत-सा निहारता रहा। अनुराग का सात्त्विक भाव दोनों हृदयो से अपनी पूर्ण तरलता से प्रवहमान हो गया। इस कहानी में लेखक ने प्रतिपादित किया है कि मन तीन वस्तुओं से निर्मित है—बुद्धि, राग और संकल्प। बन्नू में बुद्धितत्त्व की ही प्रबलता थी। कला जैसी अपूर्व लावण्यमयी युवती ने उसके अंदर रागतत्त्व का प्रादुर्भाव किया। कला की मनोदशा भी विचित्र थी। एक दिन एकांत में दोनों का एक-दूसरे से मिलन होता है। कला आत्मविस्मृत, विमुग्ध-सी पारिजात वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़ी थी, बन्नू अवाक्, हतप्रभ-सा इस सौंदर्य-प्रतिमा को निहारता खड़ा रहा। दीनानाथ ने दोनों को इसी अवस्था में देखा। एकलिंग स्वामी से उसने दोनों के विवाह का प्रस्ताव रक्खा। एकलिंग के पुजारियों के लिए आजन्म अविवाहित रहने का विधान था, किंतु अंतत. एकलिंग स्वामी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कुल मिलाकर इस कहानी में कथा की अत्यंत क्षीण संभावनाएं हैं। एक निश्चित प्रतिपाद्य को तूल देकर बढ़ाया गया है। प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में लेखक अपनी स्वाभाविक कवित्वमयी भावुकता को नहीं बचा पाया है। सैद्धांतिक स्थापनाओं की कमजोरी इस कहानी में भी उभरकर सामने आयी है।

संग्रह की अंतिम कहानी है 'अवगुंठन'। इस कहानी में लेखक ने जर्जर सामाजिक रूढ़ियों पर कटु प्रहार किया है। रामकुमार एक सुशिक्षित नवयुवक है। मा के अनुरोध पर उसने विवाह करना तो स्वीकार कर लिया, किंतु जात-पांत, कुलवंश का आडंबर तथा रूढ़िगत मान्यताएं उसे पसंद नहीं है। पर्दा-प्रथा से उसे सख्त नफरत थी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि इन पिछड़े संस्कारों का विरोध किया जाय किंतु ऐसा कुछ भी संभव न हो सका। परंपरागत पद्धति पर भी उसका विवाह सम्पन्न हुआ। उसकी पत्नी अत्यंत रूपवती एवं सरल थी। सास की सम्मति के अनुसार उसने पर्दे में रहना स्वीकार किया। रामकुमार अपनी पत्नी की गुणवत्ता पर मुग्ध था, किंतु उसका पर्दे मे रहना उसे तनिक भी नहीं सुहाता था। रामकुमार ने मां को पर्दे की कुप्रथा के बारे मे समझाया। पुत्र की इच्छा समझकर उन्होंने पुत्रवधू से पति की इच्छानुसार आचरण करने का निर्देश दिया। रामकुमार अपनी पत्नी को एक आदर्श आधुनिक नारी के रूप मे प्रतिष्ठित करना चाहता है, किंतु सरला अपने बद्धमूल संस्कारों के कारण उस सीमा तक मुक्त नहीं हो सकी जितना रामकुमार उससे अपेक्षा करता था। सरला के इस आचरण से रामकुमार कुछ खिन्न रहता। रामकुमार का मित्र सतीश साम्यवादी विचारधारा का था। मध्यवर्ग की सभ्यता के प्रति उसके मन में गहरी नफरत थी। रूस की मुक्त नारियों का अतिरंजित वर्णन कर वह रामकुमार को मुग्ध कर देता है। बीच मे अनेक घटनाएं होती हैं। सतीश और रामकुमार के बीच एक अव्यक्त किस्म की गलतफहमी पैदा होती है। फिर अंततः उसका परिहार हो जाता है और जीवन सामान्य गति से चलने लगता है यह कहानी एक अस्वाभाविक किस्म के जोड़-तोड़ की कहानी है। कहानी की मूल बात हमेशा पृष्ठभूमि में चली जाती है और लेखक इधर उधर की

सैद्धांतिक उलझनों में फंसकर रह जाता है। इस कहानी में पात्रानुकूल भाषा का भी अभाव है। यहां कवि की काव्यात्मक भाषा ही अधिक वेगवान है। एक खास किस्म का आदर्श उसे परिचालित करता है किंतु उस आदर्श के बारे में उसकी दृष्टि साफ नहीं है। कहानी की अंतःसंरचना बहुत ढीली और कमजोर है।

इस उपबंध में पंत की कहानियों की संक्षेप में चर्चा की गयी है। कहानीकार के रूप में पंत का व्यक्तित्व प्रखर नहीं है और वे कहीं भी 'इम्प्रेस' नहीं करते। पंत मूलतः कवि हैं, उनकी अपनी सुनिश्चित सीमायें हैं। साहित्य की हर विधा में 'आउटस्टैंडिंग टच' की अपेक्षा उनसे नहीं की जानी चाहिए। इसीलिए अत्यंत सामान्य होने के बावजूद इन कहानियों का एक विशिष्ट महत्त्व है।

पंत का आत्मसंस्मरण साहित्य : साठ वर्ष : एक रेखांकन

'साठ वर्ष : एक रेखांकन' पंत के साठवें वर्ष पर १९६० ई० में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में पंत के १. प्रकृति का अंचल, २. विकाससूत्र और अंतःसंघर्ष, ३. प्रभाव और बाह्य संघर्ष, ४. नवमानवता का स्वप्न, चार आत्मसंस्मरणात्मक लेख हैं। ये पहली बार आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुए थे, बाद में इन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। इन निबंधों के माध्यम से पंत के प्रारंभिक जीवन से लेकर साठ वर्ष तक के साहित्यिक जीवन के विकास का विवरण मिलता है तथा व्यक्तिगत जीवन-संघर्षों के बारे में भी संक्षिप्त जानकारी मिलती है।

पुस्तक के पहले निबंध 'प्रकृति का अंचल' में पंत ने सन् १९०७ से लेकर सन् १९१८ तक की प्रमुख रूप से घटित साहित्यिक घटनाओं को देते हुए जीवनवृत्त और काव्य-विकास को अंकित किया है। कूर्मांचल की शोभास्थली कौसानी की मोहक स्मृतियों को कवि ने अत्यंत आत्मीयता के साथ संजोया है। किशोर कवि कौसानी से अल्मोड़ा आता है। कौसानी के परिवेश में कवि आत्मविभोर और कुछ चमत्कृत-सा रहता है। अल्मोड़ा-प्रवास के दिनों में ही कवि वस्तु-निरीक्षण के एक सर्वथा नये आयाम से साक्षात्कार करता है। कौसानी में कवि एक अव्यक्त-सी बेचैनी महसूस तो अवश्य कर रहा था किंतु काव्य के रूप में उसका प्रतिफलन अल्मोड़ा में ही संभव हो सका।

अपने दूसरे निबंध 'विकाससूत्र और अंतःसंघर्ष' में कवि ने १९१९ से लेकर १९३० तक की घटनाओं का वर्णन किया है। जैसा कि निबंध के शीर्षक से ही स्पष्ट है, कवि ने अपनी काव्य-यात्रा के बारीक विकास-तंतुओं तथा रचनाकार के अंतःसंघर्ष को निरूपित करने का प्रयास किया है। इस निबंध से इस बात का पता चलता है कि पंत के जीवन में कितने उतार-चढ़ाव आये, साहित्यिक जीवन में कितनी बाधाएं आयीं, लेकिन किस प्रकार सभी संकटों को पार करता हुआ कवि अध्ययनरत, रचनाशील रहा। इसी निबंध में बनारस-प्रवास, सरोजनी नायडू, रवीन्द्रनाथ तथा रीतिकालीन कवियों के अध्ययन एवं प्रयाग की साहित्यिक, उर्वर, शांत, संस्कृत भूमि का भी वर्णन है जिसकी स्नेहपूर्ण अंचल छाया ने किशोर कवि को मानसिक पोषण तथा आत्मविश्वास का तारुण्य दिया बापू के आंदोलन से प्रभावित होकर कवि ने कालेज की पढाई भी छोड दी इस

अत:संघर्ष की स्थिति में ही कवि का स्वतंत्र अध्ययन चलता रहता है जिसमें अनेक प्रकार की धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, सामाजिक जिज्ञासाएं दूर करने के लिए वह ग्रंथों तथा विचारकों का गंभीर अध्ययन करने लगा। इसी काल में 'वीणा', 'पल्लव' आदि कृतिया प्रकाशित हुईं।

तीसरा निबंध है 'प्रभाव और बाह्य संघर्ष'। इसमें सन् '३१ से १९४४ तक के साहित्यिक जीवन को चित्रित किया गया है। इस निबंध में सबसे प्रमुख घटना दो हैं--- १. पंत का कालाकांकर-प्रवास, २. मार्क्स एवं फ्रायड का अध्ययन। इस घटनाओं का पंत के काव्य-व्यक्तित्व एवं निजी दृष्टिकोण पर काफी निर्णायिक प्रभाव पड़ा। वस्तुत इसी काल में पंत बाहरी दुनिया के संपर्क में आते हैं। कवि की सहानुभूति का क्षेत्र अब क्रमशः विशद होता जा रहा था। उसकी आत्मकेंद्रिता काफी कुछ छंट गयी तथा वस्तुगत सत्यों तथा सामाजिक यथार्थ के अंकन में वह दत्तचित्त हुआ। छायावादी अतिशय कल्पनाशीलता के स्थान पर शिल्प में संयम तथा प्रसाद गुण का समावेश होता है। इस युग के पूर्वार्द्ध में 'गुंजन' तथा 'ज्योत्स्ना' जैसी कृतियों का प्रणयन हुआ तथा उत्तरार्द्ध मे 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' जैसी कृतियां प्रकाश में आयीं। मध्य बिंदु के रूप में 'युगांत' की गणना की जा सकती है। पंत ने इन्हीं दिनों पांच कहानियों की भी रचना की। गांधी एव मार्क्स के जीवन-दर्शन से कवि प्रभावित हुआ। सन् '३८ में पंत ने 'रूपाभ' पत्रिका का सम्पादन किया जिसका उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को जन-जागरण का अंग बनाना था। सन् '४२ में पंत ने 'लोकायन' नाम से एक व्यापक संस्कृति-पीठ की योजना बनायी किंतु किन्हीं कारणों से कवि का स्वप्न चरितार्थ नहीं हो सका। सन् '४३ मे उदयशंकर ट्रुप के साथ पंत ने दक्षिण भारत की यात्रा की।

चौथे निबंध 'नवमानवता का स्वप्न' में कवि ने सन् १९४५ से लेकर १९५९ तक का चित्रण किया है। उदयशंकर ट्रुप के साथ पंत को १९४३ में दक्षिण भारत के भ्रमण का मौका मिलता है और कवि इस भ्रमण के दौरान ही अरविंद आश्रम, पांडिचेरी जाता है। पंत को वहां के वातावरण में एक अज्ञात आकर्षण तथा वहां के जीवन में एक विशिष्ट सौंदर्य-गरिमा तथा शांति मिली। इसी काल से पंत का प्रगतिवादी साहित्य समाप्त होता है और चेतनावादी साहित्य की शुरुआत होती है।

निष्कर्ष के तौर पर इतना कहा जा सकता है कि पंत जी के ये संस्मरण प्रामाणिक तथा गहरी आत्मीयता से संयुक्त हैं। पंत के काव्य-व्यक्तित्व के विकास के विभिन्न सोपानों को रेखांकित करने में निश्चय ही इस लघु आत्मसंस्मरणात्मक पुस्तिका से अमित लाभ पहुंचा। स्थूल दृष्टि से पंत जिस विभाजित व्यक्तित्व एवं अनेक अंतर्विरोधों से ग्रस्त प्रतीत होते हैं, उसका काफी कुछ परिमार्जन इस पुस्तक से संभव हो सका है। पंत के काव्य में अलक्षित-सी प्रतीत होनेवाली एकसूत्रता का काफी कुछ आभास इस ग्रंथ में है। इस पुस्तक में कवि का अपना अंतर्बाह्य संसार अपनी पूरी प्रामाणिकता एव अर्थवत्ता के साथ मूर्त हो सका है। लेखक ने भ्रांत धारणाओं को अवकाश न देकर प्राय: अपने उदार दृष्टिकोण को और इन आत्मकथनों द्वारा अपने अंतर रहस्यों को प्रस्फुटित किया है

छायावाद पुनर्मूल्यांकन

'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'निराला व्याख्यान-माला' में पढ़े गए तीन निबंधों का संग्रह है—१. उद्‌भव और परिवेश, २. विकास और कवि चतुष्टय ३. कलाबोध, विधायें और पुनर्मूल्यांकन। इन तीन दीर्घ निबंधा के माध्यम से पंत ने छायावाद विषयक कतिपय भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में उनका दृष्टिकोण मूल्यपरक रहा है। ऐसा नहीं है कि इस पुस्तक मे पत ने कोई नवीन मत स्थापित किया हो, उनकी ये मान्यतायें स्फुट रूप से उनकी भूमि-काओं में प्रकट होती रही हैं, किन्तु इस पुस्तक में उन्हें एक व्यापक पट पर एकत्रित तथा सयोजित कर दिया गया है।

पहला निबंध है 'उद्‌भव और परिवेश'। इसमें पंत छायावादी काव्यधारा के उद्‌गम तथा विकास के विविध स्रोतों की खोज करते हुए वेदनावाद, स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, प्रतीकवाद, चित्रभाषावाद, अद्वैतवाद, सर्वात्मवाद आदि का विस्तार से विश्लेषण करते हैं तथा पूर्ववर्त्ती काव्यधाराओं से उसकी तुलना भी करते हैं। छायावाद के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की भ्रांतियों के कारणस्वरूप की विवेचना करते हुए पंत ने यह मत प्रतिपादित किया है कि सम्भवत: उसके निम्न कारण थे—१. सीमित दृष्टि, २ समग्र अन्तर्दृष्टि न होने के कारण आलोचना के विकसित मानदण्डों का अभाव। पत ने छायावाद की एक सर्वमान्य परिभाषा को भी निर्धारित करने का प्रयास किया है, उन्हीं के शब्दों में, 'छायावाद नवीन अन्त:सौन्दर्य से प्रेरित कलाबोध के दीपदान पर चतुर्दिक् नवीन जीवन-सौन्दर्य तथा भावप्रकाश बिखेरती हुई चेतना की ऊर्ध्वमूला शिखा है जो व्यापक विश्व-ऐक्य तथा लोकसाम्य के अजस्र स्नेहधार से पोषित मूर्तिमान मानव मगल का काव्य है। उपर्युक्त परिभाषा बहुत साफ और सम्प्रेषणीय नहीं है। ऐसा नहीं लगता कि प्रस्तुत परिभाषा नई भ्रांतियों को पैदा करने में सहयोग नहीं देगी। इसकी भाषा इतनी कनफ्यूज्ड एवं 'वेग' है कि कोई सर्वमान्य निर्णय लिया ही नहीं जा सकता।

पहले निबंध में पंत का प्रयास उन बुनियादी कारणों को खोजने का है जिनके परिणामस्वरूप छायावाद का जन्म हुआ। इसी प्रक्रिया में पंत ने यह मत प्रस्तुत किया है कि युवा लेखकों की आर्थिक विपन्नता, उनकी मनोनुकूल परिस्थितियों का अभाव हीन-भावना का दंश और बौद्धिक बल से विरहित अतिरंजित भावुकता का उन्मेष आदि ऐसे तत्कालीन प्रभावी कारण थे जिनका स्वाभाविक प्रतिफलन 'छायावाद' के रूप में हुआ। पत ने छायावाद की कालावधि सन् '१६ से '२४ के बीच सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि निराला पर बंगला साहित्य, प्रसाद पर काशी तथा स्वयं उन पर प्रकृति का निर्णायक प्रभाव रहा है। निराला तथा प्रसाद पर विचार करते हुए निश्चय उनकी दृष्टि बद्धमूल पूर्वाग्रहों से नहीं बच सकी है। निराला के सम्बन्ध मे उनका यह विचार कि दृष्टि से वे रूमानी रंगीन भावना के स्तर से कभी ऊपर नहीं उठ सके—न केवल है अपितु अत्यंत भी है प्रसाद

के सम्बन्ध में पंत की यह घोषणा—"नये मूल्य के अन्तरम में पैठ न हो सकने के कारण उन्हें नवीन कलाबोध तथा सौन्दर्यबोध का भी भावात्मक ही स्पर्श प्राप्त था, इसीलिए उसका उन्हें धीरे-धीरे विकास करना पड़ा और फिर भी यत्र-तत्र उसमें अनगढ़ता बनी ही रही"—भी उतनी ही आपत्तिजनक तथा दुराग्रहपूर्ण है। इसके अतिरिक्त भी इस निबंध में उन्होंने अनेक अर्थहीन विवादों को अत्यंत महत्त्व प्रदान किया है। प्रसाद के 'आसू' के द्वितीय संस्करण में वे अपनी कविता 'चांदनी' के कुछ बिम्बों और कल्पनाओं के प्रभाव तथा निराला की 'यमुना' में अपनी 'स्वप्न छाया' आदि रचनाओं की अनुगूंज सिद्ध करना चाहते हैं। छायावाद के प्रवर्तन के प्रश्न को भी व्यर्थ तूल दिया गया है।

अंतिम निबंध में पंत ने समसामयिक कलाबोध, विविध विधाओं तथा वादों का पुनर्मूल्यांकन किया है तथा छायावादोत्तर समस्त काव्य को एक ही संचरण स्वीकार किया-है। इसका कारण वे मानते हैं कि इनमें अभिव्यक्तिजनित समानता तो पाई ही जाती है, साथ ही साथ एक ऐसा केंद्रीय अंत:संयोजन एवं संगति भी मिलती है जो इन्हें एक ही मानव-मूल्य के विभिन्न आयामों के रूप में स्थापित करती है। पंत की इस तर्कपद्धति से सहमत हो पाना कठिन है। छायावाद को अनावश्यक व्याप्ति प्रदान करना ऐतिहासिक तथ्यों तथा समसामयिक रचना-परिदृश्यों से मुंह मोड़ना होगा। छायावाद को दो भागो मे बांटना दोषपूर्ण हो सकता है क्योंकि उत्तर छायावादी कवियों की 'सैन्सिबिलिटी' का स्तर कमोबेश समान ही रहा। भाषा एवं शिल्प के स्तर पर जो परिवर्तन दृष्टिगत होता है वह वस्तुत: सतही है, गहराई से विश्लेषण करने पर यह सर्वथा स्पष्ट है कि उत्तर-छायावादी पीढ़ी का भी 'एटिच्यूड' करीब-करीब वही रहा जो पूर्वछायावादी पीढ़ी का था।

प्रगतिवादी तथा नये कवियों में मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर तथा नागार्जुन के लिए पंत के मन में प्रशंसा है। वैसे इन तीनों कवियों को जिस तरह समीक्षित किया गया है, उससे सहमत हो पाना कठिन है। माथुर को अतिरिक्त महत्त्व प्रदान किया गया है। अज्ञेय, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुंवरनारायण आदि अनेक नये कवि अपनी कलादृष्टि एवं भावबोध के उच्च-स्तर के कारण पंत की प्रशंसा के पात्र बने हैं। कुछ कवियों, मसलन शमशेर के बारे मे बहुत ऊपरी तौर पर विचार किया गया है। इस पूरे प्रबंध में यत्र-तत्र इस किताब का उपयोग किया गया है, अत: यहां संक्षिप्त विचार करके ही समाप्त किया गया है।

शिल्प और दर्शन

'शिल्प और दर्शन' पंत के निबंधों का संकलन है। इसके प्रथम भाग में विभिन्न काव्य-पुस्तकों की भूमिकायें यथा प्रवेश, 'पल्लव', विज्ञप्ति, 'वीणा', पर्यालोचन 'आधुनिक कवि', दृष्टिपात 'युगवाणी', प्रस्तावना 'उत्तरा', परिदर्शन 'रश्मिबंध' तथा चिरणचिह्न 'चिदम्बरा' संकलित हैं। द्वितीय भाग में पंत की आकाशवाणी से प्रसारित कुछ वार्ताए, साथ ही कुछ अभिभाषण तथा पत्र- पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके अन्य निबन्ध संगृहीत है। 'गद्यपथ' नामक निबंध की सामग्री भी इसी संकलन में जोड़ दी गई है। इन निबंधो के माध्यम से कला, शिल्प तथा जीवन-दर्शन सम्बन्धी उनके विचारों की आत्मीय झलक

मिलती है।

पंत ने इन निबंधों में अपनी रचना-प्रक्रिया तथा काव्य-कला पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयास किया है। छायावादी कवियों ने अपनी काव्य-वस्तु को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए तथा प्रचलित भ्रांतियों के निराकरण के लिए आलोचक का नहीं तो कम से कम व्याख्याता का दायित्व स्वयं वहन किया है। अपने अन्य समकालीनों की अपेक्षा पंत कहीं ज्यादा जागरूक तथा सचेत रहे हैं। काव्य-पुस्तकों की दीर्घ तथा तर्कपूर्ण भूमिकायें इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। पंत ने आधुनिक मानव-जीवन तथा मन के अनेकमुखी तथा परस्पर-विरोधी क्रियाकलाप तथा विचार-प्रणालियों को व्यापक जीवनोपयोगी सामंजस्य में बांधने का प्रयास किया है। इन निबंधों के परिशीलन द्वारा पंत के विभिन्न युगों तथा आयामों में वितरित काव्य को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

पंत के विवेच्य विषयों में काव्य के बहिरंग, अभिव्यंजना शैली और कवि की मानसिक चेतना का प्रतिपादन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इन निबंधों के माध्यम से सशक्त समीक्षक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा हुई। 'पल्लव' की भूमिका वस्तुत: पंत की समीक्षक प्रतिभा का प्रथम उन्मेष है। कवि के स्तर से आलोचना के धरातल पर पहुंचने का यह प्रयास निश्चय ही स्तुत्य है। इन भूमिकाओं में कवि का लक्ष्य मात्र आत्मविज्ञापन का नहीं रहा है अपितु नयी काव्यधारा की प्रामाणिकता को सिद्ध कर उसे एक निश्चित लक्ष्य तक पहुंचाने का रहा है। 'पल्लव' की भूमिका में पंत ने पहली बार अपनी छाया-वादी रुझान, नवीनता की तात्कालिक आवश्यकता का आग्रह स्पष्ट किया है। पल्लव की भूमिका में भाषा-समस्या पर भी विस्तार से विचार किया गया है। ब्रज बनाम खड़ी बोली का काव्यान्दोलन उस युग में अत्यंत उग्र हो उठा था। पंत की स्पष्ट अवधारणा है कि अब ब्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच संघर्ष की स्थिति समाप्त हो गयी है। ब्रजभाषा के प्रति बिना किसी दुराग्रह के यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि खड़ी बोली उसकी आगामी विकास की अवस्था है। सौंदर्य-बोध के नये आयाम विकसित हो चुके हैं जिनकी अभिव्यक्ति खड़ी बोली में ही संभव है।

'आधुनिक कवि' की भूमिका में पंत ने अपने प्रेरणा-स्रोतों की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। काव्य की प्रेरणा उन्हें प्रकृति निरीक्षण से मिली, ऐसा वे स्वीकार करते है। पंत ने अपने प्रामाणिक अन्तर्साक्ष्य उपस्थित करके अंतस् के गोपन रहस्यों को भी प्रकट किया है। मार्क्स, फ्रायड, एडलर आदि का प्रभाव वे नि:संकोच भाव से अपनी सीमाओं के अंदर स्वीकार करते हैं। अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शन सिद्धांतों का निर्णायक प्रभाव पंत अपनी काव्य-यात्रा में स्वीकार करते हैं।

'दृष्टिपात' में समाज के भावी रूप का चित्र प्रस्तुत किया गया। यहां कला जीवन की अनुवर्तिनी है। इस कृति में मानवता की सौंदर्य-कल्पना द्वारा "भविष्य के अरूप सौंदर्य का रूप के पाश में बांधने के लिए आह्वान किया गया है।" पंत की स्पष्ट अवधारणा है कि "लोककल्याण के लिए जीवन की बाह्य (सम्प्रति राजनीतिक-आर्थिक) और आभ्यंतरिक (सांस्कृतिक-आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन आवश्यक है।"

'उत्तरा' की भूमिका पंत के ऊर्ध्वसंचरण के विभिन्न आयामों को रेखांकित

करती है। लोक-संगठन के साथ ही साथ मनःसंगठन की आवश्यकता पंत महसूस करते है। पंत ने अपनी विचार-सरणियों के अनुकूल अरविंद के प्रभाव को स्वीकार किया है। समकालीन युग संघर्ष में साहित्य एवं साहित्यकार की भूमिका की विशद आलोचना इस भूमिका में उपलब्ध है। प्रगतिवादी एवं चेतनावादी काव्य में स्थूल रूप से जो अंतर एव विरोध परिलक्षित होता है, उसको भी व्याख्यापित करने का प्रयास कवि ने किया है।

इन भूमिकाओं के अतिरिक्त इस संग्रह में पंत के स्फुट निबंध भी संकलित है। लेखक के पूर्वाग्रहों को पृथक् रखकर तथ्य दृष्टि से इनका मूल्यांकन संगत हो सकता है। रवीन्द्र की काव्यप्रतिभा, दार्शनिक अरविंद की साहित्यिक देन आदि निबंधों का मूल्य इसी संदर्भ में निर्धारित किया जा सकता है। रवीन्द्र को वे हिमालय का शुभ्र-शात शिखर मानते हैं। अरविंद के प्रति उनका आकर्षण अत्यधिक है। 'यदि मैं कामायनी लिखता' नामक निबंध अपनी बद्धमूल धारणाओं के बावजूद एक सुघर समीक्षा है। 'कामायनी' की भाषा पर पंत ने विस्तार से विचार किया है। 'कामायनी' के शब्द-शैथिल्य पर विचार करते हुए पंत लिखते हैं, "कामायनी की कलाचेतना में जैसा निखार मिलता है, कला-शिल्प अथवा शब्द-शिल्प में वैसी प्रौढ़ता नहीं मिलती।" पंत का यह भी आरोप है कि कामायनी जीवन के यथार्थ तथा चैतन्य को अभिव्यक्ति नहीं दे सकी। कहीं-कहीं पंत ने सुचिंतित आलोचक की भूमिका छोड़कर छिद्रान्वेषक का दायित्व ओढ लिया है। फिर भी उनका विश्वास है कि 'कामायनी' विश्व-साहित्य की अनुपम कृति है। 'लेखक और राज्याश्रय' नामक निबंध में पंत ने राजसत्ता के साथ बुद्धिजीवी लेखक-वर्ग का अधिकाधिक सहयोग आवश्यक माना है। राजसत्ता और लेखक में शाश्वत विरोध की बात को पंत निराधार एवं अतिरंजित मानते हैं। साहित्यकार प्रतिपक्ष मे रहने के लिए प्रतिबद्ध है, इस धारणा का वे निषेध करते हैं। 'साहित्यकार की आस्था' नामक निबंध में पंत मानव-जीवन के बाह्य तथा अंतर संचरणों में सामंजस्य को ही वह मूल भावना मानते हैं जिसके आधार पर आस्था का भवन निर्मित हो सकता है।

नयी कविता पर विचार करते हुए पंत यह प्रतिपादित करते हैं कि, "नयी कविता हिन्दी में एक प्रकार से छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद की उत्तराधिकारिणी बनकर आयी है, अतः उसमें उपर्युक्त सभी प्रकार की चेतनाओं और भावनाओ के सूत्र गुंफित मिलते हैं।"

यहां संक्षेप में 'शिल्प एवं दर्शन' पर विचार किया गया है। पिछले पृष्ठो मे हमने इस पुस्तक की सामग्री का उपयोग किया है, अतः यहां इसकी चर्चा बहुत विस्तार से नहीं की गयी है।

☐

☐